महामतिश्रीमाधवकरप्रणीतम्

माधवनिदानम्

(रोगविनिश्चयापरनामकम्)

(हिन्दीभाषाटीकासहितम्)

MĀDHAVANIDĀNAM

प्रो० सुषमा कुलश्रेष्ठ

माधवनिदानम्

आयुर्वेद रूप उपवेद का परम उद्देश्य स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं रोगयुक्त मनुष्यों को रोगमुक्त कर उत्तम स्वास्थ्य से सम्पन्न करना है। इन्दुकरात्मज विमलविपुलबुद्धि श्रीमाधवकर प्रणीत 'माधवनिदान' संग्रह-ग्रन्थों एवं निदान-ग्रन्थों की परम्परा में अग्रगण्य है। प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ श्रीमाधवकर ने चरक, सुश्रुत, विदेह, वाग्भट आदि प्रसिद्ध आचार्यों के महनीय ग्रन्थों से वचनों का विधिवत् संग्रह करके 'माधवनिदानम्' नाम से प्रसिद्ध, 'रोगविनिश्चय' इस द्वितीय नाम वाले इस अद्वितीय ग्रन्थ का प्रणयन किया। वर्तमान काल में यह लिङ्गज्ञान का विश्रुत प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के ललित हिन्दी अनुवाद से मण्डित प्रस्तुत संस्करण के आद्यन्त अवलोकन, अध्ययन एवं मनन से 'निदाने माधवः श्रेष्ठः' यह सूक्ति पूर्णतः चरितार्थ हो जाती है।

ISBN : 81-7854-020-7 मूल्य : रु. 600.00

MĀDHAVANIDĀNAM
(ROGAVINIŚCAYAḤ)

माधवनिदानम्
(रोगविनिश्चयापरनामकम्)

KALIDASA ACADEMY OF SANSKRIT MUSIC & FINE ARTS SERIES NO. 11

MĀDHAVANIDĀNAM

By

ŚRĪMĀDHAVAKARA

(WITH HINDI TRANSLATION)

PROF. SUSHMA KULSHRESHTHA
Purāṇetihāsācārya, D. Phil., D. Litt., F.R.A.S. (London)
Member, Faculty of Arts
University of Delhi;
Hony. Director
Kalidasa Academy of Sanskrit Music & Fine Arts, Delhi

EASTERN BOOK LINKERS
DELHI :: (INDIA)

Published by
EASTERN BOOK LINKERS
5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar
Delhi-110007
Phone : 23970287
E-mail : easternbook@mantraonline.com

First Edition : 2004

Kalidasa Academy of Sanskrit Music & Fine Arts Series No. 11

Price : Rs. 600.00

ISBN : 81-7854-020-7

Printed at
Sham Printing Agency
Delhi-110009

Type Setting:
Ajay Printing Works
New Delhi-110085

कालिदास संस्कृत सङ्गीत कला एकेडमी ग्रन्थमाला संख्या 11

महामतिश्रीमाधवकरप्रणीतम्

माधवनिदानम्

(रोगविनिश्चयापरनामकम्)

(हिन्दीभाषाटीकासहितम्)

प्रो० सुषमा कुलश्रेष्ठ
पुराणेतिहासाचार्य, डी.फ़िल., डी. लिट., एफ़.आर.ए.एस. (लन्दन)
सदस्या, कलासङ्कायः
दिल्लीविश्वविद्यालयः;
निदेशिका
कालिदास संस्कृत सङ्गीत कला एकेडमी, दिल्ली

ईस्टर्न बुक लिंकर्स
दिल्ली : : (भारत)

प्रकाशक :
ईस्टर्न बुक लिंकर्स
5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर
दिल्ली-110007
दूरभाष : 23970287
E-mail : easternbook©mantraonline.com

प्रथम संस्करण : 2004

दूरभाष : 27143397, 27466139, 27120287
कालिदास संस्कृत सङ्गीत कला एकेडमी ग्रन्थमाला संख्या 11

मूल्य : 600.00

ISBN : 81-7854-020-7

मुद्रित :
शाम प्रिंटिंग एजेन्सी
विजय नगर, दिल्ली-110009

टाईप सैटिंग :
अजय प्रिंटिंग वर्क्स
नई दिल्ली-110085

साहित्यसङ्गीतविधिशास्त्रनिपुणायै
प्रेष्ठायै अनुजायै सुश्रीआभायै
तस्याः शुभे जन्मार्द्धशतीमहोत्सवे
(मार्गशीर्ष-पूर्णिमा, 2002)
सस्नेहमुपायनीक्रियते माधवनिदानाख्योऽयं ग्रन्थः

सुषमाकुलश्रेष्ठया

पुरोवाक्

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ-चतुष्टयी का सेवन एवम् इसकी प्राप्ति मानव जीवन का लक्ष्य है और इस लक्ष्य की संप्राप्ति का प्रथम सोपान मनुष्य शरीर है। अतएव इस शरीर का स्वस्थ रहना परम आवश्यक है। दीपशिखा कालिदास की ब्रह्मचारिवेषधारी शिव द्वारा नगाधिराजतनया पार्वती के प्रति कथित उक्ति 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' इसी तथ्य को सङ्केतित करती है। 'आयुर्वै घृतम्', 'जीवेम शरदः शतम्' आदि उक्तियाँ भी सुस्वास्थ्य के महत्त्व को प्रतिपादित करती हैं। आयुर्वेद रूप उपवेद का परम उद्देश्य स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं रोगयुक्त मनुष्यों को रोगमुक्त कर उत्तम स्वास्थ्य से सम्पन्न करना है। आयुर्वेदशास्त्र के निम्नलिखित तीन आधारस्तम्भ हैं— 1. हेतु 2. लिङ्ग एवम् 3. औषध। इन तीनों विषयों के विधिपूर्वक प्राप्त ज्ञान से मनुष्य सुयोग्य वैद्य बन सकता है। आयुर्वेदशास्त्र समुद्रवद् अपार एवम् अथाह है। अतएव इसके विधिपूर्वक ज्ञान के लिए हमारे प्राचीन महर्षियों ने इसे आठ अङ्गों में विभक्त किया था। जिज्ञासु अध्येता एवं शिष्य अपने गुरुओं से उन आठ अङ्गों को विधिवत् सीखते थे एवम् अभ्यास करते थे। कालान्तर में लोगों के लिए उन पृथक्-पृथक् अङ्गों का पठन एवं बोध कठिन होने लगा। अतएव आयुर्वेदवेत्ता मनीषी विद्वानों ने आयुर्वेदशास्त्र को युगानुरूप एवं सुबोध बनाने के लिए संग्रह-ग्रन्थों का निर्माण प्रारम्भ किया।

संग्रह-ग्रन्थों की परम्परा में अग्रगण्य है प्रस्तुत 'माधवनिदान' ग्रन्थ। इन्दुकरात्मज विमलविपुलबुद्धि श्रीमाधवकर नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ ने चरक, सुश्रुत, विदेह, वाग्भट आदि प्रसिद्ध आचार्यों के महनीय ग्रन्थों से वचनों का विधिवत् संग्रह करके 'माधवनिदानम्' नाम से प्रसिद्ध 'रोग- विनिश्चयः' इस द्वितीय नाम वाले इस अद्वितीय ग्रन्थ का प्रणयन किया। वर्तमान काल में यह लिङ्गज्ञान का विश्रुत प्रतिनिधि ग्रन्थ है। रोगी की चिकित्सा की सफलता के लिए सर्वप्रथम उचित निदान अपेक्षित है—'रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्' (च०सू० 20/20) तथा 'संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्' (सु०उ० 1/25)। रोग-परीक्षण एवं निदान-परिवर्जन को लक्ष्य में रखकर यदि प्रस्तुत ग्रन्थ का आकलन किया जाए तो यह अप्रतिम स्थान का भागी बनता है। इसीलिए आभाणक प्रसिद्ध है 'निदाने माधवः श्रेष्ठः' अर्थात् रोग का निदान करने के लिए श्रीमाधवकर द्वारा प्रणीत 'माधवनिदान' श्रेष्ठ ग्रन्थ है।

माधवनिदान ग्रन्थ में आयुर्वेदोक्त प्रायः सभी रोगों के निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति, उपद्रव, साध्यासाध्य आदि से सम्बद्ध सभी विषयों का संक्षेप में स्पष्टतापूर्वक वर्णन किया गया है। अल्पबुद्धि जन भी अल्प परिश्रम से ही रोगों के विषय में सम्पूर्ण जानकारी इस ग्रन्थ द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। चिकित्सक वैद्यों के लिए यह परम उपयोगी ग्रन्थ है जिसे वे सदा कण्ठस्थ रखकर अपने जिह्वाग्र पर धारण करना चाहते हैं तथा रोगों का उपयुक्त विनिश्चय करने में सफल होते हैं। रोग का उचित निदान होने पर ही सफल उपचार सम्भव है। कविकुलगुरु कालिदास का भी यही अभिमत है— **विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य** (अभिज्ञानशाकुन्तलम्-तृतीयाङ्कतः)। श्रीमाधवकर ने चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टाङ्गसंग्रह एवम् अष्टाङ्गहृदय प्रभृति अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों से निदानसम्बद्ध अंशों का संग्रह, संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धन अतिशय भव्य रूप में माधवनिदान नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत कर आयुर्वेदज्ञ विद्वानों में अपनी श्रेष्ठता प्रतिष्ठापित की है।

अधिकांश प्राचीन विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा। माधवकर ने भी इसी परम्परा का पालन किया तथापि इतिहासविशेषज्ञ ग्रन्थकार की रचना से कोई न कोई ऐसा बिन्दु खोज ही लेते हैं जो उनके परिचय को प्रकाशित कर सके। तदनुसार 'रोगविनिश्चय' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणेता (संग्रहकर्ता) के पिता का नाम इन्दुकर था जैसा इनके ग्रन्थ के अन्त में लिखित है—'श्रीमाधवेनेन्दुकरात्मजेन।' इससे तथा इनके नाम के अन्त में प्रयुक्त 'कर' उपाधि से ऐसा प्रतीत होता है कि ये वङ्गदेशीय अथवा उत्कलदेशीय विद्वान् थे। ये शिवोपासक थे, यह इनके ग्रन्थ के मङ्गलाचरणश्लोक से भासित होता है।

संस्कृत वाङ्मय में 'माधव' नामक प्रायः 80 आचार्यों के नामों का उल्लेख ऑफ्रेक्ट ने अपने 'कैटेलोगस कैटेलोगोरम' नामक संग्रह गन्थ में किया है। उनके उल्लेखानुसार इन्दुकरात्मज 'माधव' अथवा 'माधवकर' ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनमें उनका यह सुप्रसिद्ध 'रोगविनिश्चय' नामक ग्रन्थरत्न भी है। माधवकर ने 'पर्यायरत्नमाला' नामक एक अन्य ग्रन्थ की भी रचना की थी, यह कविराज गोपीमोहन द्वारा प्रणीत 'मुक्तावली' नामक ग्रन्थ के प्रस्तुत पद्य से ज्ञात होता है—

पूर्वं लोकहिताय माधवकराभिख्यो भिषक् केवलं
कोषान्वेषणतत्परः प्रवितताऽऽयुर्वेदरत्नाकरात्।
मालां रत्नमयीं चकार स यथालाभं न शोभाधिका
साऽस्माभिः कमनीयभक्तिरचनाऽन्यत्रापि सङ्ग्रथ्यते।।

वस्तुतः 'पर्यायरत्नमाला' एक कोषग्रन्थ है जो मुख्यतः वैद्यक पर आधारित है। डॉ० श्री तारापद चौधरी द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ 'पर्यायरत्नमाला' पटना

विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित रूप में समुपलब्ध है। इस ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त प्रस्तुत पद्य माधवकर का परिचय भी प्रस्तुत करता है—

भिषजा माधवेनैषा शिलाह्रदनिवासिना।
यत्नेन रचिता रत्नमालेन्द्र (न्दु) करसूनुना।।

इस प्रकार कविराज श्रीगोपीमोहनप्रणीत मुक्तावली के पूर्वोद्धृत पद्य तथा पर्यायरत्नमाला ग्रन्थ के अन्तिम इस पद्य से यह सिद्ध है कि माधवकर ने ही पर्यायरत्नमाला ग्रन्थ की रचना की।

माधवकर ने अपने ग्रन्थों में अपने देशकालादि का कोई भी परिचय नहीं दिया है तथापि अनेक विवेचनों के अनन्तर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि माधवकर का काल वाग्भट द्वितीय (600 ई०) तथा इसके अरबी अनुवाद (800 ई०) के मध्य (700 ई०) में रखना उचित प्रतीत होता है। कविराज गणनाथसेन एवम् अन्य इतिहासकारों द्वारा भी यह मत समर्थित है।

माधवकरप्रणीत 'रोगविनिश्चय' ग्रन्थ के अनेक वैशिष्ट्य हैं। सर्वप्रथम यह 'स्वान्तःसुखाय' के साथ 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' प्रणीत ग्रन्थ है। प्रणेता ने प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओं से निदानोपयोगी अंशों का संग्रह महती चातुरी से किया है। ऐसा करने के प्रसङ्ग में उन्होंने संक्षेपण और विस्तरण, उभयविध शैली का स्वीकरण किया है। किन्हीं विस्तृत विवेचनों का उन्होंने आवश्यकतानुसार संक्षेपण किया है तो कहीं संक्षिप्त विवेचनों का आवश्यक विस्तरण भी किया है। संक्षेपण-विस्तरण का यह विशिष्ट गुण प्राचीन तन्त्रकारों को विभूषित करता है। माधवकर का प्रमुख लक्ष्य था युगानुरूप निदानोपयोगी एक ग्रन्थरत्न चिकित्सकों तथा सामान्य नागरिकों के लिए भी प्रदान करना और इस लक्ष्य में वे पूर्णतः सफल भी हुए। माधवकर की माधवनिदान में प्राप्त संक्षेपण-विस्तरण-चातुरी के कतिपय निदर्शन प्रस्तुत हैं—

1. वातव्याधि

महर्षि चरक ने चरकसंहिता में वात के विभिन्न आवरणों का विश्लेषण करते हुए इस रोग का अतिशय गम्भीरता एवं विस्तार के साथ विवेचन किया है। आचार्य सुश्रुत ने सुश्रुतसंहिता में इस रोग का विशद निरूपण चिकित्सास्थान के क्रमशः 'वातव्याधि' एवं 'महावात-व्याधि-चिकित्साव्याख्यान' नामक चतुर्थ एवं पञ्चम अध यायों में किया है। श्रीमाधवकर ने चरक के 'वात-आवरण' विवेचन को छोड़कर अवशिष्ट सभी वातविकारों का उल्लेख किया है। उन्होंने वातरक्त (गठिया) तथा ऊरुस्तम्भ रोगों का ग्रन्थ के क्रमशः चौबीसवें तथा पच्चीसवें अध्यायों में पृथक्-पृथक् विवरण प्रस्तुत किया है। चरकसंहिता में ऊरुस्तम्भ को आद्यवात नाम से वर्णित

किया गया है। माधवकर ने ऊरुस्तम्भ का वर्णन सुश्रुतानुसार किया है। आमवात के स्वरूप की पृथक् रूप में स्थापना का श्रेय भी माधवकर को ही है।

2. शूल

चरकसंहिता के 'गुल्मनिदान' चतुर्थ अध्याय में तथा चिकित्सास्थान के छब्बीसवें अध्याय में शूल का नाममात्र से उल्लेख है। इस रोग का सर्वप्रथम विस्तृत विवेचन करने का श्रेय माधवकर को ही प्राप्त है। उन्होंने 'परिणामशूल' तथा 'अन्नद्रवशूल' का भी विवेचन किया है। इनके पश्चाद्वर्ती सोढल एवं शार्ङ्गधर ने 'जरत्पित्तशूल' नामक एक विशिष्ट शूलभेद का भी परिचय प्रस्तुत किया है।

3. मेदोरोग

न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में आज मेदोरोग एक विशिष्ट रोग है। प्राचीन संहिताओं में यह 'अतिस्थूलता' के रूप में निरूपित है। माधवकर ने इसका स्वतन्त्र विवेचन अपने ग्रन्थ के मेदोरोगनिदानम् नामक अड़तीसवें अध्याय में किया है।

4. श्लीपद

चरकसंहिता-चिकित्सास्थान अध्याय 12/19 में इस रोग का संक्षिप्त विवरण उपलब्ध है। सुश्रुतसंहिता-चिकित्सास्थान के एकोनविंश अध्याय में इसका वर्णन प्राप्त होता है। माधवकर ने इस रोग का विवेचन ग्रन्थ के तैंतालीसवें अध्याय में स्वतन्त्र रूप से किया है।

5. शीतपित्तोदर्दकोठ

माधवकर ने शीतपित्त, उदर्द तथा कोठरोगों का विवेचन ग्रन्थ के चौवनवें अध्याय में स्वतन्त्र रूप से किया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'विस्फोट' एवं 'मसूरिका' रोगों का भी विवेचन पृथक् रूप से ग्रन्थ के सत्तावनवें तथा अट्ठावनवें अध्यायों में किया है।

6. अम्लपित्त

प्राचीन संहिताग्रन्थों में इस रोग का स्वतन्त्र अध्याय के रूप में वर्णन प्राप्त नहीं होता किन्तु माधवकर ने इस रोग का भेदोपभेदों के साथ निरूपण ग्रन्थ के पचपनवें अध्याय में प्रस्तुत किया है।

7. स्त्रीरोग

स्त्रीरोग अनेक हैं। चरक तथा सुश्रुतसंहिताओं में 'योनिव्यापद्' नामक अध्याय में इन सबका सम्मिलित रूप में वर्णन उपलब्ध होता है किन्तु माधवकर ने जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर स्त्रीरोगों का विशद विवेचन ग्रन्थ के पैंसठवें से लेकर इकहत्तरवें इस प्रकार सात अध्यायों में प्रस्तुत किया है। वे सात अध्याय

नामनिर्देशपूर्वक इस प्रकार हैं— 1. प्रदररोग, 2. योनिरोग, 3. योनिकन्द, 4. गर्भरोग, 5. सूतिकारोग, 6. स्तनरोग तथा 7. स्तन्यरोग। अध्यायों के नाम तत्तद्रोग के परिचायक हैं।

भारतीय निदानपद्धति नाडीविज्ञान पर आधारित है। आयुर्वेदीय निदान के नाडी, मूत्र, मल, जिह्वा, शब्द, स्पर्श (नाडी के अतिरिक्त अन्य अङ्गों का भी स्पर्श करना), दृष्टि (नेत्र-परीक्षण) एवम् आकृति, ये मुख्य साधन हैं। भारतीय चिकित्साविद् इन सभी माध्यमों का प्रयोग रोगनिदान के लिए करते हैं। इन्हीं निदानों का प्रयोग पाश्चात्य चिकित्सक भी अपने ढंग से करते हैं किन्तु भारतीयों की निदान-पद्धति एवं पाश्चात्यों की निदान-पद्धति नितरां भिन्न हैं। आयुर्वेदीय परम्परा में पुरुषों के दाहिने एवं स्त्रियों के बाएं हाथ की नाडी देखने का शास्त्रविहित विधान है। प्राचीन वैद्य नाडीविज्ञान में इतने अधिक दक्ष हुआ करते थे कि केवल नाडी देखकर रोगनिदान करने में सफल होते थे। आज भी कुछ विशिष्ट वैद्य हैं जो नाडीविज्ञान में वैसी दक्षता से सुभूषित हैं। डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी के अनुसार नाड़ी-परीक्षा का समुचित ज्ञान रोगी तथा सामाजिक को आश्चर्यचकित कर देता है। इसका लाभ चिकित्साकाल में रोगी को और सुयश चिकित्सक को मिलता है।

माधवनिदान पर टीकासाहित्य

'माधवनिदान' इस अद्भुत ग्रन्थ की लोकोपयोगिता तथा लोकप्रियता को देखकर विद्वान् भिषजों द्वारा इसकी अनेक टीकाएं लिखी गईं। डॉ० म्युनेल वेल्ड ने अपने ग्रन्थ के प्राक्कथन (पृष्ठ 21-22) में इसकी निम्नाङ्कित टीकाओं का उल्लेख विस्तार से किया है—

मधुकोशटीका

मधुकोशटीका श्रीविजयरक्षित तथा उनके शिष्य श्रीकण्ठदत्त द्वारा लिखी गई। यह टीका आरम्भ से अश्मरीरोग पर्यन्त श्रीविजयरक्षित द्वारा तथा शेष भाग पर श्रीकण्ठदत्त द्वारा रची गई। यह वैदुषीपूर्ण संस्कृतटीका अन्वर्थनाम्नी है। 'मधुकोश' इस सार्थक नाम से ध्वनित है कि इसके गुणग्राहक इसे सदा घेरे रहते हैं। अधिकारी व्यक्ति ही इससे मधु प्राप्त कर सकता है। यदि कोई अनधिकारी (आयुर्वेद, साहित्य, न्याय, व्याकरणादि से अनभिज्ञ) व्यक्ति इसके निकट जाता है तो वह मधु न पाकर मधु के गुणग्राहकों का कोपपात्र अवश्य बन जाता है। इस टीकाकार-युगल ने विषय के स्पष्टीकरण के लिए प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओं एवं तन्त्रग्रन्थों के वचनों को यथावसर प्रमाणरूप में उद्घृत किया है। उन्होंने माधवनिदान के प्रत्येक अध्याय के अनन्तर अग्रिम अध्याय के निर्धारण-क्रम के औचित्य का भी प्रतिपादन सफलतापूर्वक किया है। उन्होंने डिण्डिमघोषपूर्वक यह

भी कहा है कि माधवकर ने इस ग्रन्थ में जिस अंश को छोड़ दिया था, मैंने (अर्थात् हमने=विजयरक्षित अथवा श्रीकण्ठदत्त ने) इस ग्रन्थ की व्याख्या के प्रसङ्ग में उसे भी पूर्ण कर दिया है—

उपयुक्तमिहानुक्तं निदाने माधवेन यत्।
ग्रन्थव्याख्याप्रसङ्गेन मया तदपि लिख्यते।।

श्रीविजयरक्षित ईसवीय त्रयोदश शतक में हुए, ऐसा प्रत्यक्षशारीर के उपोद्घात में म.म. कविराज श्रीगणनाथसेन के वचनों से स्पष्ट है। मधुकोश-व्याख्या के अतिरिक्त श्रीविजयरक्षितप्रणीत कोई अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। श्रीकण्ठदत्त ने वृन्दप्रणीत 'सिद्धयोग' नामक ग्रन्थ पर 'कुसुमावली' नाम्नी व्याख्या की रचना की जो पूना से आनन्दाश्रमग्रन्थावली में प्रकाशित हुई है। माधवनिदान का मधुकोशव्याख्यासहित प्राचीनतम संस्करण सम्भवत: जीवानन्द विद्यासागर प्रैस, कलकत्ता से 1876 ई० में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था, ऐसा इतिहासविद् मानते हैं।

आतङ्कदर्पणटीका

श्रीप्रमोद वैद्य के पुत्र श्रीवाचस्पति वैद्य द्वारा यह सुप्रसिद्ध टीका रची गई। प्रस्तुत टीकाकार ने अपनी टीका लिखते हुए अधिकांश स्थल अविकलरूप से मधुकोशटीका से ले लिए हैं। फिर भी इनकी अपनी विशिष्ट व्याख्याशैली है जो विषय को अपने ढंग से स्पष्ट करती है। 'मधुकोश' तथा 'आतङ्कदर्पण' इस टीकाद्वय से भूषित माधवनिदान का प्रथम संस्करण सम्भवत: निर्णय सागर प्रैस, बम्बई द्वारा 1920 ई. में प्रकाशित हुआ था। इस प्रथम संस्करण में 'मधुकोश' तथा "आतङ्कदर्पण' दोंनों टीकाएं पूर्णरूप से प्रकाशित थीं। माधवनिदान ग्रन्थ का एक संस्करण (पञ्चम संस्करण) निर्णय सागर प्रैस द्वारा ही पुन: प्रकाशित हुआ 1955 ई० में। इस ग्रन्थ में 'मधुकोश' टीका पूर्णरूपेण प्रकाशित हुई तथा 'आतङ्कदर्पण' टीका के वे विशिष्टांश प्रकाशित हुए जो मधुकोशटीका से अतिरिक्त थे। इस 'माधवनिदान' ग्रन्थ का सम्पादन एवं संशोधन त्रिविक्रमात्मज आचार्य यादव शर्मा ने किया है। कालान्तर में इसी ग्रन्थ को भारत शासन के आर्थिक साहाय्य से चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी ने 1986 ई० में पुनर्मुद्रित किया। मधुकोशव्याख्यासहित 'माधवनिदान' ग्रन्थ का एक सुन्दर संस्करण चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी ने वि.सं. 2051 में प्रकाशित किया। इस विशिष्ट संस्करण के व्याख्याकार हैं डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी जिन्होंने 'विमला' एवं 'मधुधारा' नामक हिन्दी व्याख्या तथा विशेषवक्तव्यादि से विभूषित कर 'माधवनिदान' ग्रन्थ को सर्वजनसुबोध बनाकर चिकित्सकसमाज तथा अन्य सामाजिकों की महती सहायता की। अतएव वे सभी के साधुवाद के अधिकारी हैं। डॉ० त्रिपाठी द्वारा सम्पादित माधवनिदान ग्रन्थ का पुनर्मुद्रित संस्करण

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी द्वारा 2002 में प्रकाशित किया गया।

रोगविनिश्चयविवरण तथा अन्य टीकाएं

'रोगविनिश्चयविवरण' इस टीका के प्रणेता हैं कविराज नरसिंह। इस टीका के अन्य नाम 'सिद्धान्तचिन्तामणि' अथवा 'सिद्धान्तचन्द्रिका' भी हैं। 'माधवनिदान' पर अन्य टीकाएं भी लिखी गईं। श्रीवासुदेव ने 'सुबोधिनी' टीका लिखी। श्रीभावमिश्र ने 'माधवनिदानटिप्पणी' नामक टीका रची। श्रीभवानी सहाय ने 'रुग्विनिर्णय' नामक टीका का प्रणयन किया। श्रीरामकृष्ण ने 'वैद्यमनोरमा' नामक टीका लिखी। जम्मूनिवासी श्रीहारधन ने 'रुग्विनिश्चयपरिशिष्ट' नामक टीका रची। इन प्राचीन टीकाओं के अतिरिक्त आधुनिक विद्वानों ने भी अनेक टीकाएं लिखीं। विदेशी भाषाओं में भी माधवनिदान ग्रन्थ के अनेक अनुवाद हुए हैं जो अनेक वैशिष्ट्यों से सम्पन्न हैं। मधुकोशटीका के हिन्दी अनुवाद भी कुछ विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। 'मधुकोश' टीका पर डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ने 'मधुधारा' नाम्नी विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है। इस प्रकार 'माधवनिदान' ग्रन्थ पर रचित यह विपुल टीकासाहित्य तथ अनूदित साहित्य आयुर्वेद-जगत् में विमलविपुलबुद्धि माधवकर के अद्वितीय योगदान का परिचायक है।

आज आयुर्वेद के अध्येता शिष्य, प्राध्यापक गुरु, चिकित्सक, रोगी तथा स्वस्थ नागरक (नागरिक भी), सभी के लिए श्रीमाधवकरप्रणीत 'माधवनिदान' एक उपादेय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण आज उपलब्ध हैं। गहन शास्त्रीय अध्ययन करने वाले अध्येताओं, शोधार्थियों तथा विद्वानों के लिए 'मधुकोश', 'आतङ्कदर्पण' प्रभृति टीकाओं और इन तथा अन्य टीकाओं पर लिखी गई 'मधुधारा' प्रभृति अन्य टीकाओं तथा विशद व्याख्याओं से अलङ्कृत माधवनिदान के संस्करण द्रष्टव्य हैं। नूतन अध्येताओं, सामान्य नागरकों (नागरिकों भी) तथा चिकित्सकों के लिए 'माधवनिदान' ग्रन्थ का ऐसा संस्करण भी अपेक्षित है जिसमें उन्हें ग्रन्थ का मूलपाठ सुलभ हो, साथ ही हिन्दी भाषानुवाद भी सुलभ हो जिससे ग्रन्थ का भावार्थ सरलतापूर्वक समझ में आ जाए। पाठकों की इसी आवश्यकता को लक्ष्य में रखकर यह संस्करण प्रस्तुत है। इसमें 'माधवनिदान' ग्रन्थ का संस्कृत में मूलपाठ है तथा हिन्दी भाषाटीका दी गई है। सम्पूर्ण ग्रन्थ 79 अध्यायों में विभक्त है जिनके अन्तर्गत भी अनेक शीर्षक हैं। अनुवाद सरल, सुबोध तथ सरस हिन्दी भाषा में है। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में अध्यायसार, दोहा तथा कभी-कभी सोरठा में भी दिया गया है। जिज्ञासु पाठकों, आयुर्वेदरसिक सामान्य नागरिकों तथा चिकित्सकों को भी यह संस्करण रुचिकर लगेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

माधवनिदान के इस संस्करण की प्रस्तुति में हमें पूर्व के सभी संस्करणों,

विद्वान् टीकाकारों, व्याख्याकारों तथा संस्करणकर्ताओं से पूर्ण सहायता उपलब्ध हुई है। एतदर्थ हम उन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

भारतीय विद्या के विभिन्न विषयों के प्रसिद्ध प्रकाशक, ईस्टर्न बुक लिंकर्स के स्वत्वाधिकारी श्री शामलाल मल्होत्रा तथा उनके सुयोग्य पुत्र श्री रवि मल्होत्रा विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने श्रीमाधवकरप्रणीत इस अद्वितीय ग्रन्थ 'माधवनिदान' का प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित कर संस्कृत-साहित्य एवम् आयुर्वेद-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। भविष्य में वे आयुर्वेद के अन्य ग्रन्थरत्न प्रकाशित करें, ऐसी हमारी शुभाशंसा है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे उन्हें सद्बुद्धि, सत्स्वास्थ्य तथा दीर्घायुष्य से सम्पन्न करें।

सुषमा कुलश्रेष्ठ
निदेशिका
कालिदास संस्कृत संगीत
कला एकेडमी, दिल्ली

श्रावण कृष्ण षष्ठी
19 जुलाई, 2003

रोगनामानुक्रमणिका

निदानोक्तानां रोगाणामरबीभाषायामाङ्ग्लभाषायाञ्च नामानि

व्याधि का नाम हिन्दी में	व्याधि का नाम अरबी में	व्याधि का नाम अंग्रेज़ी में
ज्वर	हुम्मा	Pyrexia/पायरेक्सिआ fever/फीवर
सामान्यज्वर	हुम्मा योमी	Febricula/फेब्रिक्युला
सन्निपातज्वर		Typhoid Fever/टायफ़ॉइड फीवर
विषमज्वर	हुम्मा अजामिया	Malarial Fever/मलेरिअल फीवर
सन्ततज्वर	हुम्मा मुतफ़त्तिरा	Malarial Remittent fever/ मलेरिअल रेमिटन्ट फीवर
सततज्वर		Continuous Fever/कोंटिन्युअस् फीवर
अन्येद्युष्कज्वर	हुम्मा मुआजिबा	Quotidian Fever/कोटिडियन् फीवर
तृतीयकज्वर	हुम्मा गिब्ब दायरा	Tertian Fever/टर्शियन फीवर
चतुर्थकज्वर	हुम्मा रिबा	Quartan Fever/क्वार्टन् फीवर
चातुर्थकविपर्यय		Double Quartan Fever/डबल् क्वार्टन फीवर
अभिघातज्वर	हुम्मा जरबी	Traumatic Fever/ट्रॉमॅटिक् फीवर
विदाहज्वर	हुम्मा वरमी	Inflammatory Fever/इन्फ्लमेटरी फीवर
सूतिकाज्वर	हुम्मा ज़चगी	Puerperal Fever/प्युएर्पेरल् फीवर
स्तन्योत्थज्वर		Milk Fever/मिल्क फीवर Fever of Lactation/फीवर ऑफ् लॅक्टेशन्
आगन्तुकज्वर		Adventitious Fever/अॅड्वेन्टिशिस् फीवर
ओषधि-तृणगन्धज		Hay Fever/हे फीवर
काम-भय-शोक-क्रोधज्वर		Pyrexia of emotions/पाय्रेक्सिअ ऑफ़् इमोशन्स
भूताभिषङ्गज्वर		Fever of Evil Spirits/फीवर ऑफ़् ईविल स्पिरिट्स
प्रलेपकज्वर		Hectic Fever/हेक्टिक् फीवर

अतिसार	इसहाल	Diarrhoea/डायेरिया
आमातिसार		Mucous-colitisम्यूकस् कोलायटिस्
प्रवाहिका	ज़हीर	Dysentery/डीसेन्ट्री
ग्रहणी	इसहाल मुज्मिन	Chronic Diarrhoea, Sprue/ क्रॉनिक् डायेरिया, स्प्रू
अर्श	बवासीर	Piles, Haemorrhoids/पाइल्स, हिमॉरॉइड्स
रक्तार्श	बवासीर उल दम	Bleeding Piles/ब्लीडिंग पाइल्स
अग्निमान्द्य	ज़ोफ़ उल मेदा	Dyspepsi/डिस्पेप्शिया
अजीर्ण	बुत्लान हज़्म	Indigestion/इन्डिजेशन
विसूचिका	हैजा	Cholera/कॉलरा
आध्मान	नफ़्ख़ उल मेदा	Tympanitis/टिम्पॅनाइटिस् Meteorism/मीटिऑरिज़्म्
कृमि	दीदान उल अमआ	Worms/वर्म्स
पाण्डुरोग	फ़क़रुद्दम	Anaemia/ॲनिमिआ
रक्तपित्त		Haemorrhagic diseases, Scurvy/ हैमेरेजिक डिज़ीजेस, स्कर्वी
कामला	यरक़ान अस्फ़र	Jaundice/जॉन्डिस्
हलीमक	यरक़ान अख़्जर	Chlorosis/क्लोरोसिस
राजयक्ष्मा	हुम्मा दिक़	Phthisis, Consumption, Pulmonary Tuberculosis/ थायसिस्, कंज़म्प्शन, पल्मनरी ट्यूबर्क्युलोसिस्
उर:क्षत	सिल	Pulmonary Cavitation/पल्मनरी कॅविटेशन
कास	सोआल	Cough/कॅफ्
हिक्का	फ़ुवाक	Hiccup/हिक्कप्
श्वास	रबू, ज़ीक़उन्नफ़्स	Dyspnoea/डिस्प्नीआ
तमकश्वास		Asthama/ॲस्थ्मा
क्षुद्रश्वास		Breathlessness/ब्रेथ्लेस्नेस्
महाश्वास		Dyspnoea of failing heart or respiration/डिस्प्नीआ ऑफ़् फेलिंग हार्ट ऑर रेस्पिरेशन्

स्वरभङ्ग	फ़साद उस्सौत	Hoarseness/होर्सनेस्
अरोचक		Loss of taste and appetite/लॉस ऑफ् टेस्ट अॅन्ड अॅपेटाइट, Anorexia/ अॅनोरेक्सिआ
छर्दि	कै	Vomiting/वॉमिटिंग्,
तृषः	अतश मुफ़रत	Thirst/थर्स्ट
मूर्च्छा	गशी	Syncope, Fainting/सिकोप, फ़ेन्टिंग
भ्रम	सदर, दवार	Giddiness/गिडिनेस्
संन्यास	सक्ता	Apoplexy/अॅपॅप्लेक्सी, Catalepsy/ कॅटॅलेप्सी
मदात्यय	खुम्र	Alcoholism/अॅल्कॉहॉलिज़म्
उन्माद	जनुन	Insanity/इन्सॅनिटी
अपस्मार	सरआ	Epilepsy/एपिलेप्सी
आक्षेपक	तशन्नुज	Convulsions/कन्वल्जन्स
धनुर्वात		Tetanus/टेटॅनस्
धनुःस्तम्भ		Tetanic rigidity/टेटॅनेक रिजिडिटी
पक्षवध, पक्षाघात	इस्तिर्ख़ाअ, फ़ालीज	Hemiplegia/हेमिप्लीजिआ
सर्वाङ्गवात		Diplegia/डाय्प्लीजिआ
अर्दित	लक़वा	Facial Paralysis/फेशल पॅरॅलिसिस्
मन्यास्तम्भ	इस्तिर्खाय् उल चम्बर	Stiff neck/स्टिफ़ नेक् Torticolis, Wry neck/टॉर्टिकोलिस्, राय् नेक
जिह्वास्तम्भ	इस्तिर्ख़ाय् उल लसान	Paralysis of the Tongue, Glossal palsy/पॅरॅलिसिस् ऑफ़् दी टंग्, ग्लॉसल् पल्सी
पादहर्ष		Numbness of feet/नम्बनेस् ऑफ़् फ़ीट्
ऊरुस्तम्भ	इस्तिर्ख़ाय् उल फ़ख़्ज़	Paraplegia/पॅरॅप्लीजिआ
अन्तरायास		Emprosthotonos/एम्प्रॉस्थॉटोनस्
बाह्यायाम		Opisthotonos/ओपिस्थॉटोनस्
दण्डापतानक		Plenosthotonos/प्लेनॉस्थॉटोनस्
हनुग्रह		Trismus, Lock jaw/ट्रिस्मस्, लॉक् जॉ

खञ्ज		Limp/लिम्प्
पङ्गु		Paraplegia/पॅरेप्लीजिआ
कलायखञ्ज		Lathirism/लॅथीरिज़म्
अंसशोष		Osteoarthritis of the shoulder joint/ऑस्टिओआर्थ्राइटिस् ऑफ़ दी शोल्डर जॉइन्ट्
क्रोष्टुकशीर्ष		Inflamed knee/इन्फ्लेम्ड नी
वेपथु	राअशा	Paralysis Agitans/पॅरॅलिसिस् ॲजिटॅन्स्
अपतन्त्रक	इख़्तनाक़ उल रहम	Hysteria/हिस्टेरिआ
गृध्रसी	इर्क़ुन्निसा	Sciatica/सायेटिका
विश्वाची	इस्तिर्ख़ाय् उल यद	Radio-ulnar Paralysis/रेडिओअल्नर पॅरॅलिसिस्
मूकत्व	बकीम	Aphasia/ॲफेशिया
वातरक्त		Gout/गाऊट्
ओष्ठभेद	शक्कुल शिफ़तेन	Cracks of Lip/क्रॅक्स् ऑफ् लिप्
दन्तभेद	शक्कुल असनान	
नखभेद	शक्कुल अज्फार	Onychia/ऑनीकिआ
अरसज्ञाता	बुत्लान उल झोक	Loss of sensibility to taste/लॉस् ऑफ़् सेन्सिबिलिटी टु टेस्ट्
घ्राणनाश		Loss of Smell/लॉस् ऑफ़् स्मेल्
जृम्भा	तशावुब	Yawning/यॉनिंग्
अस्वप्न (निद्रानाश)	सहर	Insomnia/इन्सॉम्निआ
अतिप्रलाप	हज़यान्	Delirium/डिलीरियम्
आमवात	बज़अ ऊल् मुफ़ासील	Rheumatism/र्यूमॅटिज़म्
शूल	वज़अ उल मेअदा, कुलंज	Colic/कॉलिक्
परिणामशूल		Gastralgokenosis, Hunger pain/गेस्ट्रॅल्गोकेनोसिस्, हंगर पेन्
हृद्रोग	वज़अ उल क़ल्ब	Diseases of the Heart/डिज़ीजेस् ऑफ़् दी हार्ट् Angina Pectoris/ॲन्जायना पेक्टोरिस्
अम्लपित्त		Acidity/ॲसिडिटी
आनाह		Constipation/कॉन्स्टिपेशन

गुल्म		Abdominal Tumour/ ॲब्डॉमिनल ट्यूमर्
रक्तगुल्म		Ovarian or uterine tumour/ ओवेरियन ऑर् यूटेराइन ट्यूमर्
मूत्रकृच्छ्र	तक़्तीर उर बौल	Stranguary/स्ट्रॅंग्युरी, Painful micturition/पेनफ़ुल् मिक्च्युरिशन्
मूत्रघात	एहतेबास उल बौल	Obstructed micturition/ ऑब्स्ट्रक्टेड् मिक्च्युरिशन्
वातकुण्डलिका		Spasmodic stricture/स्पॅस्मॉडिक् स्ट्रिक्चर
अष्ठीला		Enlargement of Prostate/ एन्लार्जमेन्ट् ऑफ़् प्रॉस्टेट्
वातबस्ति		Retention of urine/रिटेन्शन् ऑफ़् यूरिन्
मूत्रातीत	इस्तिर्ख़ाय् उल मसाना	Incontinence/इन्कॉन्टिनन्स्
मूत्रजठर	इन्तिफ़ाख़ उल मसाना	Distended bladdar/डिस्टेन्डेड ब्लॅडर
मूत्रोत्सङ्ग		Stricture of Urethra/स्ट्रिक्चर ऑफ़् यूरीथ्रा
मूत्रक्षय		Supression of Urine/सप्रेशन् ऑफ़् यूरिन
मूत्रग्रन्थि		Tumour of the bladder/ट्यूमर् ऑफ़् दी ब्लॅडर
मूत्रसाद		Cystitis/सिस्टायटिस्
विड्विघात		Vesico-Intestinal Fistula/ वेसायको-इन्टेस्टायनल फिस्चूला
खल्ली		Muscular Spasm of Hand and Feet/मरक्युलर स्फज़्म् आफ़् हॅन्ड, एन्ड् फीट्
वताकण्टक		Sprain Ankle/स्प्रेन अँकल्
अश्मरी	हसात	Calculus/कॅल्क्यूलस्
वाताश्मरी		Uric acid calculus/युरिक् एसिड् कॅल्क्यूलस्

पित्ताश्मरी		Mixed calculus/मिक्स्ड् कॅल्क्यूलस्
कफाश्मरी		Stone of Phosphates/स्टोन् ऑफ़् फ़ॉस्फ़ेट्स्
शुक्राश्मरी		Seminal calculus/सेमिनल कॅल्क्यूलस्
शर्करा	रमल	Gravel/ग्रॅवल्
प्रमेह	ज़िर्यान	Diseases of the urine/डिज़ीज़ेस् ऑफ़ दी यूरिन्
उदकमेह		Diabetes Insipidus/डाएबिटिस् इन्सिपिडस्
पिष्टमेह		Chylurea/काइल्यूरिया
हस्तिमेह		Anuresis/अन्युरेसिस् Incontinence of urine/इन्कॉन्टिनन्स् आफ़् यूरिन्
लाला-वसा-मज्जा-मेह		Albuminuria/ॲल्ब्यूमिन्यूरिया
रक्तमेह	बौल उल दम	Haematurea/हीमॅच्यूरिया
शुक्रमेह	जिर्यान मनी	Spermatorrhoea/स्पॅर्मॅटोन्हिआ
इक्षुमेह	झयाबीतुस	Diabetes Mellitus/डाएबिटिस् मेलिटस्
सान्द्रमेह		Mucous in urine/म्युकस इन् यूरिन्
सुरामेह		Phosphaturia/फ़ोल्फ़ेचूरिया
सिकतामेह		Urates in urine/यूरेट्स् इन् यूरिन्
क्षारमेह		Alkaline urine/ॲल्कलाइन यूरिन्
हारिद्रमेह		Bile in urine/बाईल इन् यूरिन्
प्रमेहपिडिका		Carbuncle/कार्बन्कल
मेदोवृद्धि	समन मुफ़रत	Obesity/ओबेसिटी
ऊर्ध्ववात		Eructation/इरक्टेशन
प्रत्यष्ठीला		Ovaritis/ओवरायटिस्
वाताष्ठीला		Typhlitis/टायफ्लायटिस्
प्लीहोदर	वरम उल तिहाल	Splenitis, splenic enlargement/ स्प्लेनायटिस, स्प्लेनिक् एन्लार्जमेन्ट
यकृद्दाल्युदर	वरम उल कबिद	Hepatitis, Hepatic enlargement/ हेपेटायटिस, हेपॅटिक् एन्लार्जमेन्ट
जलोदर	इस्तिस्क़ाअ	Ascites/ॲसायटिस्
बद्धगुदोदर		Intestinal obstruction/ इन्टेस्टायनल ऑब्स्ट्रक्शन्

शोथ	वरम	Swelling, Dropsy, Anasarca, CEdema/स्वेलिंग, ड्राप्सी, ॲनासार्का, इडीमा
क्षतोदर	कुरुह उल अमआ	Ulceration of the bowel/ अलसरेशन् ऑफ़् दी बॉवेल
मुष्क-वृषणवृद्धि		Scrotal Enlargement/स्क्रोटल् एन्लार्जमेन्ट्
मूत्रजवृषणवृद्धि	क़िल्लतुल मेआ	Hydrocele/हायड्रोसील
दोषजवृषणवृद्धि	वरम उल उन्सियेन	Orchitis/ऑकायटिस्
रक्तजवृषणवृद्धि		Haematocele/हीमॅटोसील
वातजमुष्कवृद्धि		Chronic orchitis//क्रॉनिक् ऑर्काइटिस्
पित्तजमुष्कवृद्धि		Acute orchitis/ॲक्यूट ऑर्काइटिस्
कफजमुष्कवृद्धि		Tubercle Testes/टयुबरकल् टेस्टिस
मेदोजमुष्कवृद्धि	अझीम उल, उन्सियेन	Elephantiasis of Scrotum/ एलिफ़न्टाइसिस् ऑफ़् स्क्रोटम्
अन्त्रवृद्धि	क़िल्लतुल अमआ	Inguinal Hernia/इन्वायनल हर्निया
गलगण्ड		Goitre/गॉयटर
गण्डमाला, अपची	ख़नाझीर	Scrofula/स्क्रॉफ्यूला Tubercle Tubercle glands/टयुबरकल् ग्लॅन्डस्
मेदोर्बुद		Fatty Tumour/फॅटी ट्यूमर्
मांसार्बुद	सरतान	Myoma/मायोमा
रक्तार्बुद		Cancer/कॅन्सर्
असाध्य अर्बुद	बशर	Malignant Tumour/मॅलिग्नॅन्ट ट्यूमर्
ग्रन्थि		Enlarged lymphatic Gland/ एन्लार्जड् लिंफॅटिक् ग्लॅन्ड
श्लीपद	दाय् उल फ़ील	Elephantiasis/एलिफ़ॅन्टाएसिस
विद्रधि	दुबेला	Abscess/ॲब्सेस्
व्रणशोथ	याबला	Inflammation/इन्फ्लमेशन्
शारीरव्रण		Idiopathic Ulcer/ईडिओपॅथिक अल्सर
सद्योव्रण		Traumatic Wound/ट्रॉमटिक वुन्ड
छिन्न		Slashed/स्लॅश्ड

भिन्न		Punctured/पंक्चर्ड
विद्ध		Stab/स्टॅब्
क्षत		Contused wound/कन्ट्युज़्ड वुन्ड
पिच्चित		Crushed/क्रश्ड
घृष्ट		Excoriated/एक्स्कोरिएटेड
अस्थिभङ्ग	कस्र	Fracture/फ्रॅक्चर
सन्धिविश्लेष	ख़लआ	Dislocation/डिस्लोकेशन
अश्वकर्ण		Spiral Fracture/स्पायरल फ्रॅक्चर्
मज्जागत		Impacted Fracture/इम्पॅक्टेड फ्रॅक्चर्
अस्थिच्छल्लिका		Green Stick Fracture/ग्रीन् स्टिक् फ्रॅक्चर्
नाडीव्रण	नासूर	Sinus, Fistula/सायनस्, फिस्चूला
भगन्दर	नवासीर	Fistula in Ano/फिस्चूला इन् एनो
लिङ्गार्श	शालील उल कुज़िब	Warts/वॉर्टस
कुष्ठ		Diseases of the skin/डिज़ीज़ेस् ऑफ़् दी स्किन्
महाकुष्ठ	जुझाम	Leprosy/लेप्रसी
सिध्म	ख़ल्फ़	Cloasma/क्लोआस्मा Ptyriasis/ टिरिॲसिस्
चर्मकुष्ठ		Zeroderma/ज़ेरोडर्मा
किटिभ		Psoriasis/सोराइसिस्
वैपादिककुष्ठ		Rhagades/हॅगेड्स
अलसक		Lichen/लायकेन्
कच्छु		Scabies, Itch/स्केबीज़्, इच्
विस्फोटक		Impetigo/इम्पेटिगो
शतारु		Rupia/रुपिया
विचर्चिका		Pemphigus/पेंफिगस्
दद्रु	कुबा	Ringworm/रिंगवर्म
किलास	वरस अब्यज़	Leucoderma/ल्यूकोडर्मा
पामा	जर्ब	Eczema/एक्ज़िमा
विसर्प	हुम्रा	Erysipelas/एरिसिपेलास्
ग्रन्थिविसर्प		Erythema-Nodosum/एरीज़िमा-नोडोसम्

कर्दमविसर्प		Ceilulitis/सेल्युलाइटिस्
क्षतविसर्प		Traumatic Erysipelas/ट्रॉमॅटिक एरिसिपेलास्
शीतपित्त		Urticaria/अर्टिकेरिआ
विस्फोट		Exanthymeta/एक्ज़ॅन्थिमेटा
मसूरिका	जुदरी	Small Pox/स्मॉल् पॉक्स्
रोमान्तिका		Measles/मीज़ल्स्
इन्द्रलुप्त	इन्तशार उल शअर	Falling of Hair, Baldness/ फ़ॉलिंग् ऑफ़् हेअर, बॉल्डनेस्
पाषाणगर्दभ		Mumps/मम्प्स्
विदारिका		Bubo/ब्यूबो
पलित	शेब	Premature grey hair/प्रिमॅच्योर ग्रे हेअर
मुखदूषिका	बुसूर उल लुब्न	Acne/ॲक्नी
मषक	सालील	Mole/मोल
गुदभ्रंश	ख़रुज उल मुक़अद	Prolapsus Ani/प्रोलॅप्सस एनाय
तिलकालक	खाल	
चिप्प	दाख़िस	Whitlow/व्हिट्लो
सन्निरुद्धगुद		Stricture of the Rectum/ स्ट्रिक्चर ऑफ़् दी रेक्टम्
कक्षा		Herpes Zoster/हर्पीस ज़ॉस्टर
कदर		Corn/कॉर्न
निरुद्धप्रकश		Phimosis/फ़ायमोसिस्
परिवर्तिका		Paraphimosis/पॅराफ़ायमोसिस्
अवपाटिका		Tear in the prepuce/टिअर इन दी प्रेप्यूस
अहिपूतना	हक़ उल मुक़अद	Pruritus anii/प्रूरायटिस् एनाय्
उपदंश	आतशक	Soft chancre/सॉफ्ट शँकर
फिरङ्गोपदंश		Hard chancre, syphilis/हार्ड् शँकर, सिफ़िलिस्
खलिवर्धन	असनान उल झायदा	ExtraTooth/एक्स्ट्रा टूथ
दन्तनाली	कुरूह उल लिस्सा	Sinus in the Gums/सायनस् इन् दी गम्स्

क्रिमिदन्तक	दीदान उल लिस्सा	Caries of Teeth/कॅरीज् ऑफ़् टीथ
दन्तहर्ष	जर्स	Irritation in the Tooth/इरिटेशन् इन् दी टुथ
दन्तशर्करा	हजर	Tartar/टार्टर्
श्यावदन्त		Black or Necrosed Tooth/ब्लॅक् ऑर् नेकोइड् टुथ्
कण्ठशुण्डी		Elongated Uvula/एलँगेटेड् उव्युला
उपजिह्वा	ज(द)फ्द उल लिस्सान	Ranulla/रॅन्यूला
मुखरोग (सर्वसर)		Stomatitis/स्टोमॅटाइटिस्
शीताद		Spongy gums/स्पॉन्जी गम्स्
दन्तवेष्ट		Pyorrhoea/पायोरिआ
दन्तपुप्पुट, शौषिर		Gum boil/गम् बॉइल
अलास		Sublingual abscess/सब्लिन्वल ॲब्सेस्
ताल्वर्बुद		Palatal Cancer/पॅलेटल कॅन्सर
कर्णनाद	तनीन, वदी	Noises in the Ear/नॉयज़ेस् इन दी इअर
कर्णस्राव	इन्फ़ज़ार उल उज़्न	Otorrhoea/ओटोरिआ
कर्णशूल	वज़अ उल उज़्न	Otitis, Otalgia/आटाय्टिस्, ओटॅल्जिआ
कर्णपाक	कुर्हतुल उज़्न	Suppuration in the ear/सप्युरेशन् इन् दी इअर
पूतिकर्ण		Faetid discharge from the ear/फ़ीटिडडिस्चार्ज फ़्रॉम् दी इअर
क्रिमिकर्णक	दीदान उल उज़्न	Worms in ear/वर्म्स् इन् इअर
कर्णशोथ	वरम उल उज़्न	Inflammation of the ear/ इन्फ्लमेशन् ऑफ़् दी इअर
वाधिर्य	क़र	Deafness/डेफ़्नेस
अपीनस		Ozoena/ओज़ीना
नासापाक	बशूर उल अन्क़	Pustule in the Nose, Suppurative Rhinites/पुस्चूल इन दी नोज़, सप्युरेटिव हायनाय्टिस्
क्षवधु	अत्स	Sneezing/स्नीझिंग

नासाशोष	जफ़ाफ़ उल अन्फ़	Dryness of Nose/ड्रायनेस् ऑफ् नोज़
प्रतिश्याय	ज़ुकाम	Catarrah or Cold in the Nose/ कॅटार्ह ऑर कोल्ड इन् दी नोज़्
अभिष्यन्द	दमा	Ophthalmia/ऑफ्थेल्मिआ
अक्षिपाकात्यय	रमद	
शिरोत्पात	सबल	Pannus/पॅनस्
शुक्ल	व्याज	Corneal Ulcer/कॉर्निअल् अल्सर
पित्तविदग्धदृष्टि	ज़हर	Day Blindness/डे ब्लाइन्डनेस्, Hemaralopia/हिमॅरॅलोपिआ
पाददारी		Cracks in the sole/क्रॅक्स् इन दी सोल्
पद्मिनीकण्टक		Papilloma of the skin/पॅपीलोमा ऑफ़् दी स्किन्
कर्णगूथक		Wax in the ear/वॅक्स् इन् दी इअर्
तुण्डीकेरी, अध्रुष		Abscess of the palate/ॲब्सेस् ऑफ़् दी पॅलेट
मांसतान		Diphtheria/डिफ्थीरिआ
श्लेष्मविदग्धदृष्टि	अशा	Night Blindness, Nyctalopia/ नाइट् ब्लाइण्डनेस्, निक्टॅलोपिआ
अर्म		Pterygium/टेरिजिअम्
नेत्रनाली	नासूर उल अइन्	Lachrymal Fistula/लॅकीमल फ़िच्यूला
लिङ्गनाश	नझुल उल माअ	Cataract/कॅटॅरॅक्ट
क्रिमिग्रन्थि		Parasites on Suppurated glands/पॅरॅसाइट्स ऑन् सप्युरेटेड ग्लॅन्ड्स्
वर्त्मार्श		Granular Conjunctivitis/ ग्रॅन्युलर कन्जन्क्टिवायटिस्
अञ्जननामिका		Stye/स्टाय्
वातहतवर्त्म	इस्तिर्ख़ाय् उल जुफ़्न	Ptosis/टोसीस्
निमेष		Blepharospasm/ब्लेफॅरोस्पॅज़्म्
कुञ्चन	इलतिसांक उल जुफ़्म	Atrophy/ॲट्रोफ़ी

पक्ष्मकोप	शअर मुन्कलय	Trichiasis/ट्रिकिॲसिस्
उपपक्ष्म	शअर ज्ञायद	Trichiasis/ट्रिकिॲसिस्
पक्ष्मशात	इन्तशार उल अहदाब	Tinea Tarsi/टिनिआ टार्साय्
शिर:शूल	सुदाअ	Headache/हेद्एक्
अर्धावभेद	शफ़ीका	Hemicrania/हेमिक्रेनिआ
रक्तप्रदर	इस्तहाज़ा	Menorrhagia/मेनोरेजिआ
श्वेतप्रदर		Leucorrhea/ल्युकोरिआ
वन्ध्यात्व	अक्र	Sterility, Barrenness/स्टेरिलिटी, बॅरन्नेस
योनिकन्द		Vaginal Polypus/वेजायनल् पॉलिपस्
गर्भस्राव	इस्कात हमल	Abortion/ॲबॉर्शन्
मूढगर्भ		Difficult labour/डिफ़िकल्ट् लेबर
मक्कल्लशूल		After pains/आफ़्टर् पेन्स्
स्तनरोगकोप		Mammary Inflammation/ मॅमरी इन्फ़्लमेशन
स्तन्यदुष्ट		Diseased Milk/डिज़ीज़्ड मिल्क्
सूतिकारोग		Peurperal Fever/प्युएर्पेरल् फ़ीवर
गति		Presentation/प्रेज़ेन्टेशन
सङ्कीलक		Vertex/वेर्टेक्स्
प्रतिखुर		Hands and Feet/हँडस् अँड् फ़ीट्
बीजक		Head with both hands/हैड विद् बोथ हैंडस्
परिघ		Transverse/ट्रान्सवर्स
बालरोग		Diseases of children/डिज़ीजेस् ऑफ़् चिल्रेन
कुकूणक		Ophthalmia in Children/ ऑप्थॅल्मिआ इन् चिल्रेन्
पारिगर्भिक		Pining/पायनिंग्
तालुकण्टक		Polypus on hard palate/ पॉलिपस् ऑन हार्ड पॅलेट्
महापद्म विसर्प		Cellulitis/सेल्युलाइटिस्
योनिव्यापद्		Disease of Vagina/डिज़ीज़् ऑफ़् वेजाय्ना

आर्तव	Menstruation/मेनस्ट्रुएशन्
सर्पविष	Snake poison/स्नेक पॉइज़न
सर्पदंशविषविकृति	Snake Poisoning/स्नेक पॉइज़निंग
आखुविष	Rat bite fever or poisoning/ रॅट बाइट् फीवर ऑर पॉइज़निंग्
वृश्चिकदंश	Scorpion bite/स्कॉर्पिअन बाइट
वृश्चिकदंशविकृति	Scorpion bite or poisoning/ स्कॉरपिअन् बाइट् ऑर पॉइज़निंग्
स्नायुक	Guinea worm/गिनीवर्म

विषय-सूची

अथ मेदोरोगनिदानम् 189

अथोदररोगनिदानम् 191

अथ शोथरोगनिदानम् 198

अथाण्डवृद्धिरोगनिदानम् 203

अथ गलगण्डरोगनिदानम् 206

अथ ग्रन्थिरोगनिदानम् 209

अथ शूकरोगनिदानम् 246

अथ कुष्ठरोगनिदानम् 251

अथ शीतपित्तरोगनिदानम् 261

माधवनिदानम्

भाषाटीकासहितम्

मङ्गलाचरण और ग्रन्थप्रयोजन

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम्।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम्।। १।।
नानामुनीनां वचनैरिदानीं समासतः सद्भिषजां नियोगात्।
सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम्।। २।।
नानातन्त्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम्।
सुखं विज्ञातुमातङ्कमयमेव भविष्यति।। ३।।

दोहा— गणपति चरण नवाइ शिर, करि विश्वेश्वर ध्यान।
माधव रचित निदान की, भाषा करौं सुजान।। १।।

सोरठा— सब बिध ज्वर सुनिदानु, कह्यो प्रथम अध्याय महं।
वात पित्त कफ जानु, सन्निपात पुनि द्वन्द्व-ज्वर।। २।।

जगत् की उत्पत्ति, पालन, और संहार के कारण, स्वर्ग और मोक्ष के द्वार, तीनों लोकों के रक्षक शिवजी को प्रणाम कर, नाना मुनियों के वचनों के मत से, और अच्छे वैद्यों की आज्ञा से, उपद्रव और शुभाशुभ के चिह्नों से युक्त रोगों के निर्णयकारक इस संक्षिप्त ग्रन्थ की रचना करता हूँ। नाना प्रकार के तन्त्रों से अज्ञ अल्पबुद्धि वैद्यों को सुखपूर्वक रोगों को जानने के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी होगा।। १-३।।

व्याधिज्ञान के पञ्च कारण

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम्।। ४।।

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति इन पाँच प्रकारों से रोगों का ज्ञान होता है।। ४।।

निदान और पूर्वरूप

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।
निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते।। ५।।
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः।
लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद् व्याधीनां तद्यथायथम्।। ६।।

निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये सब निदान के नाम हैं। आदिकारण को निदान कहते हैं। जिससे रोग के पहले रूप का ज्ञान होता है, उसे पूर्वरूप और प्राग्रूप कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। सामान्य और विशिष्टसामान्य। पूर्वरूप से उत्पन्न होने वाले रोग का लक्षण विदित हो जाता है। जिसमें उत्पन्न होने वाले रोग का ज्ञान सामान्य रीति से ही कुछ अधिकता न जानी जाए, वह सामान्य पूर्वरूप कहलाता है। जिसमें रोग के प्रारम्भ में दोषादि स्पष्ट विदित हो जाते हैं, उसे विशिष्टपूर्वरूप कहते हैं।। ५-६।।

रूप

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते।
संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः।। ७।।

पूर्वरूप जब प्रकट हो जाता है, तब रूप कहलाता है। संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न और आकृति, ये सब रूप के नाम हैं।। ७।।

उपशय

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्।। ८।।
विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः।
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्याभिसंज्ञितः।। ९।।

हेतु, व्याधिविपर्यस्त, विपर्यस्तार्थ, इनके विपरीत करने वाले औषधों, अन्नों और विहारों के सुख कराने वाले उपयोग को व्याधि का उपशय कहते हैं। और उसी को व्याधि का सात्म्य भी कहते हैं और औषध, अन्न, विहार इन तीनों के दुष्कारक उपयोग को अनुपशय कहते हैं। उसी का नाम व्याध्यात्म्य भी है।। ८-९।।

सम्प्राप्ति

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता।
निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः।। १०।।
संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः।
सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति।। ११।।

जो वातादि दोषों के दुष्ट होने से अपने स्थान को छोड़ इधर-उधर नीचे-ऊपर फैलती चली जाती है और रोग को उत्पन्न करती है, उसको सम्प्राप्ति कहते हैं। उसी को जाति और आगति भी कहते हैं। संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और काल, ये सब सम्प्राप्ति के भेद हैं।, संख्या जैसे इसी ग्रन्थ में आठ प्रकार के ज्वर कहे हैं। इस का नाम संख्याविशेषसम्प्राप्ति है।। १०-११।।

व्याधि की प्रधानता

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना।
स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत्।। १२।।

जब वात-पित्त-कफों के द्रोष एक संग हों, चाहे समान अंशों से, चाहे न्यूनाधिक अंशों से तो उसे विकल्प सम्प्राप्ति कहते हैं। जहाँ रोग अपने अधीन हो, उसे प्राधान्य सम्प्राप्ति कहते हैं। जहाँ व्याधि अपने अधीन न हो, उसे अप्राधान्य सम्प्राप्ति कहते हैं।। १२।।

व्याधिकाल

हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम्।
नक्तन्दिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम्।। १३।।

जब हेतु आदि सम्पूर्ण अङ्गों से विद्यमान हों तो रोग को बलवान् जाने। जो सब अङ्गों से युक्त न हों, थोड़े ही हों तो रोग को निर्बल जाने। रात्रि, दिन, ऋतु, आहार इनके अंशों से रोग के काल को समझे, इसी को कालरूप सम्प्राप्ति कहते हैं। रात्रि-दिन के तीन-तीन भाग करके कफ, पित्त और वात

का काल जान लें। ऐसे ही वसन्त ऋतु कफ का समय, शरद् पित्त का, और वर्षा वात का काल है, यह जान लें।। १३।।

निदान के विशेष कारण

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते।
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।। १४।।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम्।
निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते।। १५।।

इस भाँति निदान का अर्थ संक्षेप से कहा। अब विस्तार से कहते हैं। सब रोगों के कारण कुपित वात, पित्त और कफ ही होते हैं। इनका कोप नाना प्रकार के अहित अपथ्यों के सेवन से होता है। रोग के अर्थ का निदान रोग ही से होता है। अर्थात् रोग ही से रोग उत्पन्न होता है।। १४-१५।।

रोग से रोग की उत्पत्ति

तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते।
रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते।। १६।।
प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोथ एव च।
अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते।। १७।।
प्रतिश्यायादथो कासः कासात्सञ्जायते क्षयः।
क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते।। १८।।
ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः।
कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति।। १९।।
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च।
एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यन्ते व्याधिसङ्कराः।। २०।।
तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम्।
ज्ञातव्यो वक्ष्यते सोऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः।। २१।।

जैसे कि ज्वर के सन्ताप से रक्तपित्त उत्पन्न होता है। रक्तपित्त से ज्वर होता है, और ज्वर-रक्तपित्त दोनों से श्वास उत्पन्न होता है। प्लीहा के बढ़ने

से उदररोग होता है। उदररोग से शोथरोग होता है। अर्श (बवासीर) से जठररोग और वायुगोलादि गुल्मरोग उत्पन्न होते हैं। प्रतिश्याय (पीनस रोग) से, नासिका बहने से और सर्दी होने से खाँसी होती है। खाँसी से होते-होते क्षयरोग होता है। यह क्षयरोग सब रोगों का हेतु और सब रोगों का राजा है। इसके होने से सब अङ्ग सूख जाते हैं। ये सब रोग पहले केवल रोग रहते हैं। फिर अपथ्यादि करने से ये ही अन्य रोग के कारण हो जाते हैं। कोई रोग किसी रोग का कारण होकर आप फिर शान्त हो जाता है। कोई ऐसा होता है कि अन्य रोग को उत्पन्न कर देता है और आप भी बना रहता है, शान्त नहीं होता। इस प्रकार रोग एक दूसरे से मिलकर मनुष्यों को बड़े-बड़े कष्ट देते हैं। इससे उत्तम सिद्धि की इच्छा रखने वाले अच्छे वैद्यों को उचित है कि ज्वरादिकों का निदान जो कहेंगे, उसको भलीभाँति जानें।। १६-२१।।

अथ ज्वररोगनिदानम्

ज्वर की उत्पत्ति

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसंघातागन्तुजः स्मृतः।। २२।।

दक्षप्रजापति के अपमान से क्रोधित हुए रुद्रजी के निश्श्वास से ज्वर उत्पन्न हुआ है। वह आठ प्रकार का है। वातज, पित्तज, कफज, तीन द्वन्द्वज अर्थात् वात-पित्तादिकों के दो-दो के मिलने से उत्पन्न, इन तीनों के मिलने से उत्पन्न, जिसे सन्निपात कहते हैं और एक आगन्तुक।। २२।।

ज्वर की संप्राप्ति

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः।। २३।।

मिथ्या-आहार और मिथ्या-विहार से वातादिक दोष आमाशय में मिलकर कोठे की अग्नि को बाहर निकाल कर फिर धातुरस में मिलकर ज्वर उत्पन्न करते हैं।। २३।।

ज्वर के सामान्य लक्षण

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरो व्यपदिश्यते।। २४।।

जिस रोग में पसीना रुक कर सब अङ्गों में सन्ताप हो, सब अङ्गों में पीड़ा हो और यह एकाएकी हो, उस रोग को ज्वर कहते हैं।। २४।।

ज्वर के सामान्य पूर्वरूप

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः।
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु।। २५।।
जृम्भाङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे।। २६।।

बिना श्रम किए थकावट मालूम हो, किसी वस्तु में प्रीति न रहे, शरीर में ग्लानि हो, मुख का स्वाद बिगड़ गया हो, नेत्रों में आँसू भर आएं, शीत-वात-घाम (धूप) आदि की क्षण में तो इच्छा हो और क्षणमात्र ही में इनसे अप्रीति हो, जँभाई आना, अङ्गमर्दन की इच्छा, शरीर में गरुआपन, रोम खड़े होना, अरुचि, अँधियारा-सा विदित होना, चित्त की अप्रसन्नता और जाड़ा लगना, ज्वर होने के पूर्व ये सब लक्षण होते हैं।। २५-२६।।

ज्वर के विशेष रूप

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात्।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफादन्नारुचिर्भवेत्।। २७।।

यह सब ज्वरों का सामान्य लक्षण है। अब विशेष कहते हैं। वातज्वर में विशेष रूप से बार-बार अत्यन्त जँभाई आती है। पित्तज्वर में नेत्रों में विशेष जलन होती है। कफज्वर में अन्न की रुचि नहीं होती है।। २७।।

वातज्वर का लक्षण

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठमुखशोषणम्।
निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव।। २८।।

शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता।
शूलाध्माने जृम्भणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे।। २९।।

शरीर काँपना, कभी बहुत शरीर जलना, कभी कम होना, गला, ओठ और मुख का सूखना, निद्रा न आना, छींक न आना तथा अङ्गों में रुखाहट होना। शिर, हृदय और देह भर में पीड़ा, मुख फीका, मल का सूख जाना, पेट की पीड़ा और पेट फूलना, जँभाई आना, ये सब लक्षण वातज्वर में होते हैं।। २८-२९।।

पित्तज्वर के लक्षण

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः।
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते।। ३०।।
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक् पैत्तिके भ्रम एव च।। ३१।।

बड़े वेग से ज्वर होना, अधिक दस्त होना, थोड़ी नींद आना, कय करना, गला, ओठ, मुख और नाक पक जाना, पसीना होना, अंडबंड बकना, मुख कड़वा रहना, मूर्च्छा आना, सदा जलन बनी रहना, उन्मत्तता, अधिक प्यास लगना, मल, मूत्र, नेत्र, त्वचा इन का पीला होना और भ्रम होना, ये सब उपद्रव पित्तज्वर में होते हैं।। ३०-३१।।

कफज्वर के लक्षण

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता।
शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि च।। ३२।।
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता।
स्रोतोरोधो रुगल्पत्वं प्रसेको बहुमूत्रता।। ३३।।
नात्युष्णगात्रता च्छर्दिर्लालास्रावोऽविपाकता।
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता।। ३४।।

देह पानी से भीगा-सा बना रहे, ज्वर का वेग मन्द रहे, आलस्य रहे, मुख मीठा बना रहे, मल, मूत्र तथा त्वचा उजले रहें, शरीर जकड़ा-सा रहे,

भोजन करने की इच्छा न हो, शरीर गुरु रहे, जाड़ा बहुत लगे, उकलाई का होना, रोमाञ्च होना, बहुत सोना, नसों का रुकना, अङ्ग में थोड़ी पीड़ा होना, पसीना होना, बहुत पेशाब होना, देह में बहुत गर्मी का न होना, वमन होना, लार बहना, शरीर पका-सा विदित होना, नाक बहना, अरुचि होना, खाँसी और नेत्रों में शुक्लता होना, ये सब कफज्वर के लक्षण हैं।।३२-३४।।

वात-पित्तज्वर के लक्षण

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा।
कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः।। ३५।।
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः।

प्यास, मूर्च्छा, चित्त-भ्रम, जलन, नींद का नाश, शिर में पीड़ा, गला और मुख का सूखना, वमन होना, रोम खड़े होना, अरुचि, अँधियारा दिखाई देना, सब सन्धियों में पीड़ा, जँभाई आना, ये वात-पित्तज्वर के लक्षण हैं।।३५।।

वात-कफज्वर के लक्षण

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च।। ३६।।
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम्।
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः।।३७।।

शरीर गीले कपड़े से पोंछा-सा विदित हो, सब सन्धियों में पीड़ा हो, नींद बहुत आए, शरीर गरुआ रहे, शिर में पीड़ा, सर्दी के मारे नासिका बहे, खाँसी आए, पसीना थोड़ा हो, देह में दाह बना रहे और ज्वर का मध्यम वेग हो, ये वात-कफज्वर के लक्षण हैं।। ३६-३७।।

कफ-पित्तज्वर के लक्षण

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः।। ३८।।

चटचटाहट के साथ मुख कड़वा होना, आलस्य होना, मोह होना, खाँसी आना, अरुचि, प्यास, बार-बार दाह और बार-बार शरीर ठण्डा हो जाना, ये कफ-पित्तज्वर के लक्षण हैं।। ३८।।

सन्निपातज्वर के लक्षण

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने।। ३९।।
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः।
तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः।। ४०।।
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम्।
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च।। ४१।।
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा।
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः।। ४२।।
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम्।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम्।। ४३।।
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च।
चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः।। ४४।।

क्षण में अतिदाह, क्षण में अतिशीत, हड़फूटन, सब जोड़ों में पीड़ा, शिर में बहुत पीड़ा होना, नेत्र आँसुओं से भरे, मैले, लाल, तिरछे रहें, कानों में संसनाहट और पीड़ा रहे, गले में काँटा पड़ जाए, आलस्य, मोह, अनर्थ बकना, खाँसी, दम, सब वस्तुओं में अरुचि, भ्रम, जिह्वा जलती-सी और खरखरी रहे, छूने से शरीर में पीड़ा हो, रक्त-पित्त मिले हुए कफ का थूकना, इधर-उधर शिर घुमाते रहना, अधिक प्यास लगना, नींद न आना, मन में पीड़ा और पसीना, मूत्र, मल का बहुत देर में थोड़ा सा दिखाई देना, देह का बहुत दुर्बल न होना, जलता हुआ गला घुर्घुराता रहना, काले तथा लाल फोड़े और चकत्तों का शरीर में पड़ जाना, बोल न सकना, कान, नाक, जीभ, गला पक जाना, पेट का भारी बना रहना, वात-पित्त-कफादिकों के दोषों का बहुत दिनों में परिपाक होना, ये सन्निपातज्वर के लक्षण हैं।। ३९-४४।।

असाध्य-कृच्छ्रसाध्यसन्निपात के लक्षण

दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वलक्षणसंयुतः।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा।। ४५।।

जब वात-पित्त-कफ दोषों के बहुत बढ़ जाने पर अग्नि अत्यन्त मन्द हो जाए और ऊपर कहे हुए सब लक्षण हों, वह सन्निपात ज्वर असाध्य होता है। जब इसके विपरीत हो, सब लक्षण न मिलें, कुछ मिलें और कुछ न मिलें, मन्दाग्नि न हो तब सन्निपात कष्टसाध्य कहलाता है।। ४५।।

कर्णकसन्निपात के लक्षण

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते।।४६।।

संन्निपातज्वर के अन्त में कानों के मूल में जब अतिदारुण शोथ (गिल्टी) होता है तब उसके होने से सैकड़ों में कोई-कोई बचता है नहीं तो सब मृतक ही हो जाते हैं।। ४६।।

आगन्तुकज्वर के लक्षण

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः।
आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत्।। ४७।।

अस्त्र, शस्त्र आदि के लगने से, अभिचार अर्थात् मारण आदि करने से, सरसों आदि के हवन करने से, अतिमैथुन करने से, भूतादि लगने से, और ब्राह्मण, वृद्धादिकों के शाप से आगन्तुकज्वर उत्पन्न होता है। जिसमें शस्त्रादिकों में से जिसका लक्षण मिले, उसे उसी का आगन्तुकज्वर जाने।।४७।।

आगन्तुकज्वर के अन्य लक्षण

श्यावास्यता विषकृते दाहोऽतीसार एव च।
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया।। ४८।।
औषधाघ्राणजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः।
कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमभोजनम्।। ४९।।
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति।
भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः।। ५०।।

अभिचाराभिघाताभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते।
भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम्।। ५१।।
कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः।
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः।। ५२।।

विष से उत्पन्न ज्वर में मुख काला हो जाता है, शरीर में दाह होती है, दस्त होते हैं, भोजनादि में अरुचि होती है, प्यास लगती है, शरीर में मानो कोई कोंचता है और मूर्च्छा आती है। किसी विषैली औषध के सूँघने से उत्पन्न ज्वर में मूर्च्छा आती है, शिर में पीड़ा होती है, ओकाई आती है और छींक बहुत आती है। काम से उत्पन्न ज्वर में चित्तभ्रम हो जाता है, शरीर तवाँया करता है, आलस्य होता है, और किसी वस्तु के भोजन की रुचि नहीं रहती, हृदय में पीड़ा और सब अङ्ग सूखते रहते हैं। यह ज्वर किसी स्त्री में चित्त लगने और उसके न मिलने से प्रायः उत्पन्न होता है। भय से उत्पन्न ज्वर में प्राणी अनर्थ वचन बकता रहता है। शोक से उत्पन्न में भी ऐसा ही बकता है। कोप से उत्पन्न होने वाले ज्वर में काँपता है। अभिचार और अभिघात से उत्पन्न ज्वर में मोह होता है और प्यास लगती है। भूत, प्रेतादिकों से उत्पन्न ज्वर में चित्त की उद्विग्नता, हँसना, रोना और काँपना होता है। काम, शोक तथा भय से वायु कोप करता है। क्रोध से पित्त कोप करता है। भूतज्वर में वात-पित्त-कफ तीनों दोष कोप करते हैं। भूत के लक्षण और वातादिकों के दोषों के भी लक्षण इसमें होते हैं।। ४८-५२।।

विषमज्वर की संप्राप्ति और लक्षण

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्।। ५३।।
यस्स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः।। ५४।।

ज्वर आकर छूट जाने पर दिन में सो जाने आदि अपथ्यों के कारण अल्पदोष भी अपथ्य के हेतु अन्य धातु में पैठकर फिर विषमज्वर को उत्पन्न कराता है। समय बदलता हुआ तीसरे-चौथे दिन अतिवेग से आने लगता है और फिर नित्यज्वर को भी उत्पन्न करता है। जिस ज्वर का कोई काल नियत

न हो, शीत-उष्ण दोनों के संग आए, जब आए बड़े वेग से ही आए और पूर्व के लक्षण से भी जो आए उस ज्वर को विषमज्वर कहते हैं।। ५३-५४।।

विषमज्वर के नाम और उत्पत्ति

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ।
सन्ततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः।। ५५।।
मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि त्वस्थिमज्जगतः पुनः।
कुर्याच्चतुर्थकं घोरमन्तकं रोगसङ्करम्।। ५६।।

सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक और चतुर्थक ये पाँच प्रकार के विषमज्वर होते हैं। जिसका सदा एक-सा वेग बना रहता है, वह सन्तत कहलाता है। जो चढ़ता उतरता रहता है, उसका सतत नाम है। जो अँतरिआ से आता है, उसे अन्येद्यु कहते हैं। तीसरे दिन आने वाले को तृतीयक या तिजारिया कहते हैं। चौथे दिन आने वाले को चतुर्थक, चातुर्थिक या चौथिया कहते हैं। रस में दोष प्राप्त होकर सन्ततज्वर को उत्पन्न करता है। रक्त में दोष प्रविष्ट होकर सततज्वर को, मांस में दोष प्रवृत्त होकर अन्येद्युज्वर को, मेदा में दोष पहुँचकर तृतीयक को, हड्डी और मज्जा में जब दोष प्राप्त होता है तो चातुर्थिकज्वर को उत्पन्न करता है। यह ज्वर बड़ा घोर होता है। यह मरण ही कर देता है। बहुत से रोग इसमें मिले हुए होते हैं।। ५५-५६।।

सन्तत के लक्षण

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा।
सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात् सन्ततः स निगद्यते।। ५७।।

सात दिन तक, दश दिन तक, अथवा बारह दिन तक जो बराबर चढ़ा रहे, किसी समय न उतरे, उसका सन्ततज्वर नाम है। इसमें वात का सन्ततज्वर सात दिन तक, पित्त का दश दिन तक, और कफ का बारह दिन तक रहता है।। ५७।।

सतत आदिकों के लक्षण

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते।
अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्र एककालं प्रवर्तते।। ५८।।

तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः।
केचिद्भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम्।। ५९।।

रात्रि ही में अथवा दिन ही में अथवा रात्रि-दिन दोनों मिलाकर जो दो समयों में आता है, उसे सततज्वर कहते हैं। अन्येद्युज्वर रात्रि में अथवा दिन में एक ही बार आता है। तृतीयक (तिजारिया) तीसरे दिन आता है। चतुर्थक (चौथिया) चौथे दिन आता है। ये दोनों एक ही एक बार आते हैं। कोई-कोई आचार्य भूतादिकों के संग से उत्पन्न ज्वर को विषमज्वर कहते हैं।। ५८-५९।।

द्विदोषोद्भव तृतीयक के लक्षण

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः।
वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः।। ६०।।

कफपित्त से उत्पन्न तृतीयकज्वर पीठ, रीढ़ और कटि तीन स्थानों में पीड़ा करता है। वातकफ से उत्पन्न तृतीयक केवल पीठ में पीड़ा करता है। वातपित्त से उत्पन्न तृतीयक शिर में पीड़ा करता है। इस रीति से तृतीयकज्वर तीन प्रकार का होता है।।६०।।

द्विदोष से चातुर्थिक के भेद

चर्तुथको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः।
जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरस्तोऽनिलसम्भवः।। ६१।।

चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर दो प्रकार का प्रभाव दिखाता है। कफ का चातुर्थिक फोलियों में पीड़ा करता है और वातज चातुर्थिक शिर में पहले पीड़ा करता है, फिर सब शरीर में फैलता है।। ६१।।

चातुर्थिक से विषमज्वर

विषमज्वर एवान्यश्चतुर्थकविपर्ययः।
स मध्ये ज्वरयत्यह्नी आद्यन्ते च विमुञ्चति।। ६२।।

चातुर्थिक ज्वर ही उलटा होकर दूसरा विषमज्वर हो जाता है। वह आदि, अन्त के अर्थात् पहले, चौथे दिनों को छोड़ बीच वाले दूसरे, तीसरे

दिनों में आता है। ऐसे ही तृतीयक पहले, तीसरे दिन को छोड़ दूसरे दिन आने लगता है, तो दूसरा विषमज्वर हो जाता है।। ६२।।

वातबलासज्वर के लक्षण

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति।
स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो भवेद्वातबलासकी।। ६३।।

नित्य मन्द ज्वर बना रहना, देह में रुखाई, शोथ होना, ग्लानि, अङ्गों का टूटना और कफ की अधिक वृद्धि, ये उपद्रव इस ज्वर वाले को होते हैं।। ६३।।

प्रलेपकज्वर के लक्षण

प्रलिम्पन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च।
मन्दज्वरविलेपी च सशीतः स्यात् प्रलेपकः।। ६४।।

इस ज्वर में पसीने से व गरुआई से शरीर में ज्वर के पीछे कुछ चटचटी-सी सर्दी मालूम होती है। उसी से मन्दज्वर कुछ ठण्डा-सा मालूम होने लगता है, इसी से इसको प्रलेपक भी कहते हैं।। ६४।।

त्रिदोषभेद से विषमज्वर के विशेष लक्षण

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते।
तेनार्द्धं शीतलं देहमर्द्धं चोष्णं प्रजायते।। ६५।।
काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः।
तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः।। ६६।।
काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम्।
शीतत्वे तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः।। ६७।।
त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे।
तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च।। ६८।।
करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च।
तस्मिन्प्रशान्ते त्विंतरौ कुरुत:शीतमन्ततः।। ६९।।

द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ।
दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृष्छ्रसाध्यतमश्च सः।। ७०।।

अन्न का रस दुष्ट हो जाता है और शरीर में कफ, पित्त भी जब दुष्ट हो जाते हैं तो कफ के कारण आधा शरीर ठंडा हो जाता है और आधा पित्त के कारण बहुत गर्म रहता है। जब देह में पित्त दुष्ट हो जाता है और कफ हाथ पैर में दुष्ट होकर रहता है तो उस पित्त की दुष्टता से अन्य अङ्गों में उष्णता और कफ की दुष्टता से हाथ पैरों में शीतलता हो जाती है। इसी का उलटा दूसरा ज्वर कोठे में जब कफ दुष्ट होकर रहता है और दुष्ट होकर पित्त हाथ पैरों में व्याप्त रहता है तो कफ की दुष्टता से अन्य अङ्गों में शीतलता और पित्त की दुष्टता से हाथ पैरों में उष्णता हो जाती है। पहले जाड़ा लगकर फिर ज्वर होना, त्वचा में टिककर कफ या वात पहले शीतज्वर को उत्पन्न करते हैं, जब कफ, वात शान्त हो जाते हैं तो पित्त देह को जलाता है। पहले ताप होकर फिर जूड़ी आना, पहले त्वचा में टिका हुआ पित्त अत्यन्त ताप को उत्पन्न करता है, जब वह शान्त हो जाता है तो कफ और वात दोनों मिलकर सब अङ्गों को ठंडा कर देते हैं। दाहपूर्वक और शीतपूर्वक ये दोनों ज्वर त्रिदोष से होते हैं। उन दोनों में दाहपूर्वक बड़ा कष्टदायक होता है और बड़े कष्ट से साध्य होता है।। ६५-७०।।

रसगतज्वर के लक्षण

गुरुता हृदयोत्क्लेशस्सदनं छर्द्यरोचकौ।
रसस्थे तु ज्वरे लिङ्गं दैन्यं चास्योपजायते।। ७१।।

शरीर में गुरुता बनी रहे, हृदय में क्लेश, शरीर टूटे, ओकाई आए, सब वस्तुओं में अरुचि हो, किसी को न पहचानना, ज्वर में दीनता होना, ये सब चिह्न रसस्थज्वर के हैं।। ७१।।

रक्तगत ज्वर के लक्षण

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ।
प्रलापः पिटका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम्।। ७२।।

रुधिर का वमन होना, जलन, चित्त बिगड़ना, बार-बार ओकाई आना, किसी को न पहचानना आदि, भ्रम होना, अनर्थ वचन बकना, फोड़ा-फुन्सी

आदि हो आना और अधिक प्यास लगना, ये सब लक्षण रक्त में प्राप्त ज्वर में होते हैं।। ७२।।

मांसगत ज्वर के लक्षण

पिटकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता।
ऊष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे।। ७३।।

फोड़े फुन्सियों का होना, प्यास लगना, मलमूत्र की अधिकता होना, हृदय में जलन, हाथ पैर फटकना और ग्लानि, ये सब लक्षण मांसगत ज्वर में होते हैं।। ७३।।

मेदगत ज्वर के लक्षण

पिटका जान्वधोभागे मांसपिण्डस्य वेष्टनम्।
दण्डादिपीडनेनैव पीडा मूत्रपुरीषयोः।। ७४।।
भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च।
दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदःस्थे चासहिष्णुता।। ७५।।

जानु के निचले भाग में फुन्सियों का होना, मांस पिंड से घिरना, मलमूत्र करते समय डंडे आदि से मारने की-सी पीड़ा का होना, बहुत पसीना होना, प्यास लगना, मूर्च्छा आना, अनर्थ बकना, कय करना, मुखादि से दुर्गन्धि आना, अरुचि होना, ग्लानि और देह से पीड़ा का न सहना, ये सब लक्षण मेदगत ज्वर में होते हैं।। ७४-७५।।

अस्थिगत ज्वर के लक्षण

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च।
विक्षेपणञ्च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे।। ७६।।

हाड़ का टूटना, काँखना या कहराना, दम चढ़ना, मल अधिक आना, वमन होना और अङ्गों का फ़टकना, ये लक्षण अस्थिगत ज्वर के हैं।। ७६।।

मज्जागत ज्वर के लक्षण

तमः प्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा।
अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मश्छेदश्च मज्जगे।। ७७।।

सब ओर अँधेरा दिखाई देना, हिचकी आना, खाँसी, ठण्डा लगना, वमन होना, अन्तर्दाह होना, बड़े वेग से श्वास आना और हृदय आदि मर्म स्थानों में छेदना, ये सब लक्षण मज्जागत ज्वर में होते हैं।। ७७।।

शुक्रगत ज्वर के लक्षण

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे।
शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः।। ७८।।

रस आदि सातों धातुओं में पैठते-पैठते जब ज्वर वीर्यस्थान में पैठ जाता है तब रोगी की मृत्यु ही होती है, क्योंकि लिंग शिथिल हो जाता है और उससे पतला होकर वीर्य या रुधिर बहने लगता है।। ७८।।

प्राकृत-वैकृत ज्वर के लक्षण

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात्।
वैकृतोऽन्यस्स दुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः।। ७९।।
वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम्।
कुर्यात्पित्तञ्च शरदि तस्य चानुबलः कफः।। ८०।।
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम्।
कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु।। ८१।।
काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा।
निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता।। ८२।।

वर्षा, शरद् और वसन्त में क्रम से होने वाले वात, पित्त और कफज्वर प्राकृतिक ज्वर कहलाते हैं। वर्षा में वातज्वर, शरद् में पित्तज्वर और वसन्त में कफज्वर और इनके विपरीत जो ज्वर होता है वह वैकृतज्वर कहलाता है। वैकृतज्वर बड़े दुःख से साध्य होता है। वातज्वर प्राकृतिक भी दुस्साध्य होता है। पित्त-कफ युक्त होकर वायु दुष्ट हो वर्षा में ज्वर को उत्पन्न करता है। ऐसे ही वर्षा काल का इकट्ठा हुआ पित्त दुष्ट होकर शरद् में ज्वर करता है। शरद् में पित्त, कफ से सम्बन्ध रखता है। इस शरद् ऋतु के ज्वर में जुलाव देने और लङ्घन कराने से कुछ भय नहीं होता। दस्त कराना और लंघन कराना उचित है। शरत्काल का संचित कफ, वात-पित्त से युक्त हो वसन्त में ज्वर

उत्पन्न करता है। अपने-अपने काल में वातादिकों की प्रवृत्ति और वृद्धि होती है। निदान के अनुसार आहारादि न करने से अनुपशय (दुःख) होता है और उसके विपरीत आहारादि करने से उपशय (सुख) होता है।। ७६-८२।।

अन्तर्वेगज्वर के लक्षण

अन्तर्दाहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः।। ८३।।
अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत्।

भीतर जलन होना, प्यास की अधिकता, अनर्थ बकना, श्वासों का अधिक आना, चित्तभ्रम होना, जोड़ों में और हड्डियों में पीड़ा, पसीना न होना, पवन न खुलना और मल बन्द होना, ये सब अन्तर्वेगज्वर के लक्षण हैं।।८३।।

बहिर्वेगज्वर के लक्षण

सन्तापो ह्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम्।। ८४।।
बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च।

जिस ज्वर में बाहर बहुत अधिक सन्ताप हो और प्यास आदि कम हो, ये सब बहिर्वेगज्वर के लक्षण हैं और सुखसाध्य हैं अर्थात् औषध करने से यह बाहरी वेग शीघ्र शान्त हो जाता है।। ८४।।

आमज्वर के लक्षण

लालाप्रसेको हृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः।। ८५।।
तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता।
क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः।। ८६।।
आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम्।
भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम्।। ८७।।
शोधनं शमनीयं च करोति विषमज्वरम्।

लार बहना, ओकाई आना, हृदय का भारी होना, अरुचि, तन्द्रा अर्थात् आँखें झँपना, अलसई आना, अपच, मुख का स्वाद बिगड़ना, शरीर में

गरुआई, भूख न लगना, बहुत मूत्र आना, शरीर का बँधना, और बलवान् ज्वर का आनां, ये सब आमज्वर के लक्षण हैं। इन लक्षणों से युक्त ज्वर वाले को कभी औषध न दे, क्योंकि ऐसी अवस्था में जो औषध दी जाती है वह फिर अधिक ज्वर को बढ़ाती है, शान्त नहीं कर सकती। इसमें जब शोधन करने या शान्त करने की औषध दी जाती है तो वह विषमज्वर करती है।। ८५-८७।।

पच्यमान ज्वर के लक्षण

ज्वरवेगोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनम्भ्रमः।। ८८।।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम्।

वेग से ज्वर आना, अधिक प्यास लगना, अनर्थ बकना, श्वास आना, भ्रम होना, मल की प्रवृत्ति, ओकाई आना, ये सब पच्यमान ज्वर के लक्षण हैं।। ८८।।

पक्वज्वर के लक्षण

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम्।। ८९।।
दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम्।

छींक आना, भूख लगना, दुर्बलता, शरीर का हलका होना, ज्वर का कोमल होना, पवन छूटना और चित्त की प्रसन्नता, ये सब पक्के ज्वर के लक्षण हैं।। ८९।।

साध्यज्वर के लक्षण

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः।। ९०।।

बलवान् मनुष्यों के जब थोड़े दोष हों और कोई उपद्रव न हों तो वह ज्वर साध्य होता है।। ९०।।

असाध्यज्वर के लक्षण

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः।
ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः।। ९१।।

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दैर्घरात्रिकः।।
असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः।। ९२।।

जो ज्वर बहुत से बली कारणों से उत्पन्न होता है, जिसमें बहुत लक्षण होते हैं, वह ज्वर प्राणनाशक ही होता है। जिस ज्वर के आते ही शीघ्र आँख, कान आदि इन्द्रियाँ नष्ट हो जाती हैं अर्थात् अपना-अपना काम नहीं कर सकतीं, वह ज्वर भी असाध्य होता है। क्षीण और शोथ युक्त पुरुष के शरीर में जो ज्वर होता है, वह असाध्य ही होता है। जो ज्वर धातुओं के भीतर पैठकर अतिगुरु हो जाता है, जो बहुत रात्रियों तक रहता है, जो ज्वर बहुत बलवान् हो और उसके कारण रोगी के बाल चिकने हो जाएँ तो वह ज्वर असाध्य है।। ९१-९२।।

गम्भीरज्वर के लक्षण

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया।
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च।। ९३।।

अन्तर्दाह और अतिप्यास से युक्त गम्भीरज्वर कहलाता है। इसके साथ ही जो मल बहुत बँधा हुआ हो और खाँसी तथा श्वास भी आने लगे तो अतिगम्भीरज्वर हो जाता है।। ९३।।

गम्भीरज्वर का असाध्य लक्षण

आरम्भाद्विषमो यस्तु यश्च वा दैर्घरात्रिकः।
क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गम्भीरो यस्य हन्ति तम्।। ९४।।
विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा।
शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः।।९५।।

जिसका ज्वर प्रारम्भ ही से विषम हो जाता है अर्थात् कोई समय न नियत हो या जो बहुत दिनों तक बना रहे, या जिस पुरुष के हो वह अति क्षीण हो अथवा उसका शरीर बहुत रूखा हो तो वह गम्भीरज्वर उसे मार ही डालता है। ज्वर वाला मूर्च्छित हो मोह में पड़ा रहे, बिस्तर पर पड़ा सोता ही रहे, बिना उठाए उठ न सके और ऊपर से बहुत जाड़ा लगे परन्तु अन्तःकरण में दाह बना रहे, यह ज्वर असाध्य होता है। इससे इसमें प्राणी नहीं जीता, मर ही जाता है।। ९४-९५।।

असाध्यज्वर के अन्य लक्षण

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान्।
वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम्।। ९६।।
हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम्।
सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः।। ९७।।
हतप्रभेन्द्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम्।
गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत्।। ९८।।

जिस ज्वर वाले के रोम सदा खड़े रहें, नेत्र लाल बने रहें, हृदय में कुछ गाँठ-सी बँधकर पीड़ा करे, मुख से श्वास अधिक निकले, उस पुरुष को वह ज्वर मार डालता है। जिस ज्वर वाले को हिचकी, श्वास, पिपासा हो और वह मूर्च्छित रहे, नेत्र इधर-उधर घुमाया करे, निरन्तर वेग से श्वास लेता रहे और शरीर उसका बहुत क्षीण हो गया हो तो उस पुरुष को ज्वर मार डालता है। और जिस पुरुष की इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो गई हो, बहुत ही दुर्बल हो गया हो, अरुचि से सब अङ्गों से पीड़ित हो, गम्भीर और तीक्ष्ण वेग से अत्यन्त पीड़ित हो, वैद्य को चाहिए कि ऐसे ज्वर वाले को छोड़ दे, उसकी औषध न करे।। ९६-९८।।

ज्वर छूट जाने के पूर्वरूप

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पविड्भिदसंज्ञता।
कूजनं चातिवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे।। ९९।।

शरीर में दाह होना, पसीना होना, कुछ भ्रम रहना, प्यास लगना, कुछ काँपना, मल का पतला न होना, काँखना, कहराना और देह में गन्ध न होना, यह ज्वर छूटने का पूर्वरूप है।।९९।।

ज्वर छूटने का लक्षण

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च।।
क्षवथुश्चान्नकाङ्क्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम्।। १००।।

इति ज्वरनिदानं प्रथमोऽध्यायः।। १।।

पसीना होना, शरीर हल्का होना, सिर खजुआना, मुख पक जाना, छींक आना, और अन्न खाने को मन चलना, ये सब ज्वर छूट जाने के लक्षण हैं।। १००।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे ज्वरनिदानम्प्रथमोऽध्याय:।। १।।

अथातीसाररोगनिदानम्

अतीसार की उत्पत्ति

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलै:।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनै:।। १।।
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयै:।
शोकाद्दुष्टाम्बुमद्यातिपानै: सात्म्यर्तुपर्ययै:।। २।।
जलातिरमणैर्वेगविघातै: क्रिमिदोषत:।
नृणाम्भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते।। ३।।

दोहा— अतीसार के भेद कों, वर्णन हैं निरधारि।
जिज्ञासू वासों लहैं, शुभ फल हृदय विचारि।। १।।

जो शीघ्र नहीं पचती ऐसी गुरु वस्तुओं के भोजन से, अति चिकनी वस्तुओं के भोजन से, अतिरूखे पदार्थ, अतिउष्ण, अतिपतली वस्तु, अत्यन्त गाढ़ी, अत्यन्त शीतल और विरुद्ध वस्तुओं को एक संग भोजन करने से, प्रथम का भोजन पचा न हो उसके ऊपर और भोजन करने से, अजीर्ण में खाने से, कभी सबेरे-कभी दोपहर-कभी तीसरे पहर आदि विषम समय में भोजन करने से, प्रमाण से अधिक भोजन से, स्नेहादिक के अत्यन्त करने से, तथा कम करने से, स्थावरादि विषों के भोजन से, भय से, शोक से, दुष्ट जल पीने से, बहुत मदिरा पीने से, ऋतुओं के विपरीत खाने-पीने से, जल में अतिक्रीड़ा करने से, मलमूत्र के वेग को रोकने से और कृमियों के दोष से मनुष्यों को अतीसार रोग होता है। उसका लक्षण कहते हैं।। १-३।।

अतीसार की संप्राप्ति और संख्या

संशम्यापां धातुरग्निम्प्रवृद्धः
शकृन्मिश्रो वायुनाऽधः प्रणुन्नः।
सरत्यतीवातिसारं तमाहु-
र्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति।।
एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः
शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः।। ४।।

जिस रोग में जल, धातु दुष्ट हो अग्नि को मन्द करके मल से मिश्रित हो जाए और वायु से प्रेरित होकर गुदा के द्वारा बड़े वेग से अधिक मल को गिराए, उसको अतीसार रोग कहते हैं। यह महाघोर व्याधि है। यह छः प्रकार का होता है। वातादि एक-एक दोषों से तीन प्रकार का होता है। जैसे वातातीसार, पित्तातीसार, कफातीसार। इन तीनों दोषों के मिलने से चौथा सन्निपातातीसार, पाँचवाँ शोकातीसार और छठा आमातीसार होता है।। ४।।

अतीसार का पूर्वरूप

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोद-
गात्रावसादानिलसन्निरोधाः।
विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको
भविष्यतस्तस्य पुरस्सराणि।। ५।।

हृदय, नाभि, गुदा, पेट, और कोखा में व्यथा होना, देह का अस्वस्थ रहना, पवन की रुकावट, मल की रुकावट, पेट फूलना और अन्न का परिपाक न होना, अतीसार होने के प्रथम ये सब लक्षण होते हैं।। ५।।

वातातीसार के लक्षण

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः।
शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते।। ६।।

वातातीसार का यह लक्षण है कि उसके होने पर लाल रंग वाला फेन के सहित रूखा और कच्चा मल थोड़ा-थोड़ा निकलता है। इस मल के

निकलने के समय पेट में पीड़ा होती है और गुड़गुड़ाहट होती है। इस मल को वायु निकालता है।। ६।।

पित्तातीसार और कफातीसार के लक्षण

पित्तात्पीतन्नीलमालोहितं वा
तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ।
शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं
विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः।। ७।।

पित्तातीसार में पीला, नीला या कुछ ललाई लिए दस्त होता है, पिपासा बहुत लगती है, मूर्च्छा आ जाती है, दाह होता है, और पक जाने के समान गुदा में पीड़ा होती है, उजला, बहुत कड़ा, कफ सहित, कच्चे सड़े मांस, अन्न आदि की गन्ध के समान गन्ध वाला और ठण्डा मल होता है, और रोगी के रोम खड़े हो जाते हैं। कफातीसार के ये ही लक्षण हैं।। ७।।

सन्निपातातीसार के लक्षण

वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम्।
कृष्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम्।। ८।।

सन्निपातातीसार में शूकर की वसा के समान चिकना या मांस के धोने के जल के समान ललझर दस्त होता है। यह सन्निपातातीसार बड़े कष्ट से साध्य होता है।। ८।।

शोकातीसार के लक्षण

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य
बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः।
कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं
तच्चाधस्तात्काकणन्ती प्रकाशम्।। ९।।
निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा
निर्गन्धं वा गन्धवद्वाऽतिसारः।

शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं
रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः।। १०।।

जिस मनुष्य को बन्धु, धन आदि के वियोग आदि का शोक होता है वह बार-बार उस शोक का स्मरण करता है, इसलिए उससे भोजन नहीं किया जाता। इससे पवन उष्ण होकर उदराग्नि में पैठ कोठे में जाकर उसके रक्त को चलायमान करता है और गुदामार्ग से नीचे को गिराता है। वह दस्त मल मिला हुआ या बिना मल का, दुर्गन्धयुक्त या बिना दुर्गन्ध का होता है। इस भाँति दस्त होना शोकातीसार कहलाता है। यह शोकातीसार बड़े दुःख से चिकित्सा करने के योग्य होता है। वैद्य केवल औषध से इसे नहीं मिटा सकते जब तक कि शोक न मिट जाए।। ९-१०।।

आमातीसार के लक्षण

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः
कोष्ठं दोषा धातुसंघान्मलांश्च।
नानावर्णान्नैकशस्सारयन्ति
शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति।। ११।।

अन्न न पचने से वात-पित्त-कफ दोष कोठे में इधर-उधर घूमते हैं और ये उस अन्न को चलायमान करते हैं, धातु समूहों को तथा मलों को घुमाते हैं, और नाना रंग के मलों को बाहर निकालते हैं। इसमें शूल बहुत होता है। यह आमातीसार छठा कहलाता है।। ११।।

अपक्व और पक्व आम के लक्षण

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसंज्ञितम्।। १२।।
एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै।
लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत्।। १३।।

इन ऊपर के कहे हुए वात-पित्त-कफ दोषों से युक्त मल पानी में डालने से डूब जाए, उसमें बड़ी दुर्गन्ध आए, और चिकनापन अधिक हो तो,

वह कच्चा आम है। ये सब चिंह्न जिसमें विपरीत हों अर्थात् पानी में डालने से मल न डूबे, चिकनापन न हो, दुर्गन्ध न आए, और शरीर हलका जान पड़े तो जानना चाहिए कि इसका आम पक गया है।। १२-१३।।

असाध्य अतीसार के लक्षण

पक्वजाम्बवसंकाशं यकृत्खण्डनिभं तनु।
घृततैलवसामज्जवेशवारपयोदधि ।। १४।।
मांसधावनतोयाभं कृष्णन्नीलारुणप्रभम्।
कर्ब्बुरं मेचकं स्निग्धं चन्द्रकोपगतं घनम्।। १५।।
कुणपम्मस्तुलुङ्गाभं सगन्धं कुथितं बहु।
तृष्णादाहभ्रमश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम्।। १६।।
सम्मूर्च्छारतिसंमोहयुक्तं पक्ववलीगुदम्।
प्रलापयुक्तञ्च भिषग्वर्जयेदतिसारिणम्।। १७।।

जिस पुरुष के पक्के जामुन के रङ्ग का मल आए, शरीर जकड़ा-सा बना रहे, घी, तेल, वसा, मज्जा, दूध और दही के रङ्ग का मल हो या पिसे हुए गरम मसाले के तुल्य हो, मांस के धोवन के जल के रङ्ग का काला, नीला, बहुत लाल या मोर के पंख के समान चमकता हरा-सा हो, चितकबरे रङ्ग का हो, बहुत चिकना हो, तेल मिला-सा बहुत ही गाढ़ा, बहुत ही उजला हो, सड़े हुए मुरदे की ऐसी गन्ध से युक्त हो या मस्तक की मज्जा के तुल्य हो, दुर्गन्धयुक्त हो, पीब की तरह का बहुत मल हो, जिस अतीसार वाले को प्यास, जलन, भ्रम, दम, हिचकी हो, बगल की पसलियों में शूल उठती रहे, मूर्च्छा, अप्रीति, सब इन्द्रियाँ मोहित हों, पकने के समान गुदा में पीड़ा हो, अनर्थ बकता हो, वैद्य को चाहिए कि उसकी औषध न करे, क्योंकि इन लक्षणों से युक्त अतिसार महा असाध्य होता है।। १४-१७।।

अतिक्षीण के लक्षण

असंवृतगुदं क्षीणं दूराध्मातमुपद्रुतम्।
गुदे प्रक्वे गतोष्माणमतिसारकिणं त्यजेत्।। १८।

श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम्।
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत्।। १९।।
बाले वृद्धे त्वसाध्योऽयं रूपैरेतैरुपद्रुतः।
अपि यूनामसाध्यः स्याददतिदुष्टेषु धातुषु।। २०।।

जिसकी काँच निकली रहे, अतिक्षीण हो गया हो, पेट बहु फूला रहे, शरीर में शोध हो, और पकी हुई गुदा में पित्त का ज़ोर हो, ऐसे अतीसार वाले को वैद्य छोड़ दे। श्वास, शूल, पिपासा से पीड़ित, अतिक्षीण और ज्वर से अति पीड़ित वृद्ध को अतीसार विशेष करके मार डालता है। बालक या वृद्ध का अतीसार असाध्य ही होता है। जब वह ऊपर के उपद्रवों से युक्त होता है और धातुओं में पैठ जाता है तो युवावस्था वालों का भी असाध्य हो जाता है।। १८-२०।।

अतीसार के लक्षण

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम्।
छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत्।। २१।।

शोथ, शूल, ज्वर, अधिक प्यास, खाँसी, अधिक श्वास, भोजन में अरुचि, वमन, मूर्च्छा और हिचकी, इन उपद्रवों से युक्त अतीसार वाले की औषध न करे।। २१।।

रक्तातीसार के लक्षण

पित्तकृन्ति यदाऽत्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके।
तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्बणः।। २२।।

जब पित्तातीसार में पित्तकारी पदार्थों का पुरुष बहुत भोजन करता है, तब महाभयंकर रक्तातीसार उत्पन्न होता है।। २२।।

प्रवाहिका के लक्षण

वायुः प्रदुष्टो निचितं बलासं
नुदत्यधस्तादहिताशनस्य।
प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं
प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।। २३।।

अपथ्य भोजन करने वाले मनुष्य को एकत्र हुआ कुपित वायु बार-बार थोड़ा-थोड़ा मल गिराकर कष्ट देता है, जो बहुधा बहा ही करता है और मलयुक्त ही रहता है, वैद्य लोग इसी को प्रवाहिका रोग कहते हैं।। २३।।

प्रवाहिका के भेद

प्रवाहिका वातकृता सशूला
पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च।
सशोणिता शोणितसम्भवा च
ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु।। २४।।

वात से उत्पन्न प्रवाहिका शूल सहित होती है, पित्त से उत्पन्न दाहयुक्त होती है, कफ से उत्पन्न कफ युक्त होती है और रक्त से उत्पन्न प्रवाहिका रक्त सहित होती है। स्नेह से कफ की, रुखाई से वात की और तीक्ष्ण तथा खट्टे पदार्थ से पित्त की प्रवाहिका होती है।। २४।।

अतीसारनिवृत्ति के लक्षण

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वातश्च गच्छति।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य गतस्तस्योदरामयः।। २५।।

इति षडतीसाररोगनिदानं द्वितीयोऽध्यायः।। २।।

जिसको विना दस्त के पेशाब होने लगे, पवन भी बिना दस्त के अलग खुलने लगे, अग्नि प्रज्वलित हो, जो खाय पचने लगे, कोठा हल्का हो जाए, वह मनुष्य अतीसार से मुक्त है ऐसा जाने।। २५।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादेऽतीसारनिदानं द्वितीयोऽध्यायः।। २।।

अथ ग्रहणीरोगनिदानम्

अतीसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः।
भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत्।। १।।

सो०— ग्रहणी रोग निदान, ग्रंथकार वर्णत अबै।
समझे जाहि महान्, लाभ होय सत वैद्य को ।। १।।

अतीसार निवृत्त होने पर भी मन्द अग्नि वाला पुरुष जब अपथ्य भोजन करता है तब अग्नि दूषित होकर ग्रहणी को दूषित करता है अर्थात् मल ग्रहण करने वाली शक्ति को बिगाड़ता है।। १।।

ग्रहणी के सामान्य लक्षण

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः।
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति।। २।।
पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम्।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः।। ३।।

अलग-अलग वात, पित्त और कफ दोषों से अत्यन्त मूर्छित होकर, अथवा एकत्र हुए सब अत्यन्त प्राप्त वातादिकों से दुष्ट होकर, ग्रहणी भोजन किए हुए अन्न को ग्रहण नहीं करती और न पकाती है, केवल आम ही करके गिराती है। जो कच्चे या कुछ पक्के अन्न को पीड़ा के और दुर्गन्ध के साथ बार-बार गाढ़ा करके मल को गिराती है, वैद्य लोग उसे ग्रहणी रोग कहते हैं।।३।।

ग्रहणी का पूर्वरूप

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णाऽलस्यं बलक्षयः।
विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम्।। ४।।

प्यास लगना, आलस्य होना, बल का नाश, दाह होना, बड़ी देर में अन्न का पचना और शरीर गुरु रहना, ये सब ग्रहणी होने के पूर्वरूप हैं।। ४।।

वात ग्रहणी के लक्षण

कटुतिक्तकषायातिरूक्षसन्दुष्टभोजनैः ।
प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ।। ५।।
मारुतः कुपितो वह्निं सञ्छाद्य कुरुते गदान्।
तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुष्कपाकं खराङ्गता।। ६।।

कण्ठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः।
पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका।। ७।।
हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका।
गृद्धिः सर्वरसानाञ्च मनसः सदनं तथा।। ८।।
जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च।
स वातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्की च मानवः।। ९।।
चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत्।
पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात्।। १०।।

कड़वा, तीता, कसैला, अतिरूखा, समय के विरुद्ध और अप्रमाण भोजन करना, बहुत मार्ग चलना, मूत्र-पुरीष के वेग को रोकना और बहुत मैथुन करना, इन सब कारणों से कुपित पवन अग्नि को आच्छादित कर ग्रहणी रोग को उत्पन्न करता है। ग्रहणी के रोगी को बड़े क्लेश से अन्न पचता है, उसका पाक सूखा रहता है, अंगों में रुखाई आ जाती है, गला और मुख सूखता रहता है, भूख-प्यास अधिक लगती है, आँख के सामने अँधेरा, कानों में संसनाहट सदा होती है, पसुली, जङ्घा, हड्डियों के जोड़ और गले में बार-बार पीड़ा होती है, दस्त-वमन दोनों होते हैं, हृदय में पीड़ा होती है, शरीर दुर्बल हो जाता है, बड़ी कृशता आ जाती है, मुख में रस का स्वाद नहीं जान पड़ता, फीका-सा बना रहता है, गुदा को मानों कोई कतरे लिए जाता है, सब रसों के खाने की इच्छा होती है, मन में ग्लानि बनी रहती है, अन्न पचने के समय पेट फूल जाता है, भोजन करने पर चित्त स्वस्थ होता है, वायुगोला या पिलही की उसको शङ्का होती है, क्योंकि इन दोनों रोगों के समान पेट में पीड़ा होने लगती है, वायु के योग से मनुष्य को खाँसी तथा श्वास से पीड़ा होती है। कभी बहुत, कभी थोड़ा शब्द और फेन के सहित बड़े दुःख से गीला या सूखा, बड़ी देर में मल होता है।। ५-१०।।

पित्तग्रहणी के लक्षण

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम्।
आप्लावयद्धन्त्यनलं तप्तं जलमिवानलम्।। ११।।

सोऽजीर्णनीलपीताभं पीताभः सार्यते द्रवम्।
सधूमोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ।। १२।।

कड़वी वस्तु खाने से, अजीर्ण होने से, दाह करने वाली वस्तु के खाने से, खट्टी और खारी चीजों के खाने से पित्त अत्यन्त उष्ण होकर उदर की अग्नि को बुझा देता है, जैसे उष्ण जल भी अग्नि को बुझा देता है और मनुष्य का रङ्ग पीला हो जाता है, उसको बिना पचा हुआ नीले पीले रङ्ग का मल गिरने लगता है, धुआँधी आती है, हृदय और गले में दाह होता है, सब वस्तुओं में अरुचि हो जाती है और प्यास सदा लगी रहती है।। ११-१२।।

कफग्रहणी के लक्षण

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात् ।
भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः।। १३।।
तस्यान्नम्पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः।
आस्योपदेहमाधुर्यं कासष्ठीवनपीनसाः ।।१४।।
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु।
दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम्।। १५।।
भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चः प्रवर्तनम्।
अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यञ्च कफात्मके।। १६।।

गरिष्ठ अतिचिकनी बहुत ठंडी इत्यादि वस्तुओं के भोजन करने से, अधिक भोजन करने से और दिन में भोजन के पीछे तुरन्त सोने से कफ कोप करके पेट की अग्नि को नष्ट कर देता है। इस रोग में अन्न बड़े कष्ट से देर में पचता है, हृदय में चटचटी-सी लगती है, वमन और अरुचि होती है, मुख में भी चटचटी और मीठापन हो जाता है, खाँसी, थकान और पीनस रोग हो जाता है, नाक बहती है। हृदय में लसयुक्त जल के समान भरा रहता है, पेट बँधा-सा और भारी रहता है, दुष्ट और मीठी डकार आती है, अग्निमन्द हो जाता है, स्त्री सुख की इच्छा नहीं होती है, आम कफ मिला भारी पतला मल गिरता है, मोटा पुरुष भी दुर्बल हो जाता है, और आलसी हो जाता है। ये सब कफग्रहणी के लक्षण हैं।। १३-१६।।

सन्निपातग्रहणी के लक्षण

पृथग्वातादिनिर्दिष्टं हेतुलिङ्गसमेमाग।
त्रिदोषं लक्षयेदेवं तेषां वक्ष्यामि भेषजम्।। १७।।

इति ग्रहणीरोगनिदानम्।। ३।।

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों के लक्षण पृथक्-पृथक् कह चुके हैं। जिसमें तीनों मिले हुए दिखाई दें उसे सन्निपातग्रहणी जाने। उसकी औषधि कहेंगे।। १७।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे ग्रहणीरोगनिदानं तृतीयोऽध्यायः।। ३।।

अथ संग्रहणीरोगनिदानम्

संग्रहणी के भेद और लक्षण

द्रवं घनं सितं स्निग्धं सकटीभेदनं शकृत्।
आमं बहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मंदवेदनम्।। १।।
पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं चापि प्रमुञ्चति।
अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं भवेत्।। २।।
दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शांतिं व्रजत्यपि।
दुर्विज्ञेया दुर्निवारा चिरकालानुबंधिनी।। ३।।
सा भवेदामवातेन संग्रहाद् ग्रहणी मता।

दो०— रोग ग्रहणि अति दुष्ट है, ताको कहत निदान।
ग्रंथकार विस्तार सों, सुनिये सकल सुजान।।

जिस व्याधि में पतला गाढ़ा, श्वेत और चिकना मल गिरे, कटि में पीड़ा हो, बहुत चिकना आम पड़े, दिशा के समय शब्द हो, पेट में थोड़ी-थोड़ी पीड़ा हो, पक्ष भर में, मास में, दसवें दिन में, अथवा नित्य ऐसा ही हो, आतें घुर-घुर करें, आलस्य बना रहे, दुर्बलता होती जाए, मन में

उदासीनता रहे, दिन में दस्त का कोप रहे और रात्रि में शान्ति रहे, उसे ग्रहणी कहते हैं। यह रोग बड़े दुःख से जाता है, कठिनता से रोकने के योग्य होता है। थोड़े दिन का यह रोग हो तो कदाचित् साध्य होता है, पर जब बहुत दिनों का हो जाता है तो अच्छा ही नहीं होता है, यह रोग आमवात से होता है। प्रथम यह संग्रह किए हुए मल को नहीं छोड़ता है, फिर छोड़ने लगता है। इसी से इस रोग को संग्रहणी कहते हैं।। १३।।

घटीयन्त्र नाम संग्रहणी के लक्षण

प्रसुप्तिः पार्श्वयोः शूलं तथा जलघटीध्वनिः।। ४।।
लवणाम्बुनिभः स्रावः कोष्ठे जलघटीध्वनिः।
तं वदंति घटीयंत्रमसाध्यं ग्रहणीगदम्।। ५।।

जिस व्याधि में रोगी अधिक सोए, दोनों पार्श्व (पसुली) में पीड़ा हो, और दस्त के समय जल से पूर्ण घट के औंधा देने के शब्द के समान शब्द हो, अथवा नोनखरे जल के समान स्राव हो और कोठे में जलघटी के समान ध्वनि होती रहे, इसे घटीयन्त्र संग्रहणी कहते हैं। यह संग्रहणी रोग असाध्य होता है।। ४-५।।

संग्रहणी का असाध्यत्व

लिङ्गैरसाध्यो ग्रहणीविकारो
यैस्तैरतीसारगदो न सिध्येत्।
वृद्धस्य नूनं ग्रहणीविकारो
हत्वा तनुं यो विनिवर्तते च।। ६।।

इति संग्रहणीरोगनिदानम्।। ४।।

जिन-जिन लक्षणों से अतीसार रोग असाध्य होता है, उन-उन लक्षणों के होने से यह संग्रहणी भी असाध्य हो जाती है। यदि रोग किसी वृद्ध मनुष्य को हो तो निश्चय देह का नाश ही कर देता है।। ६।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे संग्रहणीरोगनिदानं चतुर्थोऽध्यायः।। ४।।

अथार्शरोगनिदानम्

अर्श की संख्या और उत्पत्ति

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्यादुगुदवलित्रये।। १।।
दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि सन्दूष्य विविधाकृतीन्।
मांसांकुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि तांजगुः।। २।।

दो०— अर्शरोग को करत कवि, पंचम में सुविचार।
सज्जन वाको लेहु तुम, अपने हिय निरधार।।

वात-पित्त-कफ इन तीनों से अलग-अलग तीन भाँति का, इन तीनों के मिलने से एक, एक रक्त से, और एक सहज अर्थात् जन्म के साथ ही उत्पन्न होता है, इस भाँति छः प्रकार के अर्श रोग होते हैं। ये गुदा की त्रिवली में होते हैं। इन त्रिवलियों को प्रवाहिणी, सजनी और ग्राहिणी कहते हैं। वात, पित्त और कफ दोष त्वचा, मांस और मेदा को दूषित करके गुदा में मांस के अंकुर (मसे) उत्पन्न करते हैं। उन्हीं मांस के अंकुरों को अर्श कहते हैं। कभी-कभी नाक, नेत्र, लिङ्ग और तोंद में भी मांस के अंकुर (मसे) हो जाते हैं।। १-२।।

वातोद्भव अर्श का कारण

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च।
प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्ण मद्यं व्यायामकर्म च।। ३।।
लङ्घनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च।
शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसां मतः।। ४।।

कसैली, कड़वी, तीती, रूखी, ठंडी और अति हल्का वस्तुओं के खान-पान आदि से, उष्ण भोजन करने से, थोड़ा तौला हुआ खाने से, तीक्ष्ण मदिरा पीने से, अधिक मैथुन करने से, बहुधा लङ्घन करने से, शीत देश तथा काल के अति सेवन से, दण्ड मुद्गरादि बहुत कसरत करने से, शोक से और उष्ण पवन-घाम (धूप) आदि के लगने से वातार्श होता है।। ३-४।।

पित्तोद्भव अर्श का कारण

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपश्रमाः।
देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम्।। ५।।
विदाहि तीक्ष्णमुष्णञ्च सर्वं पानान्नभेषजम्।
पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम्।। ६।।

कड़वी, खट्टी, खारी, बहुत गरम वस्तुओं के खान-पान से, दण्ड मुद्गर आदि करने से, अग्नि और घाम के बहुत सेवन करने से, अधिक श्रम करने से, उष्ण देश काल के अति सेवन से, क्रोध करने से, मद्य पीने से, किसी का गुण न सह सकने से, दाहकारी, तीक्ष्ण, गरम अन्न, पान और औषध से, पित्त कोप कर बवासीर को करता है।। ५-६।।

कफोद्भव अर्श का कारण

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च।
अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः।। ७।।
प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकालावचिन्तनम्।
श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम्।। ८।।

मीठी, चिकनी, ठंडी, खारी, खट्टी और गरुई वस्तुओं का खाना-पीना आदि से, कसरत न करने से, दिन में सोने से, बहुधा खाट पर पड़े रहने से, पुरवाई पवन का सबेरे सेवन करने से और शीतदेश काल का अतिसेवन करने से, कफ के अर्शों की उत्पत्ति होती है।। ७-८।।

द्वन्द्वज और सन्निपातज अर्श का कारण

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद् द्वन्द्वोल्बणानि च।
सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजर्लक्षणैः समम्।। ९।।

जिसमें वात, पित्त और कफ इनमें से दो-दो के लक्षण मिलते हों, उसे द्वन्द्वज अर्श कहते हैं। जिसमें वात, पित्त और कफ तीनों के सब लक्षण पाए जाएं, वह सन्निपातज अर्श कहलाता है। सहज अर्श के लक्षणों के समान जिसमें लक्षण मिलते हों, वह भी सन्निपातज अर्श कहलाता है।। ९।।

अर्श का पूर्वरूप

विष्टम्भेऽङ्गस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च।
कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सविषादोऽल्पविट्कता।। १०।।
ग्रहणीरोगपाणार्तिराशङ्का चोदरस्य च।
पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये।। ११।।

वायु का न छूटना, अङ्गों का दुर्बल होना, कोठे का गुड़गुड़ाना, कृशता, डकार आना, जाँघों में हड़फूटन, थोड़ा दस्त होना, ग्रहणी, पाण्डुरोग और पेट में किसी रोग के होने की शङ्का का होना, ये सब अर्शरोग बढ़ने के पूर्वरूप (लक्षण) हैं।। १०-११।।

वातार्श का लक्षण

गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमचिमान्विताः।
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः।। १२।।
मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः।
बिम्वीकर्कन्धुखर्जूरकार्पासीफलसंनिभाः।। १३।।
केचित् कदम्बपुष्पाभाः केचित् सिद्धार्थकोपमाः।
शिरः पार्श्वांसकट्यूरुवङ्क्षणाभ्यधिकव्यथाः।। १४।।
क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः।
कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः।। १५।।
तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम्।
रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते।। १६।।
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते।
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च।। १७।।

वातार्श में गुदा के मसे, बहुत मोटे, सूखे, चुनचुनाहट की पीड़ा से युक्त, मुरझाये हुए काले व लाल, कड़े, नुकीले उठे हुए, खरखरे, एक दूसरे से न मिलते हुए, टेढ़े, तीखे, मुँह खुले हुए, कुँदुरू, बेर, खजूर और कपास के फलों के समान, कोई कदम्ब के पुष्प के आकार के, कोई सरसों के

तुल्य होते हैं। इनके होने के ये कारण हैं, शिर, पसुली, कन्धे, कमर, जाँघ, फाली और रीढ़ में अधिक पीड़ा होना, छींक आना, डकार आना, मल की रुकावट, हृदय का जकड़ना, अरुचि होना, खाँसी, हाँफना, अग्नि की विषमता से अन्न का न पचना, कानों का सनसनाना और भ्रम होना। इन अर्शरोगों से पीड़ित मनुष्य, बहुत थोड़ा, कड़ा, शब्द सहित, (कहराने के साथ) वात प्रवाहिका के लक्षणों से युक्त, शूलसहित फेनयुक्त चिकने और रुक-रुक कर होने वाले मल को करता है। उसकी त्वचा, नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र और मुख काले हो जाते हैं। वायु की गाँठ, प्लीहा और पेट में गुल्म हो जाते हैं।। १२-१७।।

पित्तार्श का लक्षण

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः।
तन्वसृक्स्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः।। १८।।
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकोवक्त्रसंनिभाः ।
दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारुचिमोहदाः ।। १९।।
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः।
यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः।। २०।।

अधिक पित्त वाले बवासीर में गुदा के मसों का मुख नीला होता है। उनसे लाल, पीला व काला रुधिर निकलता है। कच्चे सड़े अन्न की-सी गन्ध आती है। मसे छोटे-छोटे नरम होते हैं। तोते की जीभ के डौल के, यकृत के खण्ड के तुल्य, जोंक के मुख की तरह होते हैं। दाह, पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह, रोगी को ये उपद्रव होते हैं। छूने से उष्ण जान पड़ते हैं। गुदा से पतला, नीला, उष्ण, पीला, लाल और आम सहित मल उतरता है। वह नीचे यव के पेट की मुटाई के समान होता है और उसकी फुनगी पतली होती है। उस रोगी के नख, नेत्र और शरीर की त्वचा हरिताल या हल्दी के रङ्ग के हो जाते हैं।। १८-२०।।

कफार्श के लक्षण

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः।
उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः।। २१।।

पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः।
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः।। २२।।
वङ्क्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः।
सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ।। २३।।
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ।
क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ।। २४।।
वसाभसकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः।
न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः।। २५।।

कफ के उल्बण अर्शरोग के मसे भीतर से बड़ी दूर तक जड़ बाँधे हुए होते हैं, कड़े और थोड़ी-थोड़ी पीड़ा करते हैं, उजले, ऊँचे, मोटे, चिकने, खड़े या गोल होते हैं। गुदा के चारों ओर घेरे रहते हैं। बहुत चिकने, अचल, गुलगुले होते हैं और इन में खजुली होती है, इससे छूने पर बहुत सुख विदित होता है। करीर और कटहल के बीजों के समान या गाय की चूँची के आकार के होते हैं। सब जोड़ों को खींचते रहते हैं, पसुरी, अण्डकोश, गुदा, पार्श्व तथा नाभि को खींचते रहते हैं। खाँसी, श्वास, मुँह में पानी छूटना, लार बहना, अरुचि और पीनस को भी करते हैं। प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तक की गरुआई और शीतज्वर को भी करते हैं। नपुंसकता, अग्निमन्दता, वमन, आम के सम्बन्धी अतीसारादि रोगों को भी करते हैं। चर्बी की तरह कफ मिले हुए मल को गिराते, प्रवाहिका को करते, रक्तादिकों को नहीं चुआते और न पीड़ा करते हैं। कफोल्बण अर्श में त्वचा, नख और नेत्रादिक उजले तथा चिकने हो जाते हैं।। २१-२५।।

सन्निपात अर्श के लक्षण

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च।

सब वात-पित्त-कफों के मिले हुए लक्षण जिस बवासीर में हों, उसे सन्निपात का अर्श जानना चाहिए। ये ही लक्षण सहज अर्श के भी होते हैं। सहज भी वातादि तीनों दोषों से ही होते हैं।।

रक्तादिक अर्श के लक्षण

रक्तोल्बणा गुदेकीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः।। २६।।
वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः।
तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णञ्च गाढविट्कप्रपीडिताः।। २७।।
स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः।
भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः।। २८।।
हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः।।
विट् श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न वर्तते।। २९।।

रक्त की अधिकता वाले अर्श के मसे पित्त के अर्श के मसों के समान होते हैं। वे वट के अँकुए की तरह के या घुँघची अथवा मूंगे के आकार के होते हैं। ये गाढ़े गरम रुधिर को गिराते और पीड़ा करते हैं। उन मसों से एकाएकी बहुत रक्त बहने के कारण शरीर में रुधिर का नाश होने से, मनुष्य के देह का रङ्ग मेंडक के रङ्ग का हो जाता है। उस रोगी के शरीर का बल, रङ्ग, उत्साह और पराक्रम नष्ट हो जाता है। सब इन्द्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं, विष्ठा कड़ी और रूखी होने लगती है तथा अधो-वायु नहीं छूटता।। २६-२९।।

वातयुक्त रक्तार्श के लक्षण

तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम्।
कट्यूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि वाधिकम्।। ३०।।
तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम्।

वात के रक्त अर्शों में पतला, लाल और फेन सहित रक्त गिरता है, कटि, जाँघ और गुदा में शूल होता है अथवा दुर्बलता अधिक हो जाती है। इन लक्षणों से युक्त रुखाई लिए हुए इस रोग को वातसम्बन्धी रक्तार्श जानना चाहिए।। ३०।।

कफयुक्त रक्तार्श के लक्षण

शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम्।। ३१।।

यद्यर्शसां घनं चासृक्तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम्।
गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम्।। ३२।।
श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः।

कफ युक्त रक्तार्श में ढीला, उजला, पीला, चिकना, गुरु और शीतल मल गिरता है। यदि अर्शों में गाढ़ा रुधिर बहे, उसमें सूत से दिखाई दें, जो उजले और चिकने हों, गुदा में चिकनाई के कारण चटचटी बनी रहे, निश्चलता हो, गरुआपन विदित हो और चिकनापन अत्यन्त हो तो उसे कफ सम्बन्धी रक्तार्श जानना चाहिए।। ३१-३२।।

अर्श होने पर दोषों का कोप

[1]पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रयम्।। ३३।।
सर्व इव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे।
तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च।
सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च।। ३४।।

गुदा में तीन वलियाँ अर्थात् घेरे होते हैं। उनमें जब अर्श उत्पन्न होते हैं तो पाँच प्रकार के वायु, पाँच प्रकार के पित्त और पाँच प्रकार के कफ, ये सब कोप करते हैं। इस प्रकार बवासीर रोग होने पर ये सब अपने-अपने स्थानों पर कोप करते हैं। इसी से इस रोग के होने से सब अङ्गों तथा स्थानों में दुःख होता है और नाना प्रकार के अन्यरोग भी उत्पन्न हो आते हैं। इस रोग में सब देह में उपताप होता है, सब प्रकार के कष्ट होते हैं और बड़े कष्ट से यह रोग मिटता भी है।। ३३-३४।।

साध्य अर्श के कारण

अर्शसां प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमान्।
तान्याशु हि गुदं बद्ध्वा कुर्युर्बद्धगुदोदरम्।। ३५।।

[1]पाँच वायु इन-इन स्थानों में सदा रहते हैं-प्राणवायु हृदय में, अपानवायु गुदा में, समान नाभि में, उदान कण्ठ में और व्यान सब देह भर में। पाँच पित्तों के स्थान ये हैं— चलक नाम पित्त नेत्र में, रञ्जक नाम प्लीहा और यकृत् में, साधक पित्त हृदय में, पाचक आमाशय में और भ्राजक त्वचा में। कफ के स्थान ये हैं— अवलम्बक नाम कफ का स्थान हृदय, क्लेदन का आमाशय, बाधक का जिह्वा, तर्पक का मस्तक और श्लेष्मक का स्थान सब सन्धियाँ हैं।

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च।। ३६।।

बुद्धिमान् को चाहिए कि बवासीर की शांति के लिए शीघ्र ही यत्न करे, क्योंकि यह रोग बढ़कर बहुत शीघ्र गुदा को आच्छादित कर लेता है। जो अर्श तीन वलियों में से बाहर वाली ही वलि (घेरे) में होता है, वात-पित्त-कफों में से किसी एक ही दोष से होता है और बहुत दिनों का नहीं होता, केवल एक ही वर्ष के भीतर का होता है, वह अर्श सुखसाध्य होता है।। ३५-३६।।

कष्टसाध्य अर्श के लक्षण

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च।। ३७।।

जो अर्श दोषों से युक्त और दूसरी वलि में होते हैं और वर्ष के ऊपर के होते हैं, वे कष्टसाध्य होते हैं। प्रथम वलि में दो दोष से उत्पन्न अर्श और दूसरी में एक दोष से उत्पन्न अर्श भी कष्टसाध्य होते हैं।। ३७।।

असाध्य अर्श के लक्षण

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम्।
जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत्।। ३८।।
शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते।
याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा।। ३९।।

जो बवासीर सहज हैं, जन्म ही से चले आते हैं, सन्निपात से उत्पन्न हैं, और तीसरी वलि में अन्त के घेरे में होते हैं, ये सब असाध्य हैं। असाध्य दो प्रकार के होते हैं। एक याप्य, दूसरा प्रत्याख्येय। जिस असाध्य अर्श के रोगी की आयु बाकी है और उसके चारों पाद युक्त हैं अर्थात् उसकी औषधि करने वाला वैद्य शास्त्रज्ञ और क्रिया करने में कुशल हो, जो औषधें दी जाएं, वे सब नवीन हों, रोगी के निकट रहने वाले सेवकादि चित्त लगाकर सेवा करें, औषध देने में आलस्य न करें, जिस समय वैद्य की आज्ञा हो दे दें, रोगी

जितेन्द्रिय और उसका चित्त शुद्ध हो, रोगी के उदर के अग्नि में मन्दता न हो, प्रदीप्ताग्नि हो, तो रोगी याप्य है अर्थात् औषध करने से असाध्य भी जी सकता है। यदि इससे विपरीत असाध्य हो अर्थात् ऊपर कहे हुए चारों पाद न हों, तो वह प्रत्याख्येय है अर्थात् वैद्य को चाहिए कि ऐसे असाध्य रोगी को जवाब दे दें।।३८-३९।।

असाध्य अर्श के विशेष लक्षण

हस्ते पादे मुखे नाभौ गुदे वृषणयोस्तथा।
शोथो हृत्पार्श्वशूलञ्च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः।। ४०।।
हृत्पार्श्वशूलसंमोहौ छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः।
तृष्णा गुदास्य पाकश्च निहन्युर्गुदजा नरम्।। ४१।।
तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रस्रुतशोणितम् ।
शोथातीसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि।। ४२।।
मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि तु।
गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च।। ४३।।

जिस अर्शरोगी के हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा और दोनों अण्डकोश में शोथ हो गया हो, और हृदय तथा पसुलियों में पीड़ा बनी रहती हो, वह रोगी महाअसाध्य है। हृदय और पसुलियों में शूल, मन में सम्मोह, उबकाई आना, अङ्गों में पीड़ा, ज्वर बना रहना, प्यास लगना और गुदा तथा मुख का पक जाना, ये लक्षण जिस बवासीर वाले को हों, उसकी मृत्यु अवश्य होती है। जिस अर्श के रोगी को प्यास अधिक लगे, अरुचि हो, पीड़ा के साथ रुधिर बहुत गिरे, शोथ हो और अतीसार भी होता रहे, ऐसे रोगी को बवासीर मार ही लेता है। लिङ्ग, नाक, कान आदि में भी केंचुआ के मुख के से चिकने और गुलगुले मसे होते हैं। ये भी असाध्य होते हैं।। ४०-४३।।

चर्मकील की संप्राप्ति व लक्षण

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः।।
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः।। ४४।।

वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितरक्तता।
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रन्थितत्वं सवर्णता।। ४५।।

इत्यर्शोरोगनिदानम् पञ्चमोऽध्यायः।। ५।।

गुदा में रहने वाला व्यान वायु कफ को ग्रहण करके त्वचा के ऊपर मसों को उत्पन्न करता है। वे कील की तरह के होते हैं तथा स्थिर और खरखरे होते हैं। इन मसों को चर्मकील कहते हैं। वात के कारण उस चर्मकील में व्यथा और कड़ापन रहता है, तथा पित्त के कारण उसका रङ्ग काला-लाल मिला हुआ होता है। कफ के कारण चिकना, गँठीला और रङ्ग में चमड़े का-सा होता है।। ४४-४५।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादेऽर्शोरोगनिदानम्पञ्चमोऽध्यायः।। ५।।

अथाग्निमान्द्याजीर्णरोगनिदानम्

मन्दाग्नि के लक्षण व उपद्रव

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।
कफपित्तानिलाधिक्यात् तत्साम्याज्जाठरोऽनलः।। १।।
विषमो वातजान् रोगांस्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान्।
करोत्यग्नेस्तथा मन्दो विकारान्कफसम्भवान्।। २।।
समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते।
स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः।। ३।।
कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते।
मात्राऽतिमात्राऽप्यशिता सुखं यस्य विपच्यते।। ४।।
तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते।

दोहा— मंद अग्नि को कहते हैं, ग्रंथकार सुनिदान।
तथा अजीरन को तिनहिं, सुनो धीर धरि ध्यान।।

मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम भेद से जाठर अग्नि चार प्रकार का होता है। कफ की अधिकता से मन्द, पित्त की अधिकता से तीक्ष्ण, वायु की

अधिकता से विषम और इन तीनों की समानता से जाठर अग्नि सम रहता है। विषम अग्नि वात से उत्पन्न रोगों को करता है, तीक्ष्ण अग्नि पित्त के कारण से उत्पन्न रोगों को करता है, और मन्दाग्नि कफ से उत्पन्न विकारों को करता है। वातज रोग अस्सी भाँति के, पित्तज चालीस प्रकार के और कफज बीस भाँति के होते हैं। सम अग्नि से जिन पुरुषों की मात्रा (खुराक) समान होती है, उनका अन्न अच्छी तरह पचता है। मन्दाग्नि पुरुष को थोड़ी भी मात्रा (खुराक) नहीं पचती, और विषम अग्नि वाले प्राणी की मात्रा कभी पचती है, कभी नहीं पचती। जिस पुरुष को बड़ी से भी बड़ी मात्रा (जितनी ही खाय) पच जाती है, उसको तीक्ष्णाग्नि कहते हैं। इन सब अग्नियों में सम अग्नि श्रेष्ठ कहलाती है।। १-४।।

अजीर्ण रोग के कारण और भेद

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः।
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः।। ५।।
अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च।
वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम्।। ६।।

कफ, पित्त और वायु की अधिकता से, यथाक्रम आम, विदग्ध और विष्टब्ध, ये तीन प्रकार के अजीर्ण होते हैं। कफाधिक्य से अन्न पचता ही नहीं, कच्चा रह जाता है, पित्ताधिक्य से अधिक जल जाता है और वाताधिक्य से अन्न बँध जाता तथा लपट जाता है। इससे अजीर्ण हो जाता है। चौथा भोजन का रस सूख जाने से होता है। किसी-किसी के मत से जो अन्न दिन भर में पचता है, वह पाँचवाँ अजीर्ण है। यद्यपि इसमें पेट नहीं फूलता पर दिन भर में पचने के कारण अजीर्ण ही है। जिसमें स्वभाव ही से अजीर्ण बना रहे, पेट में गुरुता जान पड़े, उसे छठवाँ अजीर्ण कहते हैं।। ५-६।।

अजीर्ण रोग की संप्राप्ति

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाद्वा
सन्धारणात्स्वप्नविपर्ययाद्वा।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्त-
मन्नं न पाकं भजते नरस्य।। ७।।

ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति।। ८।।

बहुत पानी पीने से, नियत समय पर भोजन न करने से, मल-मूत्र के वेग के रोकने से, दिन को सोने से, रात्रि को जगने से अन्न नहीं पचता है, चाहे समय पर भी अपनी इच्छा के अनुकूल या लघु ही भोजन करे, पर उस पुरुष का अन्न नहीं पचता। ईर्ष्या, भय और क्रोध से युक्त, लोभ, शोक और दीनता से युक्त तथा किसी से प्रसन्न न रहने वाले पुरुष का अन्न नहीं पचता है।। ७-८।।

आमाजीर्ण के लक्षण

तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गण्डाक्षिकूटजः।
उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्तते।। ९।।

आमाजीर्ण में अङ्गों में गुरुता, ओकाई, गालों तथा नेत्रों में शोथ और जैसा अन्न भोजन किया हो, डकार आने के साथ वैसा ही अन्न निकलना, ये लक्षण होते हैं।। ९।।

विदग्धाजीर्ण के लक्षण

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः।
उद्गारश्च सधूमाम्लः खेदो दाहश्च जायते।। १०।।

विदग्धाजीर्ण में (जो पित्ताधिक्य से होता है) चित्तभ्रम, तृषा, मूर्च्छा और पित्त के नाना प्रकार के रोग, धुआंइँध के साथ खट्टे रस का वमन, पसीना और दाह होता है।।१०।।

विष्टब्धाजीर्ण के लक्षण

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः।
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम्।। ११।।

विष्टब्धाजीर्ण में (जो कि वाताधिक्य से होता है) शूल उठना, बहुत पेट फूलना, वातरोगों की विविध पीड़ा, मल न उतरना, अधोवायु का न छूटना, अङ्गों का स्तम्भ, मोह और अङ्गों में पीड़ा, ये लक्षण होते हैं।। ११।।

रसशेषाजीर्ण के लक्षण

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे।

रसशेष के अजीर्ण में अरुचि, जी मचलाना और शरीर का भारीपन, ये लक्षण होते हैं।

अजीर्ण के उपद्रव

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः।। १२।।

मूर्च्छा आना, अनर्थ बकना, वमन करना, मुख में पानी छूटना, ग्लानि होना, भ्रम होना, अजीर्ण में ये उपद्रव होते हैं, अथवा मरण ही हो जाता है।। १२।।

अजीर्ण की प्राप्ति

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि।। १३।।

जिन लोगों की इन्द्रियाँ उनके अधीन नहीं हैं, पशुओं के समान अप्रमाण भोजन करते हैं, अतः रोगसमूह की जड़ अजीर्णरोग के आखेट होते हैं।। १३।।

अत्यन्त अजीर्ण से विषूचिकादि रोग

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम्।
विषूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका।। १४।।

आम अजीर्ण, विष्टब्ध अजीर्ण और विदग्ध अजीर्ण से विषूची, अलसक और विलम्बिका, ये तीनों रोग होते हैं।। १४।।

विषूचिका की संप्राप्ति

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्संतिष्ठतेऽनिलः।
यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते।। १५।।

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः।। १६।।

जिस अजीर्ण रोग में सुइयों की तरह कोचता हुआ पवन पेट में टिकता है, उसे वैद्य लोग विषूची कहते हैं। परन्तु यह विषूची रोग उन लोगों को कभी नहीं होता जो प्रमाण सहित बँधा हुआ अन्न खाते हैं। जो वैद्यकशास्त्र के अनुसार खाते पीते हैं, उनको भी नहीं होता। परन्तु जो लोग मूढ़ और अजितेन्द्रिय हैं, भोजन के बड़े लोभी हैं, अच्छा भोजन पाकर अप्रमाण खाते चले जाते हैं, उन्हीं को विषूची होती है।। १६।।

विषूचिका के लक्षण

मूर्च्छाऽतिसारो वमथुः पिपासा
शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः ।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च
भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः।। १७।।

इस रोग में मूर्च्छा आती है, अतीसार होता है, वमन होता है, प्यास बार-बार लगती है, शूल उठता है, चित्तभ्रम होता है, हाथ पैरों में ऐंठन होती है, जँभाई आती है, दाह होता है, शरीर विवर्ण होता है, कम्प होता है, हृदय में पीड़ा होती है और शिर में अत्यन्त पीड़ा होती है, ये सब विषूची या विषूचिका रोग के लक्षण हैं। इसी को शीतरस और हैजा भी कहते हैं।। १७।।

अलसक के लक्षण

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत्परिकूजति।
निरुद्धो मारुतश्चापि कुक्षावुपरि धावति।।१८।।
वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु।। १९।।

कोखा बहुत फूल जाता है, पेट गुड़गुड़ाता है, इस प्रकार बँधा हुआ वायु कोखा के ऊपर दौड़ने लगता है। वायु और मल दोनों यहाँ तक रुक जाते हैं कि गले तक पेट अत्यन्त फूल आता है, प्यास लगती है, उसे अलसक कहते हैं।। १८-१९।।

विलम्बिका के लक्षण

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां
प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य।
विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्या-
माचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः।। २०।।
यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव
देशं विशेषेण विकारजातैः।
दोषेण येनावततं शरीरं
तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ।। २१।।

कफ और वायु के कारण भोजन किया हुआ अन्न ऐसा दुष्ट हो जाता है कि न ऊपर को जाने पाता, न नीचे आने पाता, न वमन होने पाता, न झाड़ा होने पाता है। पुराने वैद्य इसे विलम्बिका कहते हैं। इसमें बड़ी देर तक अन्न एक ही स्थान पर रहता है। इस रोग की चिकित्सा बहुत कठिन होती है। अलसक और विलम्बिका दोनों समान (रोग) हैं। अलसक में शूलादि अधिक होते हैं और विलम्बिका में नहीं। परन्तु पवन और मल दोनों में ऊपर और नीचे नहीं जाने पाते हैं। जिस स्थान पर वात-कफ के दोषों से आम रह जाता है, उसी स्थान में पीड़ा करता है। उस बिना पचे हुए अन्न के स्थान में फोड़ा आदि उत्पन्न होते हैं।। २०-२१।।

विषूचिकादि के असाध्य लक्षण

यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो
वम्यर्दितोऽभ्यन्तरजातनेत्रः।
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धि-
र्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय।। २२।।

जिसके दाँत, ओठ और नख काले पड़ जाएं, ज्ञान ठीक न रहे, वमन से अत्यन्त पीड़ित हो, आँखें भीतर को बैठ जाएँ, आवाज़ धीमी हो जाए और सब जोड़ शिथिल हो जाएँ, वह प्राणी मृतक ही हो जाता है।। २२।।

पचे हुए अन्न के लक्षण

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम्।। २३।।

इत्यग्निमान्द्याजीर्णरोगनिदानं षष्ठोऽध्यायः।। ६।।

शुद्ध डकार आना, देह प्रसन्न होना, भोजन के प्रमाण मल-मूत्र होना, पेट का हल्कापन, और भूख-प्यास लगना, ये सब अन्न पच जाने के लक्षण हैं।। २३।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादेऽग्निमान्द्याजीर्णरोगनिदानं षष्ठोऽध्यायः।। ६।।

अथ कृमिरोगनिदानम्

कृमिरोग के नाम और उत्पत्ति

कृमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाश्चतुर्विधाः ।। १।।
नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः।
तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः।। २।।
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः।
द्विधा ते कोठपिडिकाकण्डूगण्डान्प्रकुर्वते।। ३।।

सोरठा— सप्तम में कह भेद, ग्रंथकार कृमिरोग को।
सज्जनगन मनलाय, सुनौ ताहि निर्धारि कै।।

कृमि दो प्रकार के होते हैं, एक बाहरी-दूसरे भीतरी, उनमें बाहर के मल, पसीना और मैल से उत्पन्न होते हैं और भीतर वाले कफ, रक्त और विष्ठा में उत्पन्न होते हैं। ये दोनों (बाहरी-भीतरी) चार प्रकार के होते हैं। उनके बीस नाम हैं। उन दोनों में बाहरी कृमि बाहर के मल से होते हैं। इनका प्रमाण तिल के समान, और वर्ण भी काले या उजले तिलों के समान होता है। वे बालों में और वस्त्रों में रहते हैं, इनके बहुत से पैर और बहुत छोटे

होते हैं। ये यूका (जुआँ) और लिक्षा (लीख) कहलाते हैं। इन दोनों प्रकार के कृमियों के काटने से देह में छोटे-छोटे फुटके और खजुली तथा दाने हो जाते हैं।। १-३।।

कृमि होने के कारण

अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो
द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता।
व्यायामवर्जी च दिवाशयानो
विरुद्धभुक् संलभते कृमींस्तु।। ४।।
माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः।
मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः।
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैःशोणितोत्था भवन्ति हि।। ५।।

अजीर्ण में भोजन करने से, नित्य मीठी-खट्टी वस्तु खाने से, कढ़ी, लप्सी आदि बहुत पतली वस्तु खाने से, पीठी से बनी हुई वस्तु खाने से, गुड़ खाने से, दण्ड-कुश्ती आदि न करने से, दिन में प्रतिदिन सोने से और दूध के साथ मछली आदि विरुद्ध भोजन करने से, प्राणी को कृमि हो जाते हैं। उड़द, पीठी, भात, अधिक खारी वस्तु, गुड़ तथा शाक के खाने से, विष्ठा में कृमि उत्पन्न होते हैं। मांस, उड़द, गुड़, दूध, दधि और सिरका खाने से कफज कृमि होते हैं। जो जिसमें न मिलाना चाहिए, उसमें उसको मिलाकर खाने से, अजीर्ण में भोजन करने से और शाकादि खाने से, रक्त में कृमि उत्पन्न होते हैं।। ४-५।।

पेट में कृमि उत्पन्न होने के लक्षण

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगश्छर्दनं भ्रमः।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम्।। ६।।

ज्वर आना, देह का रङ्ग बदलना, शूल उठना, हृदय में पीड़ा होना, वमन होना, चित्तभ्रम होना, भोजन से अप्रीति होना, और अतीसार होना, जिसके पेट में कृमि हो जाते हैं, उसके ये सब लक्षण होते हैं।। ६।।

कफज कृमि के लक्षण

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः।
पृथुब्रध्ननिभाः केचित् केचिद् गण्डूपदोपमाः।। ७।।
रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ।
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते।। ८।।
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महाकुहाः।
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते।। ९।।
हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ।। १०।।

कफ से उत्पन्न कृमि आमाशय में जाकर बढ़ते हैं और सब ओर रेंगते फिरते हैं। उनमें कोई-कोई तो चमड़े के पतले ताँत के आकार के, कोई केंचुओं के आकार के, कोई-कोई अन्न के अंकुर के आकार के, कोई बहुत लम्बे, कोई बहुत ही छोटे, कोई पतले, कोई उजले और कोई लाल होते हैं। उनके सात नाम हैं— अन्त्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महाकुह, चुरु, दर्भकुसुम और सुगन्धा। ये कृमि जब पेट में हो जाते हैं, तो जी मचलाने लगता है, मुँह में पानी छूटता है, अन्न नहीं पचता है, अरुचि होती है, मूर्च्छा आती है, वमन होता है, ज्वर आता है, दुर्बलता होती है, छींक आती है, पीनस रोग होता है और नाक सदा अधिक बहा करती है।। ७-१०।।

रक्तज कृमि के लक्षण

रक्तवाहिशिरास्थानाद्रक्तजा जन्तवोऽणवः।
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः।। ११।।
केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः।
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः।। १२।।

रक्तवाहिनी नसों में रक्त से उत्पन्न छोटे-छोटे कृमि होते हैं। उनके पैर नहीं होते। वे गोल और ताम्बे के रङ्ग के होते हैं। अत्यन्त छोटे होने से कोई-कोई दिखाई भी नहीं देते हैं। ये छह भाँति के होते हैं— केशाद, लोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस तथा माता। इन कृमियों का मुख्य कर्म कुष्ठरोग करना है।। ११-१२।।

पुरीषज कृमि के लक्षण

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः।
वृद्धास्सन्तो भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः।। १३।।
तदाऽऽस्योद्गारनिःश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः।
पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः।। १४।।
ते पञ्च नाम्ना कृमयः ककेरुकमकेरुकाः।
सौसुरादाः मलूनाख्या लेलिहा जनयन्ति ते।। १५।।
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः ।
रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विमार्गगाः।। १६।।

इति कृमिरोगनिदानं सप्तमोऽध्यायः।। ७।।

जो कृमि पक्वाशय में मल से उत्पन्न होते हैं, वे मल के संग नीचे गिरते हैं। वे अधिक बढ़ जाने पर जब आमाशय की ओर चलते हैं, तब उस पुरुष को डकार लेने और श्वास लेने में, विष्ठा की-सी गन्ध उत्पन्न होती है। ये कृमि मोटे, गोल, लम्बे, काले, पीले, उजले और नीले होते हैं। उन कृमियों के पाँच नाम होते हैं— ककेरुक, मकेरुक, सौसराद, मलूना और लेलिह। ये कृमि इन-इन रोगों को उत्पन्न करते हैं— मल पतला, शूल, कब्ज, दुर्बलता, कड़ापन, पाण्डुरोग, रोओं का खड़ा होना, अग्निमन्दता और गुदा में खुजली।। १३-१६।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे कृमिरोगनिदानं सप्तमोऽध्यायः।। ७।।

अथ पाण्डुरोगनिदानम्

पाण्डुरोग के भेद

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः।
चतुर्थः संनिपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः।। १।।

दोहा— अठवें महँ बहुविध कहेउ, पाण्डुरोग को तत्त्व।
वैद्य प्रवीण विचारि तिन, लखहिं क्षिप्र सब सत्त्व।।

पाण्डुरोग पाँच प्रकार के होते हैं। पहला वात से, दूसरा पित्त से, तीसरा कफ से, चौथा सन्निपात से और पाँचवाँ मिट्टी खाने से।। १।।

पाण्डुरोग की संप्राप्ति

व्यायाममम्लं लवणानि मद्य-
मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम्।
निषेव्यमाणस्य विदूष्य रक्तं
कुर्वन्ति दोषास्त्वचि पाण्डुभावम्।। २।।

अधिक मैथुन करने से, अति खट्टी वस्तु खाने से, अति खारा पदार्थ खाने से, बहुत मदिरा पीने से, मिट्टी खाने से, दिन में बहुधा सोने से और अत्यन्त तीक्ष्ण वस्तु के खाने से दोष रक्त, चर्म और मांस में जाकर इन सभी को पीले कर देते हैं। इसी को पाण्डुरोग कहते हैं।। २।।

पाण्डुरोग का पूर्वरूप

त्वक्स्फोटनिष्ठीवनगात्रसाद-
मृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको
भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि।। ३।।

त्वचा फट जाना, थूकना, शरीर में ग्लानि, मिट्टी खाने की इच्छा, नेत्रों के गोले में शोथ, मल और मूत्र में पीलापन और अन्न का न पचना, ये लक्षण जब पाण्डुरोग होने पर होता है, तब पहले होते हैं।। ३।।

वातजपाण्डुरोग के लक्षण

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणप्रभाः।
वातपाण्ड्वामये कम्पतोदानाहभ्रमादयः।। ४।।

वातज पाण्डु रोग में, त्वचा, मूत्र, नेत्रादिकों में रुखाई होती है, इनका रङ्ग काला और लाल मिला हुआ हो जाता है, शरीर काँपता है, कोंचने के समान पीड़ा होती है, पेट फूलता है और चित्तभ्रम आदि होते हैं।।४।।

पित्तज पाण्डुरोग के लक्षण

पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः।
भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामयी नरः।। ५।।

पित्त के पाण्डुरोग वाले मनुष्य के मूत्र, मल और नेत्र पीले हो जाते हैं, दाह, प्यास और ज्वर होते हैं, मल पतला हो जाता है तथा शरीर का रङ्ग बहुत पीला हो जाता है।। ५।।

कफज पाण्डुरोग के लक्षण

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ।
पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः।। ६।।

कफ के पाण्डुरोगी के मुख से कफ गिरा करता है, शोथ होता है, तन्द्रा आती है, आलस्य मालूम होता है, शरीर गुरु जान पड़ता है और त्वचा, मूत्र, मुख तथा नेत्र बहुत उजले हो जाते हैं।।६।।

सन्निपातज असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ।
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः।। ७।।

जिसमें वात-पित्त-कफ तीनों के लक्षण हों, वह सन्निपातज पाण्डुरोग कहलाता है। जिसमें ज्वर, अरुचि, मुख में पानी छूटना, वमन करना, अतिप्यास लगना, चित्तव्याकुलता, अतिदुर्बलता और इन्द्रियशिथिलता, ये उपद्रव हों, उस असाध्य सन्निपात रोगी को वैद्य छोड़ दे, औषधि न करे।। ७।।

मृत्तिकाजन्य पाण्डुरोग की संप्राप्ति और लक्षण

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः।
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम्।। ८।।
कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं च रूक्षयेत्।
पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्ध्यपि।। ९।।

इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा।
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम्।। १०।।
शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः।
कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम्।। ११।।

मिट्टी खाने वाले मनुष्य के वातादिक दोष अलग कोप करते हैं। कसैली मिट्टी के खाने से वायु कोप करता है, खारी मिट्टी के खाने से पित्त और सफेद मीठी मिट्टी के खाने से कफ कुपित होता है। वह खाई हुई मिट्टी रसादिक सात धातुओं को कुपित करके रूखा कर देती है। उस रूखेपन से, वह प्राणी जो कुछ अन्न खाता है, वह भी रूखा हो जाता है। परन्तु वह मिट्टी कच्ची बनी रह कर सब मार्गों को रोक देती है। इन्द्रियों के बल को नष्ट कर तेज, वीर्य और पराक्रम को भी नष्ट करती है। बल, वर्ण और अग्नि के नाशक पाण्डुरोग को वह बहुत शीघ्र उत्पन्न करती है। सब पाण्डुरोगों में जब कोठे में कृमि हो जाते हैं तो नेत्र के गोले, गाल, भौंह, पैर, नाभि और लिङ्ग में शोथ हो आता है। रुधिर और कफ सहित पतला मल गुदा मार्ग से बाहर आता है।। ८-११।।

असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति।
कालप्रकर्षाच्छूनानां यो वा पीतानि पश्यति।। १२।।
बद्धाल्पविट् सहरितं सकफं योऽतिसार्यते।
दीनः श्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृडन्वितः।। १३।।
स नास्त्यसृक्क्षयाद्यस्तु पाण्डुः श्वेतत्वमाप्नुयात्।
पाण्डुदन्तनखो यश्च पाण्डुनेत्रश्च यो भवेत्।। १४।।
पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति।। १५।।
अन्तेषु शूनं परिहीणमध्यं
म्लानं तथाऽन्तेषु च मध्यशूनम्।
गुदे च शेफस्यथ मुष्कयोश्च
शूनम्प्रताम्यन्तमसंज्ञकल्पम् ।। १६।।

विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोऽर्थी
तथाऽतिसारज्वरपीडितञ्च।। १७।।

बहुत दिन का पाण्डुरोग अतितीक्ष्ण हो जाने के कारण असाध्य हो जाता है, सिद्ध नहीं होता है। बहुत दिन होने से जिस पाण्डुरोगी का शरीर फूल आए, अथवा जिस रोगी को सब पीला ही पीला दिखाई दे तो वह भी रोग असाध्य ही होता है। जो रोगी हरा कफ सहित बहुत विष्ठा करे, वह भी असाध्य ही होता है। जो पीड़ा के मारे दुःखी रहता है, जिसके शरीर पर उजलापन विदित होता है, जो वमन, मूर्च्छा और प्यास से युक्त रहता है, वह भी असाध्य होता है। जो रक्त नाश हो जाने के कारण पीला-उजला हो गया हो, मानो वह अब इस संसार में नहीं है। जिस पाण्डुरोगी के दाँत व नख पीले पड़ गए हों, जिसके नेत्र पीले हो गए हों और जिसे सब वस्तु पीली दिखाई देती हैं, उस पाण्डुरोगी की मृत्यु होती है। जिस पाण्डुरोगी के हाथ, पैर, जङ्घा आदि फूल आये हों और बीच का धड़ सूख गया हो, वह रोगी असाध्य होता है। जिसके हाथ, पैर, जङ्घा आदि सूख जाएँ और मध्य का शरीर छाती-पेट आदि फूल आए, वह भी असाध्य ही है। गुदा, लिङ्ग और पोतों में जिसके सूजन होती है, वह भी असाध्य है। जिसको दिन-रात्रि तन्द्रा आती है और जो मूर्च्छित रहता है, वह भी असाध्य ही है। जिस पाण्डुरोगी को ज्वर-अतीसार सङ्ग ही हों, यश चाहने वाला वैद्य उसे तुरन्त छोड़ दे, वह महा असाध्य है।। १२-१७।।

कामला पाण्डुरोग की संप्राप्ति

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते।
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते।। १८।।

जो पाण्डुरोगी अत्यन्त पित्त करने वाली खट्टी, तीखी आदि वस्तुओं का सेवन करता है, उसका पित्त, रक्त और मांस को जलाकर अधिक पाण्डुरोग (कामलारोग) को उत्पन्न करता है।। १८।।

कामला पाण्डुरोग के लक्षण

हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः।
रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः।। १९।।

दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः ।
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता।। २०।।

इस रोग में नेत्र हरिद्रा के समान पीले हो जाते हैं, त्वचा, नख और मुख भी हरिद्रा के ही रङ्ग के हो जाते हैं, मूत्र और मल, लाल-पीला मिला हो जाता है, मेंढक के समान देह का रङ्ग पीला हो जाता है, सब इन्द्रियाँ हत हो जाती हैं, सदा दाह, अन्न न पचना, दुर्बलता, ग्लानि और अरुचि, इनसे पीड़ित रहता है। बहुत पित्त ही से कामला होती है। यह प्रथम कोठे में रहती है। फिर धीरे-धीरे उसकी शाखा रक्तादि धातुओं में प्रविष्ट हो जाती है।। १९-२०।।

कुम्भकामला के लक्षण

कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला।

कामला ही बहुत काल तक रहने से अतितीक्ष्ण होकर, कुम्भकामला हो जाती है। यह बड़े कष्ट से साध्य होती है।

दोनों कामलाओं के असाध्य लक्षण

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः।
सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति।। २१।।
दाहारुचितृडानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ।
नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते।। २२।।

मल और मूत्र काला-पीला मिला हो जाता है, अङ्ग अत्यन्त फूल आते हैं, नेत्र, मुख, वमन, विष्ठा और मूत्र लाल हो जाते हैं। सदा मानो तन्द्रा आती रहती है। जिस कामला वाले रोगी को दाह, अरुचि, प्यास, पेट फूलना, तन्द्रा और मोह सदा बने रहें, तथा अग्नि नष्ट हो गई हो, वह रोगी शीघ्र ही मरता है।। २१-२२।।

असाध्य कुम्भकामला के लक्षण

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ।
नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली।। २३।।

जिस कुम्भकामला वाले को वमन होता है, अरुचि रहती है, जी मचलाता है, ज्वर होता है, बिना परिश्रम के थकता है, श्वास, कास आता है और पतला दस्त आता है, इतने लक्षण होते हैं, वह मृतक ही हो जाता है।। २३।।

हलीमक के लक्षण

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः।
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ।। २४।।
स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च सादस्तृष्णाऽरुचिर्भ्रमः।
हलीमकन्तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः।। २५।।

इति पाण्डुरोगनिदानमष्टमोऽध्यायः।। ८।।

जब पाण्डुरोगी का रङ्ग हरा, नीला या पीला हो जाए, बल और उत्साह जाते रहें, तन्द्रा आए, अग्नि मन्द हो जाए, कुछ थोड़ा हल्का ज्वर बना रहे, स्त्री के सङ्ग करने की इच्छा न रहे, शरीर टूटा करे, ग्लानि बनी रहे, प्यास अधिक लगे, अरुचि और चित्तभ्रम हो, तो इस रोग को हलीमक कहते हैं, यह वात-पित्त से मिलकर होता है।। २४-२५।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे पाण्डुकामलाहलीमकरोगनिदानमष्टमो-ऽध्यायः।। ८।।

अथ रक्तपित्तरोगनिदानम्

रक्तपित्त की संप्राप्ति और लक्षण

घर्मव्यायामशोकाध्ववव्यवायैरतिसेवितैः ।
तीक्ष्णोष्णैः क्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च।। १।।
पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम्।
ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा।। २।।

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते।। ३।।

दोहा— रक्तपित्त को कहत हैं, ग्रंथकार निरधार।
सज्जन! जासों होत है, साध्यासाध्य विचार।। १।।

अत्यन्त घाम (धूप) में चलने-फिरने से, अति दण्ड-कुश्ती आदि खेलने से, अति शोक करने से, बहुत मार्ग चलने से, अति मैथुन करने से, अतितीक्ष्ण, अतिउष्ण, अतिक्षार, अतिनमकीन, अतिखट्टे और अतिकड़वे पदार्थों के सेवन करने से, पित्त अति जलकर अपने गुणों से बहुत शीघ्र रुधिर को बहुत गरम कर देता है। इसलिए रुधिर ऊपर और नीचे दोनों ओर से बहने लगता है। ऊपर की ओर तो नाक, नेत्र, कान और मुख के मार्ग से निकलने लगता है, नीचे लिङ्ग और गुदा के द्वारा निकलता है। जब अत्यन्त कोप करता है तो सब रोमों के द्वार से भी निकलने लगता है। इसी भाँति स्त्री को भी निकलता है। केवल लिङ्ग के स्थान से तथा भग से निकलता है।। १३।।

रक्तपित्त का पूर्वरूप

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः।
लोहगन्धिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति।। ४।।

ग्लानि, शीत पदार्थों की इच्छा, गले से धुआंइंध आना, वमन होना और तपाए हुए लोहे की महक के समान श्वास की गन्ध होना, जब रक्तपित्त होने पर होता है, तब ये लक्षण होते हैं।। ४।।

कफयुक्त रक्तपित्त के लक्षण

सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलञ्च कफान्वितम्।

गाढ़ा, कुछ पीलापन लिए, चिकनाई लिए हुए, बुलबुलाता हुआ रुधिर जिसमें गिरता है, वह कफयुक्त रक्तपित्त कहलाता है।

वातिक रक्तपित्त का लक्षण

श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातिकम्।। ५।।

नीला, कुछ ललाई लिए, फेन सहित, पतला और रूखा रुधिर जिसमें गिरता है, वह वातमिश्र रक्तपित्त कहलाता है।। ५।।

पैत्तिक रक्तपित्त का लक्षण

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम्।
मेचकाङ्गारधूमाभमञ्जनाभं च पैत्तिकम्।। ६।।

जिस रक्तपित्त में गेरु के रंगे वस्त्र के समान रक्त का रङ्ग हो, काला हो अथवा गोमूत्र के रङ्ग का हो, मोर के पक्ष के पंख का हो, अङ्गार-सा हो, धूम के रङ्ग का हो और अञ्जन सा रङ्ग हो, तो उस रक्तपित्त को पित्त सम्बन्धी जाने।। ६।।

द्विदोषज और सान्निपातिक रक्तपित्त का लक्षण

संसृष्टलिङ्गं संसर्गात् त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम्।
ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतानुगम्।। ७।।
द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्तते।

जिसमें दो दोषों के लक्षण मिले हुए पाए जाएँ, उसे द्विदोषज रक्तपित्त जानना चाहिए। जिसमें तीनों दोषों का संसर्ग हो, उसे त्रिदोषक अथवा सान्निपातिक रक्तपित्त जानो। जिसमें मुख-नासिकादि ऊपर के छिद्रों से रक्त बहे, उसे कफ का रक्तपित्त जानना चाहिए। जिसमें गुदा, लिङ्ग, योनि आदि नीचे के छिद्रों से रुधिर निकले, उसे वायु का रक्तपित्त जानो। जिसमें ऊपर, नीचे दोनों भागों से रक्त निकले, उसे कफ-वात दोनों से उत्पन्न रक्तपित्त जानो।। ७।।

साध्य याप्य और असाध्य रक्तपित्त के लक्षण

ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम्।। ८।।
एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम्।
रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम्।। ९।।

ऊपर के भागों में होकर रुधिर बहने वाला रक्तपित्त साध्य होता है, क्योंकि यह कफ मिश्रित होता है। नीचे के भागों से जिसमें रुधिर बहता है, वह याप्य अर्थात् साध्य-असाध्य दोनों होता है। जो नीचे, ऊपर दोनों ओर को बहता है, वह असाध्य ही होता है। जिस रक्तपित्त में बलवान् पुरुष के ऊपर के ही मार्ग से रुधिर निकलता है, वह भी अतिवेग से नहीं और थोड़े ही

दिनों से, वह भी शिशिर-हेमन्तादि सुख के काल में, वह भी उपद्रव रहित हो तो, वह रक्तपित्त साध्य होना है।। ८-९।।

दोषभेद से साध्य याप्य और असाध्य के लक्षण

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते।
यत्त्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगतः।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत्।। १०।।

एक दोष से युक्त रक्तपित्त साध्य होता है। दो दोषों से मिला हुआ याप्य अर्थात् कष्टसाध्य होने से साध्य-असाध्य दोनों होता है। जो तीनों दोषों से उत्पन्न होता है, वह असाध्य ही होता है। मन्दाग्नि वाले पुरुष को जो अतिवेग से रुधिर आता है, वह भी असाध्य होता है। व्याधि से क्षीण देह वाले, अतिवृद्ध और जिसका अन्न छूट गया हो, उसका भी रक्तपित्त असाध्य ही होता है।। १०।।

रक्तपित्त के उपद्रव

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुतादाहमूर्च्छा
भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा।
तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं
भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः।। ११।।

दुर्बलता, श्वास आना, खाँसी आना, ज्वर होना, ओकाई आना, मद चढ़ा रहना, देह का रङ्ग पीला हो जाना, दाह, मूर्च्छा, भोजन करने पर घोर दाह, रुधिर होना, सदा हृदय में विषम पीड़ा, प्यास लगना, मल का पतला होना, शिर का जलना, थूकने में दुर्गन्ध आना, अरुचि, अन्न का न पचना और शरीर की आकृति का बदल जाना, रक्तपित्त के ये उपद्रव होते हैं।।११।।

असाध्य रक्तपित्त के लक्षण

मांसप्रक्षालनाभं कुथितमिव च यत् कर्दमाम्भोनिभं वा
मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम्।

यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति।। १२।।

जिस रक्त-पित्त रोग में रुधिर मांस के धोवन के रङ्ग का हो, या काढ़े के रङ्ग का हो, या कीचड़ मिले हुए जल के रङ्ग का हो, या चर्बी और पीब में मिले हुए रुधिर के रङ्ग का हो, या यकृत (कलेजे) के खण्ड के रङ्ग का हो अथवा पके हुए जामुन के रङ्ग का हो, या काला-नीला हो, या मुर्दे की दुर्गन्ध के समान जिस रुधिर में अति दुर्गन्ध आती हो अथवा जिसमें इन्द्रधनुष के रङ्गों के समान अनेक रङ्ग का रक्त गिरे, ये सब विकार जिसमें हों, या इनमें से एक ही कोई हो तो, वैद्य को चाहिए कि इस रक्तपित्त को असाध्य समझ कर छोड़ दे।। १२।।

अन्य असाध्य लक्षण

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः।
पश्येद्दृश्यं वियच्चापि तच्चासाध्यमसंशयम्।। १३।।
लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः।
लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः।। १४।।

इति रक्तपित्तरोगनिदानं नवमोऽध्यायः।। ९।।

जिस रक्तपित्त रोग से आक्रान्त होकर मनुष्य, सब घट-पट-मठादि दृश्य पदार्थों को, और आकाश को लाल देखे, वह भी रोगी असाध्य ही है, इसमें संशय नहीं है। जो रक्तपित्त का रोगी लाल ही वमन करे, जिस के नेत्र बहुत लाल बने रहते हों, अथवा जिसकी डकार में बड़ी गन्ध ही आए और डकार आने के समय लाल ही दिखाई दे, वह रोगी मर जाता है।। १३-१४।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे रक्तपित्तनिदानं नवमोऽध्यायः।। ९।।

अथ क्षय (राजयक्ष्मा) रोगनिदानम्

क्षय रोग की उत्पत्ति

वेगरोधात्क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्।। १।।

दोहा— क्षयी रोग अतिशय कठिन, है असाध्य सब भाँति।
होत कदाचित् साध्य सो, दसयें कहौं सुभाँति।। १।।

मल, मूत्र और अधोवायु के रोकने से, अति मैथुनादि करने से, अधिक धातुक्षय होने से, साहस करने से, कुसमय पर (कभी सन्ध्या को, कभी तीसरे पहर, कभी रात्रि में) भोजन करने से, इन कारणों से, तीनों वात-पित्त-कफ कोप करते हैं। इसी से राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है।। १।।

क्षयरोग के भेद और संप्राप्ति

क्षयश्शोषो राजयक्ष्मा रोगराडिति कीर्तितः।
राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः।। २।।
तस्मात्तं राजयक्ष्मेति केचिदाहुर्मनीषिणः।
कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु।। ३।।
अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः।। ४।।

क्षय, शोष, राजयक्ष्मा और रोगराज, ये चार यक्ष्मा के नाम हैं। यह रोग राजा चन्द्रमा को हुआ था, इसी से इसे कोई-कोई पण्डित लोग राजयक्ष्मा कहते हैं। जब कफादिक दोष रसों के मार्गों को रोक लेते हैं, रुधिर बहने वाली नसों से यथावस्थित रक्त सब कहीं नहीं जाता, केवल हृदय में ही रहता है, तब जलकर वह रुधिर अनेक रूप से मुख के द्वारा गिरता है। अथवा अति मैथुन करने से जब बीज क्षीण हो जाता है, उससे यह रोग होता है। क्योंकि जब वीर्य क्षीण हो जाता है तब सब (अन्य छः) धातु भी नष्ट हो जाते हैं। इससे मनुष्य सूख जाता है।। २-४।।

क्षयरोग का पूर्वरूप

श्वासाङ्गसादकफसंस्रवतालुशोष-
वम्यग्निसादमदपीनसकासहिक्काः।
शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः
शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः।। ५।।
स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठा
गृधास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च।
तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्ये-
च्छुष्कांस्तरून् पवनधूमदवार्दितांश्च।। ६।।

श्वास अधिक आना, अङ्गों का ढीला होना, मुख से अधिक थूक गिरना, तालु सूखना, वमन करना, अग्नि की मन्दता, नशा-सा चढ़ा रहना, नाक अधिक बहना या पीनसरोग हो जाना, खाँसी आना और हिचकी आना, शोष रोग होने के प्रथम ये दोष होते हैं। उस पुरुष के नेत्र उजले हो जाते हैं। उसे मांस खाने और मैथुन करने की इच्छा अधिक होती है। वह पुरुष स्वप्न में देखता है कि मैं कौआ, तोता, साही, मोर, गीध, बानर, गिरगिट इनके ऊपर चढ़ा हूँ। वह बिना जल की नदियों को देखता है। सूखे वृक्षों को देखता या वायु, धुआँ और दावानल से पीड़ित वृक्षों को देखता है।। ५-६।।

राजयक्ष्मा के लक्षण

अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्म[1]णः।। ७।।
स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं सङ्कोचश्चांसपार्श्वयोः।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः।। ८।।
शिरसः परिपूर्णत्वमभुक्तिश्छर्दिरेव च।
कासः कण्ठस्वरध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः।। ९।।

1. सुश्रुतेः— भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम्।
स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राजयक्ष्मणि।।

एकादशभिरेतैर्वा षड्भिर्वापि समन्वितम्।
कासातीसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ।। १०।।
त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः।
जह्याच्छोषान्वितं जन्तुमिच्छन् सुविपुलं यशः।। ११।।

कन्धा और पसलियों का जलना, हाथ-पैरों का अधिक जलना और सब अङ्गों में सदा ज्वर बना रहना, ये तीन लक्षण राजयक्ष्मा के मुख्य हैं। वायु के दोष से स्वर बदल जाता है। कन्धा और पसलियों में शूल उठता है, वे खिंची-सी जान पड़ती हैं। पित्त के दोष से सदा ज्वर बना रहता है, अङ्गों में दाह होता है, अतीसार होता है, मुख से रक्त गिरता है, कफ के कोप से शिर भारी रहता है, अरुचि, खाँसी, और स्वरभेद होता है, इन ग्यारहों से व छः से युक्त शोषरोग होता है। खाँसी आना, अतीसार होना, पसलियों में पीड़ा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर इन छः से, या ज्वर, खाँसी और रक्त गिरना, इन तीनों से युक्त यह रोग रहता है। जो वैद्य अपना बहुत यश चाहता हो, उसे चाहिए कि राजयक्ष्मा वाले रोगी को छोड़ दे, औषधि न करे।। ७-११।।

साध्यासाध्यविचार

सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वापि लिङ्गैर्मांसबलक्षये।
युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा।। १२।।

जब ऊपर के लिखे हुए ग्यारह दोषों से युक्त हो, या छः से युक्त हो, या तीन ही से युक्त हो, परन्तु बल-मांसरहित हो तो, यह रोग असाध्य है। यदि सब दोषों से युक्त है, परन्तु बल-मांसयुक्त है, तो औषधि करना चाहिए।। १२।।

असाध्य क्षयरोग के लक्षण

महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम्।
शूनमुष्कोदरञ्चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत्।। १३।।

जो रोगी बहुत भोजन करने पर भी प्रतिदिन दुर्बल होता जाता हो, अतीसार से पीड़ित हो, और जिसके पेट तथा पोतों में शोथ आ गया हो, ऐसे यक्ष्मा वाले को छोड़ देना चाहिए। यह असाध्य होता है।। १३।।

साध्य क्षयरोग के लक्षण

ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम्।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्താग्निमकृशं नरम्।। १४।।

जो क्षयरोग वाला ज्वर से अतिपीड़ित न हो, बलवान् हो, औषधि को सह सकता हो, इन्द्रियों की शक्ति से युक्त हो, अग्नि प्रदीप्त हो, और दुर्बल न हो गया हो, ऐसे रोगी को औषधि देना चाहिए।। १४।।

असाध्य के अन्य लक्षण

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।
कृच्छ्रेण बहुमेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम्।। १५।।

जिस रोगी के नेत्र बहुत उजले हो गए हों, अन्न में अरुचि हो गई हो, ऊधीश्वासें आती हों और बड़े कष्ट से बहुत मूत्र त्याग करता हो, ऐसे रोगी को यक्ष्मा मार ही डालता है।। १५।।

क्षयरोगोत्पत्ति की निरुक्ति

व्यवायशोकवार्द्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषितान्।
व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणैः शृणु।। १६।।

केवल अति मैथुन करने से या धातु क्षीण हो जाने से ही यह शोषरोग नहीं होता किन्तु अन्य कारणों से भी होता है। अति मैथुन करने से, शोक से, वृद्धता से, दण्ड आदि अधिक करने से, बहुत मार्ग चलने से, घाव से, या कलेजे के घाव से सूखे हुए शोषरोगी के लक्षण अलग-अलग, सुनो।।१६।।

व्यवायशोषी के लक्षण

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः।
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः।। १७।।

अति मैथुन करने से जो पुरुष सूख जाता है, वह धातुक्षय के उपद्रवों से युक्त होता है। जैसे-जैसे उसका शरीर पीला होता जाता है, लिङ्ग तथा अण्डों में पीड़ा होती है, मैथुन करने की शक्ति जाती रहती है, धातु बहुत कम गिरता है, इत्यादि दोष होते हैं।। १७।।

शोकशोषी के लक्षण

प्रध्यानशीलस्त्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः।
विना   शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुपलक्षितः।। १८।।

शोक से शुष्क पुरुष बहुत चिन्ता करता रहता है। हाथ-पैर आदि अङ्ग ढीले पड़ जाते हैं। इस रोगी को धातुक्षय तो नहीं होता, परन्तु अन्य सब उसी के लक्षण इसको भी होते हैं।। १८।।

जराशोषी के लक्षण

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः।
कम्पनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्ररुतस्वरः।। १९।।
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचिपीडितः।
सम्प्रस्नुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः।। २०।।

वृद्धता के कारण पुरुष दुर्बल हो जाता है। क्योंकि उसका वीर्य, बुद्धि, बल और इन्द्रिय हत होकर मन्द हो जाते हैं, शरीर काँपने लगता है, अन्न में अरुचि हो जाती है, फूटे हुए काँसे के पात्र के शब्द के समान उसका स्वर हो जाता है, थूकने में कफ नहीं गिरता, देह भारी लगता है, अति अरुचि से पीड़ित रहता है, मुख, नेत्र और नाक बहा करते हैं, मल कड़ा हो जाता है और शरीर में रुखाई के कारण शोभा नहीं रहती।। १९-२०।।

अध्वशोषी के लक्षण

अध्वप्रशोषी स्त्रस्ताङ्गः संभ्रष्टपरुषच्छविः।
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कस्वान्तगलाननः।। २१।।

मार्ग चलने से सूखे हुए पुरुष के हाथ, पैर आदि अङ्ग ढीले पड़ जाते हैं, शरीर की शोभा कड़ी और भ्रष्ट हो जाती है, सब अङ्ग सोए से जान पड़ते हैं, हृदय, गला और मुख सदा सूखे बने रहते हैं।। २१।।

व्यायामशोषी के लक्षण

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः।
लिङ्गैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना।। २२।।

जो लक्षण अधिक मार्ग चलने से सूखे हुए के कहे हैं, वे ही अधिक परिश्रम से सूखे हुए के भी होते हैं और छाती में घाव लगने से सूखे हुए पुरुष के भी लक्षण युक्त रहते हैं, परन्तु इस रोगी की छाती में घाव नहीं होता है।।२२।।

व्रणशोषी के लक्षण

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात्।
व्रणितस्य भवेच्छोषो यस्यासाध्यतमो मतः।। २३।।

जो पुरुष रक्तक्षय होने से या अन्य पीड़ाओं से, तथा कम भोजन पाने के कारण, घाव हो जाने से सूख जाते हैं, वे अत्यन्त असाध्य हो जाते हैं।। २३।।

उरःक्षत की संप्राप्ति

धनुराकर्षतो नित्यं भारमुद्वहतो गुरुम्।
युध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः।। २४।।
वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यन्निगृह्णतः।
शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान्।। २५।।
अधीयानस्य वात्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम्।
महानदीं वा तरतो हयैर्वा सह धावतः।। २६।।
सहसोत्पततो दूरं तूर्णं चातिप्रनृत्यतः।
तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा।। २७।।
ताडिते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते।
स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः।। २८।।

बड़े ज़ोर से धनुष खींचने से, बहुत गुरु (भारी) बोझा उठाने से, अपने से अधिक बलियों से कुश्ती आदि लड़ने से, बड़े ऊँचे किसी स्थान पर से गिर पड़ने से, दौड़ते हुए बैल, घोड़े, बकरे और ऊँट आदि को पकड़ने से, बड़ी शिला, भारी काष्ठ, बड़े पत्थर के फैंकने से, शत्रु को झपटकर मारने से, बड़े ज़ोर से चिल्लाकर पढ़ने से, बहुत दूर तक दौड़ने से, बड़ी नदियों को तैरकर पार उतरने से, घोड़ों के साथ दौड़ने से, एकाएकी बड़े ऊँचे से कूदने से, बहुत जल्दी-जल्दी नाचने से, कुश्ती आदि अन्य क्रूर कर्मों के

करने से, अत्यन्त थक जाने से, छाती में चोट लगने से, स्त्रियों से अत्यन्त प्रसङ्ग (रति) करने से, रूखा अन्न खाने से, बहुत खटाई खाने से, लघु भोजन करने से और अनुमान कर खाने से, पुरुष की छाती में बलवान् घावयुक्त व्याधि हो जाती है।। २४-२८।।

उर:क्षत का पूर्वरूप और लक्षण

उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विभज्यते।
प्रपीड्येते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते।। २९।
क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते।
ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधस्तथा।। ३०।।
दुष्टः श्यावोऽथ दुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहुः।
कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफस्त्रावः प्रवर्तते।। ३१।।
स क्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात्।
अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम्।। ३२।।

ऐसे पुरुष की छाती अन्यन्त पीड़ित होने लगती है, या फटती-सी जान पड़ती है, अथवा फटकर दो टुकड़े होती हुई जान पड़ती है, फिर दोनों ओर की पसुलियाँ पिराने लगती हैं, अङ्ग सूख जाता है और काँपने लगता है। क्रम से वीर्य, बल, शरीर का रङ्ग, रुचि और अग्नि हीन हो जाते हैं, ज्वर होने लगता है। व्यथा होती है, मन भी मलिन हो जाता है, मल पतला तथा अति मन्दाग्नि हो जाती है। जब वह खाँसता है तो दुष्ट, काला, दुर्गन्धयुक्त, पीला, गाँठ के सहित बहुत-सा कफ गिरने लगता है। यह रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है। ऐसे ही वीर्य और पराक्रम के क्षय से भी छाती का रोग होता है। इस उर:क्षत (छाती के घाव वाले) रोग का अप्रकट लक्षण इसके पूर्वरूप के वर्णन में कह चुके हैं।। २९-३२।।

उर:क्षत के विशेष लक्षण

उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते।
क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटीग्रहः।। ३३।।

इस क्षत से छाती में पीड़ा होती है, रुधिर ही वमन होता है, खाँसी में

काला, पीला आदि रुधिर गिरता है, क्षीण होकर रक्त मूत्र रूप में निकलता है, पसलियों में, कटि में और पीठ में जकड़-सी हो जाती है।।३३।।

उरःक्षत के साध्य याप्य और असाध्य लक्षण

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः।
परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गं विवर्जयेत्।। ३४।।

इति क्षयराजयक्ष्मरोगनिदानं दशमोऽध्यायः।। १०।।

जिस पुरुष में इन लक्षणों में से थोड़े से लक्षण हों, उसके उदर का अग्नि प्रदीप्त बना हो, मन्द न हुआ हो, वह बलवान् हो और रोग भी थोड़े दिनों का हो तो साध्य समझना चाहिए। जो लक्षण कम हों पर वर्ष-दिन से अधिक का रोग हो तो याप्य अर्थात् कष्टसाध्य जाने, जिसमें सब पूरे लक्षण हों, उसे तो वैद्य को चाहिए कि छोड़ दे। वह महा असाध्य है।। ३४।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे क्षयराजयक्ष्मनिदानं दशमोऽध्यायः।। १०।।

अथ कासरोगनिदानम्

कास का संप्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च।
विमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव।। १।।
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टस्स भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः।
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः।। २।।
पञ्च कासास्स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः।
क्षयायोपेक्षितास्सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम्।। ३।।

दोहा— कास-श्वास को कहत हैं, ग्यारह में सुविचार।
साध्यासाध्य निदान युत, सज्जन सुनु निर्धार।। १।।

नाक-मुख में धुआँ और धूलि के पैठने से, बहुत व्यायाम करने से, रूखा अन्न खाने से, बहुत जल्दी भोजन करने से और मल-मूत्र का वेग रोगने

से, छींक रोकने से, हृदय में रहने वाला प्राण वायु दुष्ट होकर कण्ठ में रहने वाले उदान वायु के संग मिल दुष्ट हो जाता है। फिर कफ, पित्त के सङ्ग मुख से एकाएकी बाहर निकलने लगता है। तब फूटे हुए काँसे के पात्र के शब्द के समान शब्द होने लगता है और दोष सहित मुख से निकलने लगता है। इसी रोग को पण्डित लोग कास, खाँसी कहते हैं, वात, पित्त, कफ, क्षत और क्षय से उत्पन्न होने के कारण, खाँसी पाँच प्रकार की होती है। यदि शीघ्र ही इसके मिटाने का औषध न किया जाए तो यह रोग रोगी को मार ही डालता है। इसमें वात से पित्त प्रबल होता है, पित्त से कफ, कफ से क्षत, और क्षत से क्षय प्रबल होता है।। १३।।

कास का पूर्वरूप

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता।
कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते।। ४।।

कासरोग का पूर्वरूप यह है कि गला और मुख में धान या गेहूँ के सींकुर के समान काँटे से गड़ने लगते हैं, गले में खजुली होने लगती है, इससे गला सहराने लगता है और अन्न आदि भोजन के पदार्थ भीतर नहीं जाने पाते।। ४।।

वात की खाँसी के लक्षण

हृच्छङ्खमूर्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः।
प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव।। ५।।

हृदय, कनपटी, शिर, पेट और पसुली में पीड़ा होने लगती है, मुख सूखने लगता है, बल-स्वर और पराक्रम क्षीण हो जाते हैं तथा सूखी खाँसी आती है, खखार कुछ भी नहीं आता।। ५।।

पित्त की खाँसी के लक्षण

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ।
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः।। ६।।

पित्त की खाँसी में छाती जलती रहती है, ज्वर होता है, मुख सूख जाता है, इससे पीड़ित पुरुष का मुख तिक्त हो जाता है। वह प्यास से अति पीड़ित

होता है और कड़वे पित्तों को वमन करता है। रोगी पीला हो जाता है और उसके सब अङ्ग जलते से रहते हैं।। ६।।

कफ की खाँसी के लक्षण

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदच्छिरोरुजार्तः कफपूर्णदेहः।
अभ्यक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन।। ७।।

कफज कासरोग में, मुख में सर्वत्र कफ लपटा रहता है, तार-सा बँध जाता है, इससे बड़ी ग्लानि होती है, शिर में पीड़ा होती है, कफ से देह पूर्ण हो जाती है, अरुचि होती है, बड़ी गुरुता के साथ खजुली उठती है और जब खाँसता है तब बहुत गाढ़ा कफ गिरता है।। ७।।

क्षतजकास के लक्षण

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः ।
रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत्।। ८।।
स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत् सशोणितम्।
कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा।। ९।।
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना।
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना।। १०।।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ।
पारावत इवाकूजन् कासवेगात्क्षतोद्भवात्।। ११।।

अति मैथुन करने से, गुरु भार उठाने से, बहुत मार्ग चलने से, बलवान् से कुश्ती लड़ने से, हाथी घोड़े आदि के सङ्ग विग्रह करने या दौड़ने से, रूक्ष पुरुष का हृदय फटने से पजन कुपित होकर खाँसी को उत्पन्न करता है। इस क्षतज खाँसी वाला पुरुष प्रथम तो सूखा खाँसता है, फिर रक्तसहित थूकता है, गले में अत्यन्त पीड़ा होती है मानो उसकी छाती फटी जाती है या छाती में अतितीक्ष्ण सुइयों के कोंचने की-सी पीड़ा होने लगती है। इससे छाती में छूआ नहीं जाता मानो कोई फाड़े ही डालता है। ऐसी पीड़ा से पीड़ित हो जाता है। सब जोड़ों में पीड़ा होती है, ज्वर होता है, ऊपर को श्वास चढ़ती है, प्यास लगती है, बोल बदलकर खरखराने लगता है और खाँसी के वेग

के मारे कबूतर के समान 'गूं-गूं' करने लगता है। ये सब लक्षण क्षतज खाँसी के हैं।। ८-११।।

क्षय की खाँसी के लक्षण

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात्　।
घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः।
कुपिताः　क्षयजं　कासं　कुर्युर्देहक्षयप्रदम्।। १२।।
स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्
　　प्राणक्षयं चोपलभेत कासी।
शुष्कं विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु
　　प्रक्षीणमांसो रुधिरञ्च पूयम्।।
तं　सर्वलिङ्गं　भृशदुश्चिकित्स्यं।
चिकित्सितज्ञाः　क्षयजं　वदन्ति।। १३।।

कुपथ्य और विषम (कभी बहुत कभी थोड़ा) भोजन करने से, अतिमैथुन करने से, मल-मूत्र के रोकने से और घृणित (घिनौनी) वस्तुओं का शोच करने से, अग्नि के मन्द हो जाने पर वात-पित्त-कफ तीनों कुपित होकर क्षय की खाँसी को उत्पन्न करते हैं। खाँसी शरीर को नाश करने वाली होती है। खाँसी वाला रोगी अङ्गों के सूजने से, शूल उठने सें, ज्वर और दाह होने से, चित्तभ्रम आदि से व्याप्त होता है, जिनसे प्राणों का ही नाश होता है। वह सूखा थूकता हैं, अति दुर्बल हो जाता है, मांस, रुधिर और पीब सब क्षीण हो जाते हैं। ऐसे तीनों दोषों के चिह्नों से युक्त, अत्यन्त कष्ट से चिकित्सा करने योग्य रोगी को, वैद्य लोग क्षय की खाँसी से युक्त कहते हैं।। १२-१४।।

साध्यासाध्य के लक्षण

इत्येष　क्षयजः　कासः　क्षीणानां　देहनाशनः।
साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः।। १४।।
नवौ　कदाचित्　सिध्येतामपि　पादगुणान्वितौ।
स्थविराणां　जराकासः　सर्वो　याप्यः　प्रकीर्तितः।।

त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान् पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत्।। १५।।
पूयाभमरुणं श्यावं हरितन्नीलपीतकम्।
निष्ठीवेच्छ्वासकासार्तो न जीवति हतस्वरः।। १६।।

इति कासरोगनिदानम् एकादशोऽध्यायः।। ११।।

यह क्षय रोग से उत्पन्न खाँसी, क्षीण पुरुषों का तो नाश ही कर देती है किन्तु बलवानों के लिए साध्य-असाध्य भी होती है। क्षतज की खाँसी वाले का भी यही हाल होता है। यदि दोनों कासों के रोगी युवावस्था के हों, वैद्य अपनी विद्या में अति चतुर हो और सब रसादि उसके पास शुद्ध विद्यमान हों, तो कदाचित् इन दोनों खाँसियों के रोगी साध्य भी हो जाते हैं, अन्यथा असाध्य तो होते ही हैं। वृद्ध लोगों के लिए सब क्षय की खाँसी असाध्य ही होती है। अन्य सब प्रकार की खाँसियाँ वृद्ध के लिए याप्य (साध्य-असाध्य) दोनों हो सकती हैं। प्रथम की तीन वात, पित्त, कफ वाली खाँसियाँ साध्य होती हैं। औषध से अच्छी हो जाती हैं। इसलिए उनको औषधियों से दूर करना चाहिए। जो खाँसी वाला पीब के रङ्ग का लाल, काला, हरा, पीला या नीला थूकता है और जिसका स्वर बदल कर खरखराने लगता है, वह किसी प्रकार नहीं जी सकता है।। १५-१७।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे कासनिदानमेकादशोऽध्यायः।। ११।।

अथ हिक्कारोगनिदानम्

हिक्का की संप्राप्ति

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः।
शीतपानाशनास्नानरजोधूमातपानिलैः ।। १।।
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते।। २।।

सोरठा— हिचकी के सब भेद, द्वादश में वर्णन करत।
साध्य असाध्य विचार, सज्जन हिय महँ रखहु तुम।।

दाह करने वाले, भारी, पेट फुलाने वाले, रूखे, मांस और भैंस के दुग्ध

आदि गरिष्ठ वस्तु खाने से, बहुत ठण्डा पानी पीने से, ठंडा भोजन करने से, बहुत शीतल जल में स्नान करने से, नाक-मुख में धूलि और धुआँ भर जाने से, प्रचण्ड पवन लगने से, दण्ड आदि अति परिश्रम करने से, अधिक भार उठाने से, बहुत मार्ग चलने से, मल-मूत्र रोकने से और उपवास करने से, मनुष्यों को हिचकी, दमा और खाँसी, ये तीनों रोग उत्पन्न होते हैं।। १-२।।

हिक्का का स्वरूप और निरुक्ति

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो
यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन्।
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यत-
स्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः।। ३।।

प्राणवायु बार-बार शब्द सहित ऊपर की ओर चलता है। कलेजा, प्लीहा और आँतों में धक्के देता हुआ बाहर निकलता है और अधिक शब्द युक्त होकर यह पवन प्राणों को हर लेता है। इससे पण्डित लोग उसे हिक्का अर्थात् हिचकी कहते हैं।।३।।

हिक्का के पाँच भेद

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा।
वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोऽति हि।। ४।।

कफ से मिश्रित वायु अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महती इन पाँच प्रकार की हिचकियों को उत्पन्न करता है।। ४।।

हिक्का के पूर्वरूप

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्च वदनस्य कषायता।
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च।। ५।।

कण्ठ और छाती का जकड़ना, मुख में कसैलापन और कोंख का फूला रहना, ये सब हिचकी आने के पूर्वरूप हैं।। ५।।

अन्नजा हिचकी के लक्षण

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः।
हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक्।। ६।।

अति भोजन करने और पानी पीने से, एकाएकी पीड़ित होकर पवन ऊपर चलकर अव्यक्त शब्द 'हिक्' कराता है। उसे वैद्य अन्नजा हिचकी जाने।। ६।।

यमला हिचकी के लक्षण

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्तते।
कम्पयेच्च शिरोग्रीवां यमलान्तां विनिर्दिशेत्।। ७।।

जिस हिचकी में बड़ी देर पर, एक ही समय दो-दो बार हिचकी आए तथा शिर और गले को कँपाए, उसको यमला हिचकी कहते हैं।। ७।।

क्षुद्रा हिचकी के लक्षण

प्रकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैस्समभिवर्तते।
क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधावति।। ८।।

जो हिचकी बहुत देर में आए, परन्तु धीरे-धीरे ही आए, उसे क्षुद्रा हिचकी कहते हैं। यह दोनों हँसुलियों की जड़ से गले तक दौड़ती रहती है।। ८।।

गम्भीरा हिचकी के लक्षण

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी।
अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता।। ९।।

जो हिचकी बड़ा घोर नाद कर नाभि से उत्पन्न होती है और जिसमें अनेक उपद्रव होते हैं, उसे गम्भीरा हिचकी कहते हैं।। ९।।

महती हिचकी के लक्षण

मर्माण्युत्पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते।।
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रविकम्पिनी।। १०।।

जो हिचकी नाभि आदि सुकुमार अङ्गों को पीड़ित करती हुई बार-बार आती है और सब अङ्गों को कँपा देती है, उसे महती हिचकी कहते हैं।। १०।।

असाध्य हिक्का के लक्षण

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो
दृष्टिश्चोर्ध्वं ताम्यते यस्य नित्यम्।

क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं
तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ।। ११।।
अतिसञ्चितदोषस्य भक्तद्वेषकरस्य च।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः।। १२।।
आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम्।

हिचकी आने के समय जिसका शरीर तन उठे, जिसकी दृष्टि नित्य ऊपर को तनी रहे, जो क्षीण हो गया हो और अन्नादिकों में अरुचि हो गई हो और बार-बार हिचकी आती हो, इन दोनों हिचकी वालों को तथा गम्भीरा और महती इन दोनों हिचकी वालों को वैद्य को चाहिए कि छोड़ दे क्योंकि ये चारों असाध्य होती हैं। जिस रोगी को बहुत से दोषों ने घेरा हो या जिसे अन्न में अत्यन्त अरुचि हो गई हो, व्याधियों से देह अति क्षीण हो गया हो, अति वृद्ध हो, अथवा अत्यन्त मैथुन करता हो, ऐसे मनुष्यों को जब कभी एकाएकी हिचकी आती है, तो तत्काल ही प्राण हर लेती है।। ११-१२।।

यमिका के असाध्य-साध्य लक्षण

यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता।। १३।।
अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः।
तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा।। १४।।

इति हिक्कारोगनिदानं द्वादशोऽध्यायः।। १२।।

अनर्थ बकना, अङ्गों में पीड़ा, अधिक प्यास लगना और मोंह होना जब यमिका हिचकी इन लक्षणों से युक्त होती है, तो असाध्य हो जाती है। जो पुरुष क्षीण न हो, प्रसन्नचित्त हो, धातु और इन्द्रियों से प्रबल हो, ऐसे मनुष्य की यमिका हिचकी साध्य होती है, इसके विपरीत असाध्य होती है।।१३-१४।।

इतिश्रीमाधवीये भाषानुवादे हिक्कानिदानं द्वादशोऽध्यायः।। १२।।

अथ श्वासरोगनिदानम्

श्वास के भेद

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैश्च पञ्चधा।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः।। १।।

दोहा— श्वासरोग को करत कवि, तेरह में सुनिदान।
दमा नाम याको अवर, पण्डित सुनु धरि ध्यान।।

महा, ऊर्ध्व, छिन्न, तमक और क्षुद्र, भेदों से महारोग श्वास पाँच प्रकार का होता है। वास्तव में यह एक ही रोग है परन्तु पाँच नाम के कारण, पाँच प्रकार का होता है।। १।।

श्वास के पूर्वरूप

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च।
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शङ्खनिस्तोद एव च।। २।।

हृदय में पीड़ा, शूल उठना, पेट फूलना, उदर तना-सा हो जाना, मुख का स्वाद बिगड़ जाना और कनपटियों में चिलक उठना, ये सब श्वास रोग के पूर्व रूप हैं।। २।।

श्वास की संप्राप्ति

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति सः।। ३।।

जब पवन कफ युक्त हो, अन्न-जलादि जाने के मार्गों को रोककर और आप भी रुककर, चारों ओर चलने लगता है, तब ऊपर के श्वासों को चलाता है। उसी को श्वास रोग या दमा कहते हैं।। ३।।

महाश्वास के लक्षण

उद्धूयमानवतो यः शब्दवद्दुःखितो नरः।
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम्।। ४।।

प्रणष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः।
विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक्।। ५।।
दीर्घं प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम्।
महाश्वासोपसृष्टश्च शीघ्रमेव विपद्यते।। ६।।

जिस मनुष्य का वायु ऊपर की ओर अधिक खिंचा-सा रहे, खाँसने में बहुत दुःखित हो, बँधे हुए मतवाले बैल के समान सदा ऊँचे श्वास लेता रहे, शास्त्रज्ञान और साधारणज्ञान भी नष्ट हो गया हो, सदा उसके नेत्र चञ्चल बने रहें, मुख और नेत्र सदा खुले चढ़े से रहें, मल-मूत्र बँधा और रुकावट के साथ हो, अच्छे प्रकार बोल न सके, मन में सदा ग्लानि बनी रहे और उसके श्वासों की घुर्घुराहट दूर से सुनाई दे, तो इस रोग को महाश्वास कहते हैं। महाश्वास रोग वाला पुरुष शीघ्र ही मर जाता है।। ४-६।।

ऊर्ध्वश्वास के लक्षण

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः।। ७।।
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः।
प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः।। ८।।
ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधःश्वासो निरुध्यते।।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून्।। ९।।

जो रोगी ऊपर को तो बड़े ज़ोर से श्वास खींचता हो पर नीचे को फिर न लौटा सकता हो, मुख और नसों के मुख कफ से घिरे रहते हों, कुपित वायु से पीड़ित रहता हो, बहुधा ऊपर ही की ओर दृष्टि किए रहे, चञ्चल नेत्र होने से इधर-उधर घबराया-सा देखा करे, पीड़ा से पीड़ित हो, मोहित रहे, मुख सूखता रहे और किसी वस्तु में उसका चित्त न लगे, जिसमें ये लक्षण होते हैं, उसे ऊर्ध्वश्वास कहते हैं। जब ऊर्ध्वश्वास कोप करता है तो नीचे का श्वास रुक जाता है, इससे रोगी मोहित होता है और तवाँने लगता है। ऊर्ध्वश्वास उस रोगी के प्राणों को हर लेता है।। ७-९।।

छिन्नश्वास के लक्षण

यश्च श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः।
न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः।। १०।।
आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः।। ११।।
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः।
छिन्नश्वासेन वै क्षीणः स शीघ्रं विजहात्यसून्।। १२।।

जो प्राणी रह-रह कर श्वास लेता हो, सब प्राणों से पीड़ित हो, अथवा केसी कष्ट से पीड़ित होने पर श्वास न ले सकता हो, हृदय में ऐसी पीड़ा हो मानों कोई चीरे ही डालता है, पेट फूला रहे, पसीना अधिक हो, मूर्च्छा आती रहे, पेडू जला-सा विदित हो, नेत्र सजल हो घूमते रहें, अति क्षीण हो जाएं, श्वास लेते-लेते एक नेत्र बहुत लाल हो जाए, चित्त उद्विग्न बना रहे, मुख सूखा ही बना रहे, देह का रङ्ग बिरङ्ग हो जाए तथा अनर्थ बकता रहे। इस छिन्नश्वास रोग से जो पुरुष विच्छिन्न हो जाता है, वह रोगी शीघ्र ही प्राणों को छोड़ देता है।।१०-१२।।

तमकश्वास के लक्षण

प्रतिलोमं यदा वायुः स्त्रोतांसि प्रतिपद्यते।
ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च।। १३।।
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकन्तथा।
अतीव तीव्रवेगञ्च श्वासम्प्राणप्रपीडकम्।। १४।।
प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुध्यते।
प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः।। १५।।
श्लेष्मण्यमुच्यमाने तु भृशम्भवति दुःखितः।
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम्।। १६।।
तस्योर्ध्वं श्वसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम्।
न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः।। १७।।

पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः।
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति।। १८।।
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान्।
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते।। १९।।
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते।
स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः।। २०।।

जब वायु ग्रीवा तथा शिर को जकड़ कर और कफ ऊपर उभार कर नसों में उलटा चढ़ता है, तब कफ रुककर पीनस रोग करता है। इससे गला घुर्घुराने लगता है और अत्यन्त पीड़ा करने वाला अति वेगवान् श्वास चलने लगता है। रोगी वेग से तवाँने लगता है, भय से व्याकुल हो जाता है, श्वास को रुक-रुक कर लेने लगता है, मोह होता है, बीच-बीच में खाँसी भी आने लगती है। ऐसा बार-बार होता रहता है। खाँसी आने से कफ गिरते समय बड़ा दुःख पाता है, परन्तु कफ के गिर जाने पर एक-दो घड़ी फिर सुख पाता है। उस रोगी का श्वास ऊपर ही को चलता है, गला खरखराया करता है, वह बड़े कष्ट से बोल सकता है, निद्रा उसको नहीं आती, श्वासों से पीड़ित यों ही पड़ा रहता है। जब वह लेटता है तो पवन पसलियों को जकड़ देता है, बैठने पर कुछ सुख पाता है, उष्ण वस्तु की चाह सदा रखता है। नेत्र ऊपर को तने रहते हैं, शिर की पीड़ा से अत्यन्त पीड़ित रहता है, मुख सूखा करता है, बार-बार श्वास आते हैं, बार-बार उसका देह हिलता रहता है। यह श्वास रोग वर्षा काल, शीतकाल या ठंडी वस्तुओं के खाने से, पुरवाई हवा लगने से बढ़ता है। यह तमक नामक श्वास यदि थोड़े दिनों का हो, तो साध्य होता है, पर यदि बहुत दिनों का हो जाता है तो याप्य (साध्य-असाध्य दोनों) होता है।। १३-२०।।

प्रतमकश्वास के लक्षण

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकन्तु तम्।
उदावर्तरजोऽजीर्णक्लिन्नकायनिरोधतः ।। २१।।
तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति।
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकन्तु तम्।। २२।।

तमकश्वास वाले को जब ज्वर और मूर्च्छा आने लगे तो उसी का प्रतमक नाम हो जाता है। प्रतमक के और लक्षण तथा कारण वही होते हैं। ऊपर श्वास चढ़ने से, धूलि नाक में जाने से, अजीर्ण होने से, बहुत भीगने से और मल-मूत्र रोकने से, यह रोग बहुत बढ़ता है। यह श्वास क्रोधादि तमोगुण युक्त होने से अधिक बढ़ता है। शीत पदार्थों से शान्त रहता है। रोगी मानों तमोगुण में डूबा ही करता है। जब ये लक्षण हों तो उसे प्रतमक नामक श्वास जानो।।२१-२२।।

क्षुद्रनामक श्वास के लक्षण

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वात उदीरयन्।
क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः।। २३।।
हिनस्ति न स गात्राणि न दुःखो यथेतरे।
न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचिताङ्गतिम्।। २४।।
नेन्द्रियाणां व्यथां नापि काञ्चिदापादयेद्रुजम्।
स साध्य उक्तो बलिनस्सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः।। २५।।

रूखे पदार्थ खाने और अधिक परिश्रम करने से, छोटा-सा पवन ऊपर की ओर उठता है। उसे ही क्षुद्रश्वास कहते हैं। यह अतिदुःख से अङ्गों को पीड़ा नहीं देता है, न अङ्गों को तोड़ ही डालता है, न इसमें वैसा दुःख ही होता है, जैसा कि औरों में होता है, और भोजन-पानादि के मार्गों को भी यह नहीं रोकता है, इन्द्रियों को व्यथित नहीं करता, न कुछ पीड़ा ही उत्पन्न करता है। यह यदि बली पुरुष के हो तो अवश्य ही साध्य हो, क्योंकि इसके सब लक्षण साध्य ही के होते हैं।। २३-१५।।

श्वासों का साध्यासाध्यत्व

क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते।
त्रयः श्वासा न सिद्ध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च।। २६।।
कामम्प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा।
यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु वै।। २७।।

इति श्वासरोगनिदानं त्रयोदशोऽध्यायः।। १३।।

इन पाँचों में से क्षुद्र नामक श्वास अतिसाध्य होता है, और तमक कष्ट-साध्य होता है। बाकी तीन कभी सिद्ध नहीं होते हैं। असाध्य ही होते हैं। यदि दुर्बल पुरुष को होता है तो तमक भी असाध्य ही हो जाता है। श्वास और हिचकी ये दोनों रोग जितना शीघ्र प्राण हर लेते हैं, इतनी जल्दी कोई भी रोग प्राणों को नहीं हरता है।। २६-२७।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे श्वासनिदानं त्रयोदशोऽध्यायः।। १३।।

अथ स्वरभेदरोगनिदानम्

स्वरभेद के संप्राप्तिपूर्वक लक्षण

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघात-
सन्दूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु।
स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां
हन्युस्स्वरम्भवति चापि हि षड्विधः सः।। १।।

रोला— स्वरभेद को सुनिदान, चौदहवें किया है बयान।
जाने जो वाको कोउ, शुभ वैद्य होवै सोउ।। १।।

बड़े ऊँचे शब्द के बोलने से, विष खाने से, बड़े ज़ोर से वेदादि पढ़ने से, और कण्ठ में लाठी आदि की चोट लग जाने से, वात, पित्त और कफ कुपित होकर, स्वर निकालने वाली चारों नसों में बैठकर स्वर को नष्ट कर देते हैं। स्वरभेद वात, पित्त, कफ सन्निपात, क्षय और मेद, इन भेदों से छः प्रकार का होता है।।१।।

वातज स्वरभेद के लक्षण

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा
भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत्खरञ्च।

वातज स्वरभेद में, रोगी के नेत्र, मुख, मूत्र और मल काले हो जाते हैं। रोगी फटे हुए स्वर से, या गर्दभ के समान बोलने लगता है।

पित्तज स्वरभेद के लक्षण

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा
ब्रूयाद्गलेन स च दाहसमन्वितेन।। २।।

पित्तज स्वरभेद में, रोगी के नेत्र, मुख, मूत्र और मल सब पीले हो जाते हैं, तथा बोलने के समय उसका गला जलने लगता है।। २।।

कफज स्वरभेद के लक्षण

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः
स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात्।

कफज स्वरभेद में, कफ से गला रुँध उठता है। रोगी धीरे से थोड़ा-थोड़ा बोल सकता है। दिन में बहुत कम बोलता है।

सन्निपातज स्वरभेद के लक्षण

सर्वात्मकं भवति सर्वविकारसम्प-
त्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः।। ३।।

सन्निपातज स्वरभेद में, वात, पित्त और कफ, तीनों के सब लक्षण होते हैं। ऋषियों ने इस स्वरभेद को असाध्य कहा है।। ३।।

क्षयज स्वरभेद के लक्षण

धूम्येत वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च
वाक्येषु चापि हतवाक्परिवर्जनीयः।

धातुक्षय से उत्पन्न स्वरभेद वाले के बोलने के समय मुख से धुआँ निकलने लगता है। धातु भी क्षय हो जाता है। बोलने के समय वाणी बैठ जाती है। अच्छे प्रकार से बोला नहीं जाता है। ऐसा रोगी असाध्य होता है। इसकी औषध न करनी चाहिए।।

मेदज स्वरभेद के लक्षण

अन्तर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण
मेदोऽन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्तः।। ४।।

मेदज स्वरभेद में बड़ी देर में स्वर भीतर से बाहर निकलता है। रोगी के गले में चर्बी आकर लपट जाती है, इससे प्यास अधिक लगती है। वह बोल नहीं सकता।। ४।।

स्वरभेद के असाध्य लक्षण

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि
चिरोत्थितो यः सहजोपजातः।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च
स्वरामयो यः स न सिद्धिमेति।। ५।।

इति स्वरभेदरोगनिदानं चतुर्दशोऽध्यायः।। १४।।

अति क्षीण, वृद्ध और दुर्बल को जो यह रोग हो और बहुत दिनों का हो जाए या जन्म के संग ही उसको रोग उत्पन्न हुआ हो, अथवा अधिक चर्बी वाले को हो, या सन्निपात से स्वरभेद रोग हो तो महा असाध्य ही हो जाता है।। ५।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे स्वरभेदनिदानञ्चतुर्दशोऽध्यायः।। १४।।

अथारोचकरोगनिदानम्

अरोचक की संप्राप्ति व लक्षण

वातादिभिः शोकभयातिलोभ-
क्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ।
अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः
कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन।। १।।
कट्वम्लमुष्णं विरसञ्च पूति
पित्तेन विद्याल्लवणञ्च वक्त्रम्।
माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्य-
विवद्धसम्बद्धयुतं कफेन।। २।।

दोहा— पन्दरहवें महँ कहत कवि, अरुचि निदान अनेक।
देखहिं सज्जन ध्यान धरि, निज मन गुनि धरि टेक।। १।।

वातादिकों से अलग-अलग, तीनों के मिलने से सन्निपात से, शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, मन घिनाने वाले अन्न, रूप और गन्ध, इन्हीं सब कारणों से अरोचक होते हैं। उनमें वातज अरोचक में दाँत गँठीले और मुख कसैला हो जाता है। पित्तज अरोचक में कड़वा, खट्टा, उष्ण, रससहित और दुर्गन्धयुक्त मुख होता है। कफज अरोचक में, खारा, मीठा, फेनसहित, गुरु, ठंडा और बँधा-सा कफ भरा हुआ मुख हो जाता है।। १-२।।

शोकादि से उत्पन्न अरोचक के लक्षण

अरोचके शोकभयातिलोभ-
क्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात्।
स्वाभाविकश्चास्यमथारुचिश्च
त्रिदोषजे नैकरसम्भवेत्तु।। ३।।

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अपवित्र और दुर्गन्धयुक्त अरोचक में, मुख जैसे का तैसा स्वाभाविक बना रहता है। सन्निपात के अरोचक में मुख का एक रस नहीं रहता, किन्तु खट्टा, मीठा और कसैला आदि अनेक प्रकार का हो जाता है।। ३।।

वातादि से अरोचक के भिन्न लक्षण

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्ता-
त्तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम्।
श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्या-
द्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरञ्च ।। ४।।

इत्यरोचकरोगनिदानं पञ्चदशोऽध्यायः।। १५।।

वातज अरोचक में, हृदय में शूल, पीड़ा होती है। पित्तज अरोचक में, प्यास लगती है, दाह होता है और चोष (चूसने की-सीपीड़ा) होता है। कफज अरोचक में, मुख से कफ गिरा करता है। सन्निपातज अरोचक में, पीड़ा अधिक होती है, मन की व्याकुलता, मोह और जड़ता होती है।। ४।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादेऽरोचकनिदानं पञ्चदशोऽध्यायः।। १५।।

अथ छर्दिरोगनिदानम्

छर्दि (वमन) की संप्राप्ति

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः।
छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते।। १।।
अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः।। २।।
श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात्कृमिदोषतः।
नार्याश्चापन्नसत्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः।। ३।।
बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात्।
छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः।
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः।। ४।।

सोरठा— छर्दिरोग को भेद, सोलहवें वर्णन करत।
सुनिए सज्जन गोय, कय औ वमन कहाय सोइ।। १।।

अलग-अलग दुष्ट दोषों से या मिले हुए दोषों से या बहुत घिनौने सड़े घाव आदि के देखने से, पाँच प्रकार के वमन होते हैं। उनके लक्षण कहते हैं। बहुत पतले पदार्थों के खाने-पीने से, अति चिकने पदार्थों के खाने से, जिनके खाने को मन नहीं चाहता उनके खाने से, बहुत खारा भोजन करने से, अकाल में भोजन करने से, बहुत खा लेने से, जो अन्नादि अपने को न पचता हो उसे खाने से, श्रम से, भय से, ऊबने से, अजीर्ण से, कृमियों के दोष से, गर्भवती स्त्री को लड़का होने का समय आ जाने से, बहुत जल्द खाने से, पीब, मज्जा, रुधिर और अभक्ष्य मांसादिकों के देखने से तथा जल्दी-जल्दी बहुत जोर से चिचिआने से मिचली आती है। बस मनुष्य के गले को भीतर का मल आच्छादित कर लेता है, अङ्गों को मानों तोड़ने लगता है और दोष मुख की ओर दौड़ता है। इसी रोग को छर्दि (वमन, वान्त, डाकना, रद, कय आदि करना) कहते हैं।। १-४।।

छर्दि का पूर्वरूप

हृल्लासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्तनुः।
द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम्।। ५।।

सब प्रकार के वमन होने के पूर्व ये लक्षण होते हैं। मुँह में पानी छूटने लगता है। डकारना बन्द हो जाता है। मुख में नुनखाना पानी छूटने लगता है। पसीना हो आता है। खाने-पीने में अरुचि हो जाती है।। ५।।

वात की छर्दि के लक्षण

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्ष-
नाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः ।
उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं
विच्छिन्नकृष्णन्तनुकं कषायम्।। ६।।
कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगे-
नार्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम्।

हृदय और पसलियों में पीड़ा होती है, मुख सूखता रहता है, मुख में और नाभि में पीड़ा होती है, खाँसी आती है, स्वरभेद हो जाता है, कोंचने की-सी पीड़ा होने लगती है, वान्त करने के समय अधिक ओ-ओ करने लगता है, फेन सहित डाकता है, थम-थम कर थोड़ा कसैला वमन होता है, बड़े कष्ट से थोड़ा-सा वमन होता है, परन्तु वेग बड़ा भारी होता है। वायु वाला इस प्रकार बड़े दुःख से डाकता है।। ६।।

पित्त की छर्दि के लक्षण

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्द्ध-
ताल्वक्षिसंतापतमोभ्रमार्तः ।। ७।।
पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं
धूम्रञ्च पित्तेन वमेत्सदाहम्।

मूर्च्छा आती है, प्यास लगती है, मुख सूख जाता है, शिर, तालु और नेत्र जलने लगते हैं, आगे अँधेरा-सा हो जाता है, भ्रम होता है और पीड़ा होती है। पीला, अतिगरम, हरा, तीता और धुआँ-सा जलता हुआ वमन पित्त वाला करता है।।। ७।।

कफ की छर्दि के लक्षण

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेक-
सन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्तः ।
स्निग्धं घनं स्वादु कफं विशुद्धं
सरोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु।। ८।।

तन्द्रा, मुँह मीठा बना रहना, कफ बहना, सुस्ती आ जाना, नींद अधिक आना, अरुचि, इनसे पीड़ित होना। चिकना, गाढ़ा, स्वादुयुक्त, सफेद वमन करना, रोमों का खड़ा हो आना, और वमन के समय थोड़ी पीड़ा होना, ये कफ की छर्दि के लक्षण हैं।। ८।।

सन्निपात की छर्दि के लक्षण

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णा
श्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्ता।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनील-
सान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात्।। ९।।

त्रिदोष के वमन में, शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, पिपासा, दमा, अतिमोह के साथ नमकीन, खट्टी, नीली, गाढ़ी, उष्ण और लाल ऐसी छर्दि होती है।।९।।

छर्दि के असाध्य लक्षण

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुः
स्रोतांसि संरुध्य यदोर्ध्वमेति।
उत्सन्नदोषस्य समाचितन्तं
दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात्।। १०।।
विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं
तृट्श्वासकासार्तियुतं प्रसक्तम्।
प्रच्छर्दयेद्दुष्टमिहातिवेगा-
त्तयाऽर्दितश्चाशु विनाशमेति।। ११।।

जब पवन विष्ठा, पसीना, मूत्र और जल इनके निकलने वाले मार्गों को रोककर ऊपर को चढ़ता है, तो पुरीषादिकों को उभारकर कोठे से बाहर कर देता है। उस वान्त की दुर्गन्ध मल और मूत्र की-सी होती है। रङ्ग भी विष्ठा ही का-सा होता है। प्यास बहुत लगती है। दम भर आता है। खाँसी आती है। शूल उठता है। बड़े वेग से बार-बार वमन होता है। इस छर्दि से पीड़ित मनुष्य मृतक ही हो जाता है।। १०-११।।

आगन्तुक छर्दि के लक्षण

बीभत्सजा दौर्हृदजाऽऽमजा च
ह्यसात्म्यजा च कृमिजा च या हि।
सा पञ्चमी ताञ्च विभावयेत्तु
दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ।। १२।।

बीभत्सजा, दौर्हृदजा, आमजा, असात्म्यजा और कृमिजा, ये पाँच प्रकार की छर्दियाँ हैं। बीभत्सजा घिनौने पदार्थों को देखने से उत्पन्न होती है। दौर्हृदजा दुष्ट हृदय होने से होती है। आमजा अजीर्ण होने से होती है। असात्म्यजा अधिक भोजनादि से होती है। कृमिजा उदर में कृमि पड़ जाने से होती है। इन सभी के लक्षण ऊपर भी कह आए हैं। जिसमें जो लक्षण घटे, उसे वह छर्दि जाने।। १२।।

कृमिजा छर्दि के लक्षण

शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः।
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता।। १३।।

कृमियों से उत्पन्न छर्दि में शूल उठती है, हृदय में लासा-सा चिपटा जान पड़ता है, और इसमें हृदय रोग के तथा कृमि रोग के जी मचलाना आदि बहुत से लक्षण घटते हैं।। १३।।

छर्दि रोग के साध्यासाध्य लक्षण

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता
सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता।
सचन्द्रिकान्तां प्रवदेदसाध्यां
साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवाञ्च।। १४।।

जो क्षीण पुरुष को बड़े ज़ोर से भयंकर छर्दि होती है, खाँसी, दमा आदि उपद्रवों से युक्त हो। रुधिर और पीव से युक्त हो। मोर के पंखों के समान चमचमाते रङ्ग की हो। ऐसी छर्दि असाध्य होती है। पर जब खाँसी आदि उपद्रवों से युक्त नहीं होती, तो यह साध्य होती है।। १४।।

छर्दि के उपद्रव

कासः श्वासो ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्त्यमेव च।
हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः।। १५।।

इति छर्दिरोगनिदानं षोडशोऽध्यायः।। १६।।

खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, चित्तभ्रम, हृदय में पीड़ा, तमक और नेत्रों के आगे अँधेरा-सा हो आना, छर्दि के ये ही सब उपद्रव हैं।। १५।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे छर्दिरोगनिदानं नाम षोडशोऽध्यायः।। १६।।

अथ तृष्णारोगनिदानम्

तृष्णा रोग की संप्राप्ति

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा-
प्यूर्ध्वं चितम्पित्तविवर्धनैश्च।
पित्तं सवातं कुपितन्नराणां
तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम्।। १।।
स्रोतःस्वपांवाहिषु दूषितेषु
दोषैश्च तृट् सम्भवतीह जन्तोः।
तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी
क्षयात्तथा ह्यामसमुद्भवा च।। २।।
भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां
निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु।

सोरठा— तृष्णारोग निदान, सतरहवें में कहत कवि।
प्यास जासु को नाम, और पिपासा हूं कहहिं।।

भय और श्रम से, क्षीण बल होने से, पित्त को कुपित करने वाले उपवासादिकों से, वातयुक्त पित्त कुपित होकर पिपासा के स्थान तालु में आकर प्यास उत्पन्न करता है। जल बहाने वाली नसों के दूषित होने से तीन प्रकार की पिपासा लगती हैं। चौथी पिपासा घाव से लगती है। पाँचवीं क्षयी से उत्पन्न होती है। छठी आम से होती है। सातवीं अन्न से होती है। इन सभी के चिह्न क्रम से वर्णन करता हूँ। श्रवण करो।। १-२।।

वातजा तृषा के लक्षण

क्षामास्यता मारुतसम्भवायां
तोदस्तथा शङ्खशिरस्सु चापि।। ३।।
स्रोतोनिरोधो विरसश्च वक्त्रं
शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति।

वातज पिपासा में मुख सूखता जाता है, चित्त में दीनता होती है, कनपटी और मस्तक में पीड़ा होती है, रस बहाने वाली नसों में रुकावट हो जाती है, और मुख का स्वाद जाता रहता है। शीतल जल पीने से यह तृष्णा अधिक बढ़ती है।। ३।।

पित्तजा तृषा के लक्षण

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा
रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः।। ४।।
शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च
पित्तात्मिकायाम्परिदूयनञ्च ।

पित्तज तृषा में मूर्च्छा आती है, अरुचि होती है, विलाप करना बढ़ता है, दाह होता है, नेत्र लाल होते हैं, अधिक शोष होता है, शीतल वस्तु पर प्रीति होती है, मुख कड़वा बना रहता है, परिताप रहता है।। ४।।

कफजा तृषा के लक्षण

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ।
तृष्णा बलासेन भवेन्नरस्य।। ५।।

निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च
तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम्।

कफ अपने कारण से कुपित होकर, अग्नि को आच्छादित करता है। फिर उष्णता को रोककर नीचे चला जाता है, और जल बहाने वाली नसों को सुखाकर कफज तृष्णा को उत्पन्न करता है। इस तृष्णा में निद्रा अधिक आती है, देह भारी रहता है और मुख मीठा बना रहता है। इस पिपासा से पीड़ित मनुष्य अत्यन्त सूख जाता है ।। ५।।

क्षतजा तृषा के लक्षण

क्षतस्य रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां
तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता सा।। ६।।

घाव लगने से, पीड़ा उत्पन्न होने से और रुधिर बहने से मनुष्य को जो तृष्णा लगती है, वह चौथी क्षतजा तृष्णा कहलाती है।। ६।।

क्षयजा तृषा के लक्षण

रसक्षयाद्या क्षयसम्भवा सा
तयाऽभिभूतस्तु निशादिनेषु।
पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति
तां सन्निपातादिति केचिदाहुः।। ७।।
रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि
तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत्।

रसक्षय होने से, जो तृष्णा उत्पन्न होती है, उसको क्षयजा तृष्णा कहते हैं। इससे पीड़ित पुरुष रात-दिन पानी ही पिया करता है, परन्तु तृप्त नहीं होता। इसी को कोई-कोई सन्निपातजा तृष्णा कहते हैं। रसक्षय के लक्षण जो कहे हैं सब इसमें होते हैं। वैद्य को उचित है कि शेष आम से उसको जाने।। ७।।

आमजा तृषा के लक्षण

त्रिदोषलिङ्गाऽऽमसमुद्भवा च
हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री।। ८।।

आमजा तृष्णा अजीर्ण से उत्पन्न होती है। अजीर्ण तीनों दोषों से होता है। उनमें जिस दोष की अधिकता जान पड़े, उसी का लक्षण जानना चाहिए। इस तृष्णा से हृदय में शूल होती है, लार अधिक बहती है और ग्लानि बनी रहती है।। ८।।

अन्नजा तृषा के लक्षण

स्निग्धं तथाऽम्लं लवणञ्च भुक्तं
गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति।। ९।।

चिकना, खट्टा, खारा, गुरु पदार्थ और अधिक खा जाने से, शीघ्र पिपासा बढ़ती है। इसे ही अन्नजा तृष्णा कहते हैं।। ९।।

उपसर्गजा तृषा के लक्षण

दीनस्वरः प्रताम्यन्दीनः संशुष्कवक्त्रगलतालुः।
भवति खलु योपसर्गात्तृष्णा सा शोषिणी कष्टा।। १०।।

इस तृष्णा वाले का स्वर बैठ जाता है, मोह होता है, मन में ग्लानि होती है, मुख, गला और तालु सूख जाते हैं। शरीर सूख जाता है। यह रोग कष्टसाध्य होता है।। १०।।

उपद्रवयुक्त तृषा के अरिष्ट

ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम्।
सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम्।
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः।। ११।।

इति तृष्णारोगनिदानम्।। १७।।

ज्वर, मोह, क्षय, खाँसी, श्वास और अतीसार रोग वालों को सब तृष्णा कठिन होती हैं। रोग से अति दुर्बल मनुष्य की तृष्णा या वमन करने वालों की तृष्णा या अन्य किसी घोर उपद्रव में की तृष्णा मरण के लिए ही होती है।। ११।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे तृष्णानिदानं नाम सप्तदशोऽध्यायः।। १७।।

अथ मूर्च्छारोगनिदानम्

मूर्च्छा रोग की संप्राप्ति

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः।
वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः।। १।।
करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च।
निवसन्ति यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवः।। २।।

दोहा— अष्ठारह अध्याय महँ, मूर्च्छा रोग निदान।
बर्णत हैं कवि सुजन जन, सुनो ताहि धरि ध्यान।। १।।

क्षीणता से, अधिक दोष एकत्र होने से, विरुद्ध आहार सेवन करने से, मल-मूत्र के वेग को रोकने से, लाठी आदि की चोट लगने से और सत्त्व के हीन हो जाने से, जब बाहर तथा भीतर की इन्द्रियों में दोष प्रवृत्त होते हैं, तब पुरुष को मूर्च्छा आती है।। १-२।।

मूर्च्छा के सामान्य लक्षण

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः।
तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत्।। ३।।
सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत्।
मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता।। ४।।

जब सञ्ज्ञा बहाने वाली नस वायु आदि से भर जाती है, तब प्राणी को अज्ञान प्राप्त होता है। उसमें सुख-दुःख का स्मरण नहीं रहता। सुख-दुःख के नष्ट होने से, पुरुष काष्ठ के समान गिर पड़ता है। इसी को मोह या मूर्च्छा कहते हैं। मूर्च्छा छः प्रकार की होती है।। ३-४।।

मूर्च्छा के छः भेद

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च।
षट्स्वप्येतासु पित्तन्तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते।। ५।।

वात से, पित्त से, कफ से, रक्त से, मद्य से और विष से, इन छः कारणों से मूर्च्छा होती है। परन्तु पित्त की प्रधानता इन सब में रहती है ।। ५।।

मूर्च्छा का पूर्वरूप

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च।
सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वन्तां विभावयेत्।। ६।।

हृदय में पीड़ा होना, जँभाई आना, ग्लानि होना और भ्रान्ति होना, ये सब मूर्च्छाओं के पूर्वरूप हैं। जिस मूर्च्छा में वातादिकों में से जिसकी अधिकता जान पड़े, उसे उसी की मूर्च्छा जाने।। ६।।

वातजा मूर्च्छा के लक्षण

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम्।
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रञ्च प्रतिबुद्ध्यते।। ७।।
वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च।
कार्श्यं श्यावाऽरुणाच्छाया मूर्च्छा वै वातसम्भवा।। ८।।

वातजा मूर्च्छा में, आकाश नील, कृष्ण अथवा लाल दिखाई देता है। अँधियारी छा जाती है, परन्तु प्राणी शीघ्र चैतन्य हो जाता है। देह काँपने लगता है। शरीर इधर-उधर मुड़ता है। हृदय में पीड़ा होती है। देह दुर्बल हो जाता है। देह का रंग काला, साँवला या लाल हो जाता है।। ७-८।।

पित्तजा मूर्च्छा के लक्षण

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा।
पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुद्ध्यते।
सपिपासः ससन्तापो रक्तपीताकुलेक्षणः।। ९।।
जातमात्रे च पतति शीघ्रञ्च प्रतिबुद्ध्यते।
संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छा वै पित्तसम्भवा।। १०।।

पित्तजा मूर्च्छा में, आकाश लाल, हरा या पीला दिखाई देता है। अँधियारा छा जाता है। सावधान होने के समय पसीना आ जाता है। देह में सन्ताप होता है। पिपासा अधिक लगती है। नेत्र लाल या पीले हो जाते हैं। शीघ्र ही गिर पड़ता है और शीघ्र ही चैतन्य हो जाता है। मल पतला हो जाता है और शरीर पीला हो जाता है।।। ९-१०।।

कफजा मूर्च्छा के लक्षण

मेघसङ्काशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः।
पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुद्ध्यते।। ११।।
गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा।
सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छा वै कफसम्भवा।। १२।।

कफजा मूर्च्छा में आकाश मेघ के रंग का दिखाई देता है, या अत्यन्त अन्धकार से घिरा दिखाई देता है। जब इस प्रकार आकाश दिखाई देता है तब मूर्च्छा आ जाती है और बड़ी देर में चैतन्य होता है। अङ्ग बहुत भारी हो जाते हैं, या गीले चमड़े से बँधे हुए विदित होते हैं, मुख से पानी छूटता है और वमन होता है। कफजा मूर्च्छा के ये लक्षण हैं।। ११-१२।।

सन्निपातजा मूर्च्छा के लक्षण

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः।
स जन्तुम्पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः।। १३।।

सन्निपात की मूर्च्छा में प्रायः मृगी रोग के सब लक्षण होते हैं, जैसे मुख से फेन बहने लगता है, दाँत कटकटाने लगते हैं, नेत्र लोटपोट हो जाते हैं। मनुष्य फटकने लगता है।। १३।।

रक्तजा मूर्च्छा के लक्षण

पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः।
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः।। १४।।
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति।
स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः।। १५।।

रक्तजा मूर्च्छा में पृथ्वी और जल दोनों तमोरूप हो जाते हैं। रक्त गन्ध ही पृथ्वी का अन्वय है। इसी से रक्त की गन्ध आने से मनुष्य को मूर्च्छा आ जाती है। रक्त की गन्ध नहीं आती तो रक्त के देखने से भी मूर्च्छा आ जाती है। द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है। रक्त की मूर्च्छा में अङ्ग और नेत्र निश्चल हो जाते हैं। श्वास रुक-रुक कर आने लगता है।। १४-१५।।

मद्य और विष की मूर्च्छा का निदान

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः।
त एव तस्मात्ताभ्यान्तु मोहौ स्यातां यथेरितौ।। १६।।

विष और मद्य में सब तैलादिकों के दश गुण बड़ी तीव्रता से रहते हैं। उन्हीं से मूर्च्छा उत्पन्न होती है। विशेषता इतनी है कि विष से उत्पन्न दोष औषध किए बिना नहीं मिटता और मद्य से उत्पन्न दोष, अपने आप ही मिट जाता है।। १६।।

मद्यजा मूर्च्छा के लक्षण

मद्येन विलपञ्शेते नष्टविभ्रान्तमानसः।
गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत्।। १७।।

मद्यजा मूर्च्छा में प्राणी अधिक बकता है, ज्ञान उसका नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, मन विभ्रान्त हो जाता है। जब तक मद नहीं उतरता तब तक पृथ्वी पर पड़ा रहता है और अङ्ग पृथ्वी पर पटका करता है।। १७।।

विषजा मूर्च्छा के लक्षण

वेपथुस्वप्नतृष्णास्स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते।
वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः।। १८।।

शरीर में कम्प होता है, सोता रहता है, पिपासा बड़ी लगती है, उसके नेत्र के आगे अन्धकार-सा छाया रहता है। ये सब विष की मूर्च्छा के लक्षण हैं। मद्य के लक्षणों से विष के लक्षणों में अधिक तीव्रता होती है।। १८।।

मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा और निद्रा के भेद

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः।
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोद्भवा।। १९।।

मूर्च्छा में पित्त और तमोगुण अधिक होता है। भ्रम में रजोगुण, पित्त और वायु की अधिकता होती है। तमोगुण, वात और कफ से तन्द्रा होती है। श्लेष्मा और तमोगुण की अधिकता से निद्रा होती है।। १९।।

तन्द्रा के लक्षण

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः।
निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत्।। २०।।

जिस अवस्था में मनुष्य की इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों का ग्रहण नहीं करतीं, और शरीर में गुरुता बनी रहती है, जँभाई आती है, ग्लानि होती है, निद्रा से पीड़ित के समान गिरता पड़ता रहता है– उसको तन्द्रा कहते हैं।। २०।।

क्लम के लक्षण

यो नायासः श्रमो देहे प्रवृद्धश्वासवर्जितः।
क्लमस्स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः।। २१।।

बिना श्रम किए ही शरीर में जो थकाहट बनी रहती है और जब श्वास अधिक न आए, इसी को क्लम कहते हैं। यह इन्द्रियों के अर्थों का बाधक होता है।। २१।।

संन्यास और मूर्च्छा का भेद

दोषेषु मदमूर्च्छायाः कृतवेगेषु देहिनाम्।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना।। २२।।
वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः।
संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः।। २३।।
स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः।
प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रम्मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम्।। २४।।

इति मूर्च्छातन्द्रासंन्यासरोगनिदानमष्टादशोऽध्यायः।। १८।।

मद-मूर्च्छादिक सब दोष समय पाकर अपने आप शान्त हो जाते हैं, परन्तु संन्यास नाम रोग औषधों के किए बिना शान्त नहीं होता। प्रबल दोष वाणी, देह और मन की चेष्टाओं को बल से रोक कर और प्राण के स्थानों में ठहर कर, बलहीन प्राणी को सब कर्मों के करने से रोकते हैं। तब वह पुरुष सब कर्मों को छोड़ देता है, काष्ठ और मृतक के समान पड़ा रहता है। सब क्रियाओं को छोड़ शीघ्र ही मृतक हो जाता है। जैसे संन्यासी सब कर्मों

के फलों को छोड़ केवल मृतक के समान हो जाता है, ऐसे ही यह रोगी भी मरने के सिवाय और कुछ कर्म नहीं कर सकता। इसी से इसका नाम संन्यास रोग है।। २२-२४।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे मूर्च्छातन्द्रासंन्यासरोगनिदानमष्टादशोऽध्याय:।। १८।।

अथ मदात्ययरोगनिदानम्

मदात्यय की उत्पत्ति

ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्ते च मद्यस्य कीर्तिताः।।
तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः।। १।।

दोहा— मदअत्यय जो व्याधि है, वाको करत विचार।
उन्नइसीं अध्याय महं, सुजन लेहु निर्धार।। १।।

जो गुण विष के कहे हैं, वे ही मद्य के हैं। इससे जैसे अधिक विप सेवन हानिकारक होता है, वैसे ही प्रमाण से अधिक मद्य पीने से, मदात्यय हो जाता है।। १।।

मद्य का स्वभाव

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नन्तथा स्मृतम्।
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम्।। २।।
प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या हिनस्त्यसून्।
विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम्।। ३।।

किन्तु मद्य स्वभाव से अन्न के जैसा ही है। इससे जैसे अन्न अयोग्यता से खाया जाता है, तो रोग करता है और योग्यता से खाने पर गुण करता है। ऐसे ही जब मद्य अयुक्ति के साथ पिया जाता है, तब रोग करता है और जब युक्ति के साथ सेवन किया जाता है, तो अमृत के समान गुण करता है। प्राणियों के प्राण अन्न ही हैं। परन्तु वे ही अन्न जब अयुक्ति के साथ भोजन किए जाते हैं, तो प्राणों को नष्ट कर देते हैं। और विष प्राणों को हर लेता है, परन्तु वह जब युक्ति के साथ सेवन किया जाता है, तो रस का स्थान हो जाता है और शरीर को पुष्ट करता है।। २-३।।

युक्तिपूर्वक मद्य पीने का फल

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम्।
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा।। ४।।
स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम्।
भवेदायुः प्रहर्षाय बलायोपचयाय च।। ५।।
काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च।
विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये संनिहिता गुणाः।। ६।।

विधिपूर्वक, प्रमाणसहित, हितकारी अन्नों के साथ और अपने बल के अनुसार प्रसन्नचित्त होकर जो मद्यपान करता है, उसे वह अमृत के समान फल देता है। अच्छे चिकने अन्नों के साथ, अथवा मांसों के साथ जो कोई मद्य सेवन करता है, मद्य उसकी आयु बढ़ाता है, हर्ष करता है, बल बढ़ाता है, वृद्धि करता है और नेत्र में अधिक प्रकाश करता है। जो विधिपूर्वक मद्य सेवन करता है उसका सुन्दर रूप होता है, मन सन्तुष्ट रहता है, तेज बढ़ता है और विक्रम होता है। विधि से मद्य सेवन करने से ये गुण होते हैं।। ४-६।।

प्रथम मद के लक्षण

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च
पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च ।
सम्पाठगीतस्वरवर्द्धनश्च
प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि।। ७।।

मद चार प्रकार के होते हैं। उनमें पहला मद बुद्धि, स्मरण और प्रीति को करता है। सुखकारी होता है। पान, अन्न, निद्रा और रति की इच्छा को बढ़ाता है। अच्छे प्रकार पाठ कराने वाला, गीत-गान कराने वाला, स्वर को बढ़ाने वाला होता है। इसी से प्रथम मद अतिरम्य कहलाता है।। ७।।

द्वितीय मद के लक्षण

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्ट-
स्सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः।

आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च
मद्येनि मत्तः पुरुषो मदेन।। ८।।

द्वितीय मद में मनुष्य की बुद्धि, स्मृति और वाणी अपने वश में नहीं रहती, हाथ पैर अपने अधीन नहीं रहते, मतवाले की-सी लीला और आकृति हो जाती है, चित्त अशान्त बना रहता है, आलस्य और निद्रा में पड़ा रहता है। द्वितीय मद से पुरुष इस प्रकार मतवाला हो जाता है।। ८।।

तृतीय मद के लक्षण

गच्छेदगम्याञ्च गुरून्न मन्ये-
त्खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः।
ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि
मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः।। ९।।

तृतीय मद में, अगम्य-स्त्रियों के संग में भोग कर लेता है, अपने गुरु आदि बड़ों को भी नहीं देखता है और न उनकी लज्जा करता है, अभक्ष्य पदार्थों को भी खा लेता है, उसे किसी भी वस्तु का स्मरण नहीं रहता, अपने मन की गुप्त बातें भी सब से कहने लगता है। इतना पराधीन हो जाता है।। ९।।

चतुर्थ मद के लक्षण

चतुर्थे च मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः।
कार्याकार्यविभागाज्ञो मृतादप्यपरो मृतः।। १०।।
को मदन्तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम्।
बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती।। ११।।

चौथे मद में मनुष्य इतना मूढ़ हो जाता है कि टूटे हुए काष्ठ के समान पड़ा रहता है, कुछ भी कर्म नहीं कर सकता है, कार्य-अकार्य के भेद को नहीं जानता है, यहाँ तक कि मरे से भी मरे के समान हो जाता है। ऐसा कौन मनुष्य है जो दूसरे उन्माद के तुल्य चौथे मद को स्वीकार करे। जैसे कोई सचेत और अपने वश में रहने वाला पुरुष सिंह, व्याघ्र आदि अनेक दोषों से पूर्ण वन में नहीं जाता, वैसे ही कोई स्ववश पुरुष मद्य सेवन नहीं करता है।। १०-११।।

अनेक कारणों से मद्य के विकार

निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं
निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम्।
उत्पातयेत्कष्टतमान्विकारा-
नापादयेच्चापि शरीरभेदम्।। १२।।
क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन
शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन।
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन
वेगावरोधाभिहतेन चापि।। १३।।
अत्यन्नभक्ष्यावततोदरेण
साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन।
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं
करोति मद्यं विविधान्विकारान्।। १४।।

जो मनुष्य बिना कुछ अन्नादि भोजन किए नित्य केवल मद्यपान करता है, उस पुरुष को वह मद्य नाना प्रकार के अति कष्टदायक विकारों को उत्पन्न करता है और उसके शरीर का नाश भी शीघ्र ही कर देता है। जो मनुष्य क्रोधयुक्त होकर, भययुक्त होकर, पिपासित होकर, शोकयुक्त होकर, भूखा होकर, परिश्रम करने के पीछे, भार ढोने, मार्ग चलने के बाद, मल-मूत्र के वेग को रोकने के पीछे, बहुत अन्न खा लेने पर, पेट फूल आने पर, अजीर्ण में, निर्बलता होने में और बहुत गर्माने पर, तुरन्त मद्यपान करता है, वह मद्य ऐसे पुरुष को अनेक विकार उत्पन्न करता है।। १२-१४।।

मद्य से उत्पन्न विकारों के नाम

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा।
पानविभ्रममत्युग्रं चैषां वक्ष्यामि लक्षणम्।। १५।।

पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम, इन नामों से प्रसिद्ध उग्र विकारों के लक्षण कहते हैं।। १५।।

वातज मदात्यय के लक्षण

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः।
विद्यात्प्रलपनं तस्य वातप्रायं मदात्ययम्।। १६।।

हिचकी, श्वास, शिर काँपना, पसलियों में पीड़ा, नींद न आना और अनर्थ बकने से, वाताधिक मदात्यय जाने।। १६।।

पित्तज मदात्यय के लक्षण

दाहतृष्णाज्वरश्वासमोहातीसारविभ्रमैः।
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम्।। १७।।

दाह, पिपासा, ज्वर, हाँफना, मोह, अतीसार, भ्रम और हरितवर्ण हो जाना, इन लक्षणों से जो युक्त हो उसे पित्ताधिक मदात्यय जाने।। १७।।

कफज मदात्यय के लक्षण

छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः।
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम्।। १८।।

वमन, अरुचि, मुख में पानी छूटना, तन्द्रा, शरीर गीला-सा रहना, भारीपन और शीतयुक्त देह रहना, ये कफाधिक मदात्यय के लक्षण हैं।। १८।।

सन्निपातज मदात्यय के लक्षण

ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः।

जिसमें वात-पित्त-कफ तीनों दोष के लक्षण मिलें, उसे त्रिदोषज मदात्यय जाने।

परमद के लक्षण

श्लेष्मोच्छ्रयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च
विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च।
लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञा-
स्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः।। १९।।

श्लेष्मा का बढ़ना, अङ्ग में गुरुता, रसरहित मुख, विष्ठा और मूत्र का रुकना, तन्द्रा, अरुचि, पिपासा, शिर में पीड़ा और सन्धियों में पीड़ा, ये परमद के लक्षण हैं।। १९।।

पानाजीर्ण के लक्षण

आध्मानमुग्रमथ चोद्गिरणं विदाहः
पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि।। २०।।

पेट फूलना, वमन होना, जलना, मद पीने का अजीर्ण होना, ये लक्षण मदिरा पान के अजीर्ण से होते हैं। इसी को पानाजीर्ण कहते हैं।। २०।।

पानविभ्रम के लक्षण

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूम-
मूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदाहाः ।
द्वेषस्सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु
तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः।। २१।।

हृदय और अङ्गों में कोंचने की-सी पीड़ा होना, कफ का अधिक गिरना, धुआंइँध आना, मूर्च्छा, वमन, ज्वर होना, शिर में पीड़ा, मुख में कफ लपटा रहना, सब प्रकार की मदिरा और सब प्रकार के अन्नों में अरुचि हो जाना, ये लक्षण जिसमें होते हैं, धीर उसे पानविभ्रम कहते हैं।। २१।।

मदात्यय के असाध्य लक्षण

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं
तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेत्तम्।
जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवाऽपि नीलं
पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा।। २२।।

ऊपर के ओष्ठ का बहुत बढ़ जाना, उसके ऊपरी भाग का अत्यन्त शीत रहना, भीतर अतिदाह होना, मुख में तेल की चिकनाई जान पड़ना, जिह्वा, ओष्ठ और दाँत काले या नीले हो जाना और नेत्रों का रङ्ग पीला या रुधिर के रङ्ग का हो जाना, ऐसे अतिपान से आक्रान्त रोगी को वैद्य छोड़ दे। वह असाध्य होने के कारण जी नहीं सकता।। २२।।

मदात्यय के उपद्रव

हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः।
कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते।। २३।।

इति मदात्ययरोगनिदानमेकोनविंशोऽध्यायः।। १९।।

अति मद्यपी को नीचे लिखे हुए उपद्रव होते हैं। हिचकी, ज्वर, ओकाई, देह काँपना, पसलियों में शूल, खाँसी, भ्रम और वमन।। २३।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे मदात्ययरोगनिदानमेकोनविंशोऽध्यायः।। १९।।

अथ दाहरोगनिदानम्

मद्यज दाह के लक्षण

त्वचं प्राप्तस्स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः।
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम्।। १।।

दोहा— बिसवीं में बरनत सुकवि, दाह निदान विभेद।
जाहि जान पावैं सुफल, सज्जन वैद्य अखेद।। १।।

पित्त रक्त से युक्त होकर जब मदिरापान की उष्णता त्वचा में पैठती है, तो घोर दाह उत्पन्न करती है। इसमें पित्त के प्रमाण के योग्य औषधि करना चाहिए।। १।।

रक्तज तथा पित्तज दाह के लक्षण

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम्।
शुष्यते तृष्यते चैव ताम्राभस्ताम्रलोचनः।। २।।
लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवावकीर्यते।
पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिस्स्मृतः।। ३।।

कुपित रक्त देह भर में अत्यन्त दाह करता है। रोगी सूखता जाता है। पिपासा अधिक लगती है। शरीर तांबे के समान लाल हो जाता है। नेत्र भी लाल हो जाते हैं। उसके मुख से लोहे की-सी गन्ध निकलती है। मानों अग्नि

उसके मुख से लौहगन्ध उगलता है। पित्तजदाह में पित्तज्वर के समान शरीर जलने लगता है। इससे पित्तज्वर के समान औषधि भी करनी चाहिए।। २-३।।

तृष्णा रोकने से उत्पन्न दाह के लक्षण

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजस्समुत्थितम्।
सबाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेसतः।। ४।।
संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते।

प्यास रोकने से रस क्षीण हो जाता है, तब पित्तोष्मा बढ़ती है। वह प्राणी के भीतर तथा बाहर दाह करती है। और वह प्राणी गला, तालु और ओठ सूख जाने से जिह्वा निकालकर काँपने लगता है।। ४।।

रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह के लक्षण

असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुस्तरः।। ५।।

जब किसी को शस्त्र का घाव लगता है तो बहुत-सा रुधिर जाकर उसके कोठे में भर जाता है। इसी से दाह उत्पन्न होता है। यह दाह अत्यन्त दुस्तर होता है।।५।।

धातुक्षयज दाह के लक्षण

धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः।
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः।। ६।।

जिसे धातुक्षय होने से दाह होता है, उसे बार-बार मूर्च्छा आ जाती है, पिपासा अधिक लगती है, और स्वर धीमा हो जाता है। वह कोई कार्य नहीं कर सकता है और अत्यन्त पीड़ित होकर कष्ट पाता है।। ६।।

क्षतज और शोकज दाह के लक्षण

क्षतजोऽनशनतश्चान्नं शोचतो वाऽप्यनेकधा।
तेनान्तर्दह्यतेऽत्यर्थन्तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान्।। ७।।

शस्त्र लगने को छोड़ अन्य प्रकार के घाव से उत्पन्न दाह में प्राणी का अन्न छूट जाता है। तथा अनेक प्रकार के विचार करने से भी अन्तःकरण में

दाह होता है। यह रोगी तृष्णा व मूर्च्छा से युक्त हो जाता है और अनर्थक बकता है।। ७।।

मर्मघातज दाह के लक्षण

मर्माभिघातजोऽयस्ति सोऽसाध्यः सप्तमः स्मृतः।
सर्व एव च वर्ज्यास्स्युः शीतगात्रेषु देहिषु।। ८।।

इति दाहरोगनिदानं विंशोऽध्यायः।। २०।।

मर्म (सुकुमार) स्थान में जब अधिक चोट लग जाती है, तब जो दाह उठता है, वह असाध्य होता है। यह सातवाँ दाह है। जिस दाह में प्राणी का शरीर ऊपर से शीत हो जाए और भीतर दाह बना रहे, वही असाध्य होता है।। ८।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे दाहनिदानं विंशोऽध्यायः।। २०।।

अथोन्मादरोगनिदानम्

उन्माद के लक्षण

मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमास्थिताः।
मानसोऽयं मतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्यते।। १।।

दोहा— कह इक्कीस अध्याय महं, उन्मादहि को भेद।
जाहि जानि पावै नहीं, वैद्य स्वल्पहू खेद।। १।।

उन्मार्गगामी दुष्ट दोष बढ़कर, मन को मतवाला करते हैं। इससे इस मानस व्याधि को उन्माद कहते हैं।। १।।

उन्माद के भेद

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः।
मानसेन च दुःखेन स च पञ्चविधः स्मृतः।। २।।
विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम्।
स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च।। ३।।

उत्माद वात-पित्त-कफ से अलग-अलग उत्पन्न होने के कारण तीन प्रकार का होता है। तीनों के मिलने से चौथा सन्निपात से होता है और पाँचवाँ मन के दुःख से होता है। विष से छठा उन्माद होता है। इन (वातादिकों) के अनुसार उनकी औषधि करनी चाहिए। यह (उन्माद) जब तक बढ़ता नहीं, तब तक तरुण कहलाता है और तब तक इसकी मदसंज्ञा रहती है।। ३।।

उन्माद की संप्राप्ति

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि
प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो
मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः।। ४।।
तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा
बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि
प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः।। ५।।

विरुद्ध, दुष्ट और अपवित्र अन्न भोजन करना, देवता, गुरु और ब्राह्मणों की निन्दा तथा अनादर करना, अतिभय या अतिहर्ष युक्त मन में धक्का लगना और अपने से बलवान् के संग मल्लयुद्धादि करना, इन कारणों से उन्माद होता है। इन कारणों से अल्पपराक्रमी पुरुष के मल दुष्ट हो जाते हैं। वे बुद्धि के रहने के स्थान मन को दूषित कर, मन में लगी हुई सब नसों में व्याप्त होकर, मनुष्य के चित्त को शीघ्र मोहित कर देते हैं।। ४-५।।

उन्माद के सामान्य लक्षण

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च
पर्याकुला दृष्टिरधीरता च।
अबद्धवाक्यं हृदयं च शून्यं
सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम्।। ६।।

बुद्धि का विभ्रम, मन की चञ्चलता, दृष्टि की चञ्चलता, अधीर होना,

आँय-बाँय बकना और मन की शून्यता, ये इस रोग के सामान्य लक्षण हैं।। ६।।

वातज उन्माद की संप्राप्ति और लक्षण

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातु-
क्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रविश्य
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम्।। ७।।
अस्थानहास्यस्मितनृत्यगीत-
वागङ्गविक्षेपणरोदनानि ।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताश्च
जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम्।। ८।।

रूखा, अल्प, शीत, अन्न और दस्तावर अन्न खाने से धातुक्षय होने से और उपवास करने से, अति वृद्ध पवन, चिन्तादिकों से दूषित हृदय में प्रवेश कर, बुद्धि और स्मरणशक्ति को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। वातज उन्माद में बिना कारण हँसना, मुस्कुराना, नाचना, गाना, अङ्गों को घुमाना, मटकाना, रोना, शरीर का रङ्ग कठोर, काला या अरुण हो जाना और अन्न पचने पर रोग की अधिकता होना।। ७-८।।

पित्तज उन्माद की संप्राप्ति और लक्षण

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतै-
र्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम्।
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य
हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात्।। ९।।
अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः
संतर्जनातिद्रवणौष्ण्यचोषाः ।
प्रच्छाय शीतान्नजलाभिलाषः
पीता च भाः पित्तकृतस्य लिङ्गम्।। १०।।

अधकच्चा, कड़वा, अमला, दाहकारी और शीतल भोजन करने से सञ्चित पित्त उफनाकर, बलहीन पुरुष को अति शीघ्र उग्र उन्माद उत्पन्न करता है। इसमें असहनशीलता, क्रुद्धता, नग्न हो जाना, भय देना, भागना, शरीर उष्ण रहना, रोष बना रहना, छाया में रहना, शीतल अन्न और जल की इच्छा होना और देह का रङ्ग पीला हो जाना, ये सब लक्षण होते हैं।। ९-१०।।

कफज उन्माद की संप्राप्ति और लक्षण

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य
सोष्मा कफो मर्मणि संप्रवृद्धः।
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं
प्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ।। ११ ।।
वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च
नारीविविक्तप्रियता च निद्रा।
छर्दिश्च लाला च बलं च भुक्ते
नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात्।। १२ ।।

तृप्तिकारी पदार्थों के भोजन से, परिश्रमहीन पुरुष का पित्तयुक्त कफ, मर्मस्थल में अत्यन्त बढ़कर, उसकी बुद्धि और स्मृति का नाश करता है, और सम्मोहित करता हुआ विकार को उत्पन्न करता है। इसमें बोलना थोड़ा हो जाता है, भोजन में अरुचि होती है, स्त्री-सेवन और एकान्त में बैठने में बड़ी प्रीति होती है, निद्रा अधिक आती है, वमन होता है, मुख से राल बहा करती है और नख आदि शुक्ल रहते हैं। कफज उन्माद के ये ही लक्षण हैं।। ११-१२।।

सन्निपातज उन्माद के लक्षण

यस्सन्निपातप्रभवो हि घोरः
सर्वैस्समस्तैस्स तु हेतुभिः स्यात्।
सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृ-
ग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ।। १३ ।।

सन्निपातज उन्माद बड़ा घोर होता है। वह वात-पित्त-कफ सबके हेतुओं से

उत्पन्न होता है, इससे इन सभी के रूपों को धारण करता है। इसकी औषधि की विधि उलटी-पलटी होती है। इससे वैद्य को चाहिए कि इस रोगी को छोड़ दे, यह असाध्य होता है।। १३।।

मनोदुःखजन्य उन्माद की संप्राप्ति और लक्षण

चौरैनरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथाऽन्यै-
विंत्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा।
गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसो-
र्जायेत चोत्कटतमो मनसो विकारः।। १४।।

चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो
गायत्यथो हसति रोदिति चापि मूढः।

जो पुरुष चोर, राजपुरुष, शत्रु या अन्य पुरुषों से त्रस्त होता है, अथवा जिसके धन-भाई-बन्धु नष्ट हो जाते हैं, उसके हृदय में बड़ा घाव लगता है अथवा स्त्री के सङ्ग भोग करने की इच्छा करता है, पर कर नहीं पाता, उसके भी मन में बड़ा विकार उत्पन्न हो जाता है। उसके मन में, जो कुछ आता है, चित्र-विचित्र बकता रहता है, ज्ञान नहीं रहता। कभी गाता है, कभी हँसता है, कभी रोता है, और कभी मूढ़ हो बैठा रहता है।। १४।।

विषज उन्माद के लक्षण

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः
श्यावाननो विषकृतेऽथ भवेद्विसंज्ञः।। १५।।

इस उन्माद वाले के नेत्र लाल हो जाते हैं। बल, इन्द्रिय और शोभा हत हो जाती है। अतिदीन स्वभाव हो जाता है। मुख साँवला हो जाता है। ज्ञान जातां रहता है।। १५।।

उन्माद के असाध्य लक्षण

अवाञ्ची वाऽप्युदञ्ची वा क्षीणमांसबलो नरः।
जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति।। १६।।

जो पुरुष उन्माद के वेग में नीचे की ओर या ऊपर की ओर सदा मुख किए रहता हो, मांस बल से हीन हो गया हो, तथा उसको निद्रा कभी आती न हो, ऐसे उन्मादग्रस्त पुरुष को उन्माद अवश्य नष्ट करता है।। १६।।

भूतोन्माद के लक्षण

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो
ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।
उन्मादकालोऽनियतश्च तस्य
भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम्।। १७।।

वाणी, पराक्रम, शक्ति, व्यापार, तत्त्वज्ञान, विज्ञान और बल, जिसका मनुष्य का-सा न हो, जिसके उन्मत्त होने का काल नियत न रहे (कभी किसी समय, कभी किसी समय होता हो), ये लक्षण जिस रोगी में हों, उसको भूतज उन्माद है, यह जाने।। १७।।

देवाविष्ट उन्माद के लक्षण

संतुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो
निस्तन्द्रो ह्यवितथसंस्कृतप्रभाषी।
तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता
ब्रह्मण्यो भवति च देवभूतजुष्टः।। १८।।

सदा सन्तुष्ट रहना, पवित्र रहना, अतिदिव्य माला और चन्दनादि सुगन्धित पदार्थ धारण करना, निद्रा और आलस्य का न होना, सत्य और संस्कृत वाणी बोलना, तेजस्वी होना, पलक न मारना, सब किसी को वर देना, ब्राह्मण पर प्रीति करना, जिस उन्माद वाले का ऐसा स्वभाव हो, उसे देवग्रह से पीड़ित जाने।। १८।।

असुराविष्ट उन्माद के लक्षण

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता
जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः।
संतुष्टो न भवति चान्नपानजातै-
र्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः।। १९।।

जिस उन्माद वाले को पसीना बहुत निकले, जो ब्राह्मण, गुरु, और देवताओं के दोष कहा करे, जिसकी दृष्टि टेढ़ी रहे, जो सदा निर्भय बैठा रहे और वेद-विरुद्ध बातों पर दृष्टि रखे, अन्न खाने और मिष्ट जलादि पीने से कभी सुन्तुष्ट न हो और दुष्टात्मा रहे, जिसमें ये लक्षण हों, उसे दैत्यग्रह से पीड़ित जाने।। १९।।

गन्धर्वाविष्ट उन्माद के लक्षण

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी
स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः।
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दो
गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः।। २०।।

जो मनुष्य हृष्टचित्त रहे, नदी के तीर पर व वन में बहुत बैठे, अपने आचार में निष्ठा रखे, गीत-चन्दन-पुष्पमालादि जिसे प्रिय लगें, नाचते-नाचते मन्द-मन्द हँसने लगे, और अतिमनोहर शब्द बोले, जिसमें ये लक्षण हों, उसे गन्धर्व ग्रह से पीड़ित जाने।। २०।।

यक्षाविष्ट उन्माद के लक्षण

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी
गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः।
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै
यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः।। २१।।

जिस उन्माद वाले के नेत्र तांबे के समान लाल रहें, सुन्दर, सूक्ष्म लाल वस्त्र धारण करे, गम्भीर रहे, शीघ्र चले, थोड़ा बोले, सहनशील हो, तेजस्वी रहे और यह कहा करे कि किसे कौन पदार्थ दूँ, उसे यक्षग्रह से पीड़ित जाने।। २१।।

पितृग्रहाविष्ट के लक्षण

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान्
भ्रान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः।

मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकाम-
स्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः।। २२।।

जो उन्माद वाला कुश बिछाकर उस पर प्रेतों को पिण्ड देने लगे, सदा भ्रान्तचित्त रहे, अपसव्य हो अँगोछा लेकर तर्पण करने लगे, मांस खाने की इच्छा करे, अथवा तिल, गुड़, खीर खाने की इच्छा करे, उसे पितृग्रह से पीड़ित जाने।। २२।।

सर्पाविष्ट उन्माद के लक्षण

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित्
सृक्कण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव।
क्रोधालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सु-
र्विज्ञेयो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः।। २३।।

जो उन्माद वाला कभी-कभी सर्प के समान पृथ्वी पर लोट कर चलने लगे, जिह्वा से गलफड़ चाटने लगे, सदा क्रोध करे और गुड़, मधु, दुग्ध, खीर खाने की सदा इच्छा करता रहे, उसे सर्पग्रह से युक्त जाने।। २३।।

राक्षसाविष्ट उन्माद के लक्षण

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-
र्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी
शौचद्विड् भवति हि राक्षसाभिजुष्टः।। २४।।

जो उन्माद वाला मांस, रुधिर और अनेक प्रकार की मदिरा से बने हुए पदार्थों की इच्छा करे, निर्लज्ज रहे, अत्यन्त निष्ठुरस्वभाव हो, अतिशूरतायुक्त रहे, क्रोध करे, अधिक बलवान् जान पड़े, रात्रि में विचरा करे, अपवित्र रहे और पवित्रता से द्वेष करे, उसे राक्षसों से सेवित जाने।। २४।।

पिशाचाविष्ट उन्माद के लक्षण

उद्धस्तः कृशपरुषो विरुद्धलापी
दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः।

बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी
व्याचेष्टन् भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः।। २५।।

जो उन्माद वाला ऊपर को हाथ उठाए रहे, दुर्बल और कठोरचित्त रहे, उलटी-पलटी बातें बका करे, उसके शरीर से दुर्गन्ध आए, अत्यन्त अपवित्र रहे, बड़ा चञ्चलचित्त रहे, भोजन बहुत करे, निर्जन स्थान (वनादि) में बैठना पसन्द करे और इधर-उधर रोता हुआ घूमता रहे, उसे पिशाचसेवित जाने।। २५।।

देवादियुक्त उन्माद के असाध्य लक्षण

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः स फेनलेही
निद्रालुः पतति च कम्पते च यो हि।
यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतस्स्यात्
सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे।। २६।।

जिसके नेत्र फूल गए हों, जो बहुत शीघ्र दौड़ता फिरे, फेनसहित पदार्थों को चाटे, बहुत सोए, चलते-चलते गिर पड़े, या काँपने लगे और हाथी, वृक्ष तथा पर्वत पर चढ़कर गिरना चाहे, इस प्रकार १३ वर्ष तक रहे तो वह उन्मादी असाध्य हो जाता है।। २६।।

देवादिकों के आवेश का समय

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि।
गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ।। २७।।
पितृग्रहास्तथा दर्शे पञ्चम्यामपि चोरगाः।
रक्षांसि रात्रौ पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति च।। २८।।

बहुधा देवग्रह पूर्णमासी को लगते हैं। दैत्यग्रह दोनों सन्ध्याओं में लगते हैं। गन्धर्वग्रह बहुधा अष्टमी को लगते हैं। यक्षग्रह प्रतिपदा को लगते हैं। पितृग्रह बहुधा अमावास्या को प्रवेश करते हैं। सर्पग्रह पञ्चमी को लगते हैं। राक्षस रात्रि में लगते हैं। पिशाच बहुधा चतुर्दशी को लगते हैं।। २७-२८।।

देवादिकों का शरीर में प्रवेश करने का दृष्टान्त

दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा।

स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहधृक्।
विशन्ति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणः।। २९।।

इत्युन्मादरोगनिदानमेकविंशोऽध्यायः।। २१।।

दर्पणादि में जैसे छाया प्रवेश करती है, परन्तु उसका रूप नहीं दिखाई देता, जैसे शीत-गर्मी मनुष्यादिकों के शरीर में व्याप्त हो जाती हैं, परन्तु दिखाई नहीं देती, जैसे सूर्यकान्तमणि में सूर्य के किरण प्रवेश कर जाते हैं, परन्तु उनका रूप नहीं दिखाई देता, जैसे देह में जीव रहता है, परन्तु दिखाई नहीं देता। वैसे ही देव, भूत, पिशाचादि ग्रह प्राणियों के शरीरों में प्रवेश कर जाते हैं, पर दिखाई नहीं देते।।२९।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे वातपित्तकफविषभूतदेवपिशाचादि-
ग्रहोन्मादनिदानमेकविंशोऽध्यायः ।। २१।।

अथापस्माररोगनिदानम्

अपस्मार के सामान्य लक्षण

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतेः।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः।। १।।

दोहा— अपस्मार की कहत कवि, बाइसवीं महं बात।
याही को मिर्गी कहत, सुनहु ताहि तुम तात।।१।।

जिस रोग में, एकाएकी अन्धकार-सा आ जाए, नेत्र टेढ़े-मेढ़े हो जाएँ, हाथ पैर इधर-उधर फेंकने लगे और दोष बढ़ने से स्मरण नष्ट हो जाए, इस रोग को अपस्मार (मिरगी) कहते हैं। यह चार प्रकार का होता है।। १।।

अपस्मार का पूर्वरूप

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानम्मूर्च्छा प्रमूढता।
निद्रानाशस्तु तस्मिंस्तु भविष्यति भवत्यथ।। २।।

हृदय काँपना, हृदय का शून्य हो जाना, पसीना होना, चिन्ता होना, मूर्च्छा आना, इन्द्रियों का मोहित हो जाना और निद्रा का नाश हो, जाना, इतने अपस्मार के पूर्वरूप हैं।। २।।

वातज अपस्मार के लक्षण

कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात्।। ३।।

अपस्मार में प्राणी काँपने लगता है। दाँतों को कटकटाने लगता है। उसके मुख से फेन गिरने लगता हैं। वह श्वास अधिक लेने लगता है। रूखे, लाल और काले रङ्गों को देखता है। बस वातज मिरगी के ये लक्षण हैं।। ३।।

पित्तज अपस्मार के लक्षण

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः।
सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः।। ४।।

पित्तज अपस्मार रोग में फेन, अङ्ग मुख और नेत्र पीले हो जाते हैं और पीला-लाल मिला हुआ रूप दिखाई देता है। व्यक्ति तृष्णायुक्त रहता है, उसे सब जगत् उष्ण और अग्नि से व्याप्त दिखाई देता है।। ४।।

कफज अपस्मार के लक्षण

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः।
पश्यञ्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात्।। ५।।

कफज अपस्मार रोग में फेन, अङ्ग, मुख और नेत्र शुक्ल रहते हैं। सब अङ्ग शीतल रहता है। शरीर के रोम खड़े रहते हैं। शरीर गुरु रहता है। सब रूप उसे शुक्ल ही दिखाई देते हैं और देर में कोई पदार्थ स्मरण आता है।। ५।।

सन्निपातज अपस्मार के लक्षण

सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः।
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः।। ६।।

इन सब लक्षणों से युक्त त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अपस्मार होता है। यह असाध्य होता है। यदि क्षीण मनुष्य को हो तो अत्यन्त असाध्य होता है। पुराना होने से भी असाध्य ही होता है।। ६।।

असाध्य के विशेष लक्षण

प्रतिस्फुरन्तं बहुशः क्षीणमप्रचलितभ्रुवम्।
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत्।। ७।।

जिसमें बार-बार प्राणी काँपता हो, क्षीण हो गया हो, भौहें फिरती रहें, नेत्र भी टेढ़े होकर फिरा करें। जिसको ऐसा अपस्मार होता है, वह उसे मार डालता है।। ७।।

अपस्मार के प्रकोप का काल

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः।
अपस्मारं प्रकुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथोत्तरम्।। ८।।
देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित्।
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुद्भवः।। ९।।

इत्यपस्माररोगनिदानं द्वाविंशोऽध्यायः।। २२।।

मलकोप के कारण पित्तप्रकृति वाले को पन्द्रहवें दिन मिरगी आती है, वातप्रकृति वाले को बारहवें दिन और कफप्रकृति वाले को महीने भर पर। यद्यपि ऐसा नियम है परन्तु कभी-कभी नियत समय से प्रथम और पीछे भी आ जाती है। इसलिए इसका ठीक-ठीक नियम नहीं हो सकता। जैसे वृष्टि होने पर भी बहुत से बीज शरद् ऋतु में ही जमते हैं, वर्षा में नहीं जमते। वैसे ही रोग भी अपने समय पर ही उत्पन्न होते हैं, सदा नहीं होते।। ८-९।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादेऽपस्माररोगनिदानं द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

अथ वातरोगनिदानम्

वातरोग की संप्राप्ति

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः।
विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रवणादपि।। १।।
लङ्घनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः।
धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगादिकर्षणात्।। २।।

वेगसन्धारणादामादभिघातादभोजनात् ।
मर्माबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानादिसेवनात् ।। ३ ।।
देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली।
करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान्।। ४ ।।

दोहा— तेइसवें महं कहत कवि, वात-व्याधि को भेद।
वाहि यथा विधि जानि कै, वैद्य न पावत खेद।।

रूखा, शीत, थोड़ा और हल्का अन्न खाने से, अतिमैथुन करने से, अत्यन्त जागने से, कुसमय पर भोजन करने से, कफ, पित्त, मल, मूत्र और रुधिर आदि के एकाएकी बहुत निकल जाने से, खावाँ आदि लाँघने से, ऊँचे से नीचे कूदने से, नीचे से ऊँचे को उछलने से, अतिमार्ग चलने से, दण्ड-मुद्गर-कुश्ती आदि बहुत करने से, कर-चरणादि के अति विरुद्ध चलाने से, रस-रक्तादि धातुओं के बहुत क्षय होने से, चिन्ता-रोग-शोकादिकों के कारण अतिदुर्बल हो जाने से, मल-मूत्र के वेग के रोकने से, आम होने से, मर्म (सुकुमार) स्थान में चोट लग जाने से, उपवास करने से, मर्म (सुकुमार) स्थान में किसी बलवान् का धक्का लग जाने से, हाथी, ऊँट, घोड़ा आदि पर चढ़कर बहुत शीघ्र दौड़ाने से, बलवान् वायु देह की सब खाली नसों को भरकर नाना प्रकार के वातरोगों को उत्पन्न करता है। कदाचित् सब अङ्गों में एकाएकी व्याधि उत्पन्न करता है। कदाचित् किसी एक ही अङ्ग में व्याधि उत्पन्न करता है।। १-४।।

पूर्वरूप और आत्मरूप की व्याख्या

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम्।
आत्मरूपं तु यद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः।। ५ ।।

उन वात व्याधियों के जो अप्रकट लक्षण कहे हैं, उन्हीं को पूर्वरूप कहते हैं, और जो उनका प्रकटरूप है, वह आत्मरूप कहलाता है। कहीं वायु कोप करके नाश ही कर देता है और कभी-कभी रोग को लघु करता है।। ५।।

वातरोग के लक्षण

सङ्कोचः पर्वणां स्तम्भो भङ्गोऽस्थ्नां पर्वणामपि।
लोमहर्षः प्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः।। ६ ।।

खाञ्ज्यपाङ्गुल्यकुब्जत्वं शोथोऽङ्गानामनिद्रता।
गर्भशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुप्तता।। ७।।
शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुण्डनम्।
भेदस्तोदोऽर्तिराक्षेपो मोहश्चायास एव च।। ८।।

इस रोग में अङ्ग सिकुड़ जाते हैं। जोड़ों का हिलना, चलना और झुकना बन्द हो जाता है, हड्डियाँ टूटने लगती हैं, जोड़ भी टूटने लगते हैं, रोम खड़े हो जाते हैं, प्राणी अनर्थ बक-बक करने लगता है, हाथ, पीठ और शिर जकड़ जाते हैं, रोगी लूला, लँगड़ा, और कुबड़ा हो जाता है, अङ्गों में शोथ आ जाता है, निद्रा नहीं आती है, स्त्री हो तो उसको गर्भ धारण नहीं होता है, पुरुष का वीर्य नष्ट हो जाता है, स्त्री का रजोदर्शन बन्द हो जाता है, शरीर कुछ चलायमान होता रहता है, कभी-कभी अङ्ग स्तब्ध हो जाते हैं, शिर, नासिका, नेत्र, हँसुली, गला, ये सब टेढ़े हो जाते हैं और टूटते भी रहते हैं, कोंचने की-सी पीड़ा होती है, चिलकने की पीड़ा होती है, अङ्ग फैलते नहीं, मोह और भ्रम बना रहता है।। ६-८।।

कोष्ठगत वात के लक्षण

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः।
ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च मारुते।। ९।।

जब कोठे का वायु दुष्ट हो जाता है तो मल-मूत्र रुक जाता है। अण्डवृद्धि, हृदयरोग, पिलही (वायुगोलादि), गुल्मरोग, बवासीर और पसलियों में शूल, ये सब रोग होते हैं।। ९।।

सर्वाङ्गगत वात के लक्षण

सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणभञ्जनम्।
वेदनाभिः परीताश्च स्फुरन्तीवास्य सन्धयः।। १०।।

जब सब अङ्गों में वायु का कोप होता है तो अङ्ग फड़कने और टूटने लगते हैं। इस रोगी की सब सन्धियाँ पीड़ित के समान फड़कने लगती हैं।। १०।।

गुदस्थित वात के लक्षण

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्करा:।
जङ्घोरुत्रिकहृत्पृष्ठरोगशोषौ गुदस्थिते।। ११।।

जब गुदा में का पवन दुष्ट हो जाता है तो विष्ठा, मूत्र और अधोवायु रुक जाता है, शूल होता है, पेट फूलता है, पथरी रोग होता है, शर्करा रोग होता है, जङ्घा, ऊरु, पार्श्व (पंजर) की सन्धि, हृदय और पीठ, इनमें शोथ होता है।। ११।।

आमाशयगत वात के लक्षण

रुक्पार्श्वोदरहृन्नाभौ तृष्णोद्गारविषूचिका:।
कासो हृत्कण्ठशोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते।। १२।।

जब आमाशय का वायु दुष्ट हो जाता है तो पसुली, पेट, हृदय और नाभि में पीड़ा होती है, पिपासा अधिक लगती है, उबकाई आती है, विषूचिका (हैजा) होती है, खाँसी आती है, हृदय और कण्ठ सूखता है, श्वास भी आने लगता है।। १२।।

पक्वाशयगत वात के लक्षण

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च।
कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम्।। १३।।

जब पक्वाशय का वायु दुष्ट हो जाता है, तो पेट गुड़गुड़ाने लगता है, शूल होता है, मल-मूत्र बड़ी कठिनता से उतरता है, पेट फूला रहता है, पार्श्व के जोड़ों में पीड़ा होती है।। १३।।

त्वग्गत वात के लक्षण

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते।
आतन्यते सरागा च सर्वरुक् त्वग्गतेऽनिले।। १४।।

जब त्वचा में रहने वाला पवन दुष्ट हो जाता है, तो त्वचा रूखी हो जाती है, मानो फटी जाती है, काटने से उसमें कुछ जान नहीं पड़ता, वह शून्य और दुर्बल हो जाती है, काली हो जाती है, उसमें मानो कोई कोंचने

लगता है, वह तन जाती है और लाल भी हो जाती है। और सब अङ्गों के ऊपर की खाल में पीड़ा होने लगती है।। १४।।

रक्तगत वात के लक्षण

रुजस्तीव्राः ससंतापाः वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः।
गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले।। १५।।

जब रुधिरगत वायु दुष्ट हो जाता है, तो सन्तापसहित अतितीव्र पीड़ा होती है, देह का रंग बिगड़ जाता है, दुर्बलता आ जाती है और अरुचि हो जाती है, भोजन करने पर पेट जकड़-सा जाता है।। १५।।

मांस व मेदगत वात के लक्षण

गुर्वङ्गं तुद्यते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा।
सरुक्श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले।। १६।।

दुष्ट वायु जब मांस और मेदा में प्रवेश करता है, तो अङ्ग में बहुत कोंचने की-सी पीड़ा होती है और अङ्ग जकड़ जाते हैं। दण्ड और मुक्का के मारने की-सी पीड़ा होने लगती है, हाथ-पैर हिलते-डोलते नहीं, अचल हो जाते हैं।। १६।।

मज्जागत वात के लक्षण

मेदोऽस्थिपर्वणां सन्धौ शूलं मांसबलक्षयः।
अस्वप्नः सततं रुक् च मज्जास्थे कुपितेऽनिले।। १७।।

जब मज्जास्थित पवन दुष्ट हो जाता है, तो मेद और हड्डियों की सन्धियों में पीड़ा होती है, शूल होता है, मांस और बल का नाश होता है, निद्रा नहीं आती है और सदा सब अङ्गों में पीड़ा होती है।। १७।।

शुक्रगत वात के लक्षण

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा।
विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः।। १८।।

जब शुक्र में स्थित हो के वायु कुपित होता है तो पुरुष या स्त्री की धातु शीघ्र ही गिर पड़ती है और स्त्री शीघ्र ही गर्भ धारण करती है। यह कुपित वायु गर्भ और धातु में कुछ विकार उत्पन्न करता है।। १८।।

शिरा (नस) गत वात के लक्षण

कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम्।
सबाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कुब्जत्वमेव च।। १९।।

जब कुपित वायु नस में स्थित होता है, तो शूल को उत्पन्न करता है, नस को जकड़ता और फुलाता है, बाहर-भीतर दोनों ओर से नस फूल उठती है। कुबड़ापन और खल्ली रोग को उत्पन्न करता है।। १९।।

स्नायु और सन्धिगत वात के लक्षण

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्यात् स्नायुगतोऽनिलः।
हन्ति सन्धिगतः सन्धीञ्छूलशोथौ करोति च।। २०।।

स्नायुगत कुपितवायु, सब अङ्गों में अथवा एक ही किसी अङ्ग में रोगों को उत्पन्न करता है। सन्धि (जोड़ों) में स्थित पवन जोड़ों में शूल और शोथ को करता है।। २०।।

पित्त-कफावृत प्राणवायु के लक्षण

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते।
दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यं च कफावृते।। २१।।

जब प्राणवायु पित्त से आच्छादित हो जाता है, तो वमन और दाह को उत्पन्न करता है। जब प्राणवायु कफ से आच्छादित होता है तो दुर्बलता, ग्लानि, तन्द्रा और मुख को विरस करता है।। २१।।

पित्त-कफावृत उदानवायु के लक्षण

उदाने पित्तसंयुक्ते दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः।
अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफावृते।। २२।।

जब उदानवायु पित्त से संयुक्त होता है, तो शरीर में दाह, मूर्च्छा, भ्रम और ग्लानि होती है। जब उदान वायु कफ से संयुक्त होता है, तो पसीना नहीं निकलता, परन्तु रोम खड़े हो जाते हैं, मन्दाग्नि हो जाती है और शरीर में शीतलता हो जाती है।। २२।।

पित्त-कफावृत समानवायु के लक्षण

स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्युः समाने पित्तसंयुते।
कफेन सक्ते विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते।। २३।।

जब समानवायु पित्त से संयुक्त होता है, तो पसीना, दाह, उष्णता और मूर्च्छा ये सब होते हैं। जब समानवायु का कफ से संयोग होता है, तो विष्ठा और मूत्र अधिक होता है और रोम खड़े हो जाते हैं।।१३।।

पित्त-कफावृत अपानवायु के लक्षण

अपाने पित्तयुक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता।
अर्धकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते।। २४।।

जब अपानवायु पित्त से संयुक्त होता है, तो दाह और उष्णता होती है और मूत्र लाल होता है या रक्त ही मूत्र रूप में निकलता है। जब अपानवायु कफ से संयुक्त होता है तो आधे शरीर में गुरुता रहती है और आधे शरीर में शीतलता रहती है।। २४।।

पित्त-कफावृत व्यानवायु के लक्षण

व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः।
स्तम्भनो दण्डकश्चापि शोथशूलौ कफावृते।। २५।।

व्यानवायु जब पित्त से आच्छादित होता है, तो शरीर में दाह, अङ्गों में फटुकन और ग्लानि होती है। जब व्यानवायु कफ से युक्त होता है तो शरीर में स्तम्भ, सूज़न और शूल होता है।। २५।।

आक्षेपक वात के लक्षण

यदा तु धमनीस्सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः।
तदाऽऽक्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुस्स्वरः।
मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः।। २६।।

जब पवन कुपित होकर सब नसों में प्रविष्ट होता है, तब वह प्राणी बार-बार अपने देह को फटुकने लगता है और बार-बार शब्द करता है। अतएव बार-बार आक्षेप करने से इस रोग का आक्षेपक नाम है।। २६।।

अपतन्त्रक वात के लक्षण

क्रुद्धस्स्वैः कोपनैर्वायुस्स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते।
पीडयन् हृदयं गत्वा शिरश्शङ्खौ च पीडयन्।। २७।।
धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा ।
स कृच्छ्रदुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः।। २८।।
कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः।

वायु जब अपने कुपित कराने वाले कारणों से क्रुद्ध होता है तो अपने स्थान से ऊपर चलता है, फिर हृदय को पीड़ित करता हुआ ऊपर जाकर शिर और कनपटी को पीड़ित करता है। धनुष के तुल्य देह को नवाता है। फिर उछालता हुआ अङ्गों को मोहित करता है। तब वह रोगी बड़े कष्ट से श्वास लेता है, उसके नेत्र अचल हो जाते हैं, बड़ी देर तक पलक नहीं मार सकता, नेत्र मूँद लेता है, कबूतर के समान गूँ-गूँ करने लगता है, मूर्च्छित हो जाता है। इस रोग को 'अपतन्त्रक' कहते हैं।। २७-२८।।

अपतानक वायु के लक्षण

दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति।। २९।।
हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहवृते पुनः।
वायुना दारुणं प्राहुरेके तमपतानकम्।। ३०।।

जब वायु दृष्टि को स्तब्ध कर संज्ञा का नाश कर देता है और गले में घरघराने लगता है। जब वायु हृदय को छोड़ देता है, तो रोगी को फिर ज्ञान हो जाता है। जब फिर वायु हृदय में व्याप्त हो जाता है तो फिर मोहित हो जाता है। वायु के कारण इस रोग को लोग बड़ा दारुण कहते हैं। कोई इस रोग को अपतानक रोग कहते हैं।।२९-३०।।

दण्डापतानक के लक्षण

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति।
स दण्डवत् स्तम्भयति कृच्छ्रो दण्डापतानकः।। ३१।।

कफयुक्त वायु अत्यन्त कोप करके जब सब नसों में ठहरता है तब

दण्ड के समान सब देह को जकड़कर कड़ा कर देता है। इससे इस रोग का दण्डापतानक नाम है। यह बड़े कष्ट से साध्य होता है।। ३१।।

व्रणायाम के लक्षण

मर्माश्रितं व्रणम्प्राप्य वायुर्यस्सर्वदेहगः।
वेगैरानमयेद्देहं व्रणायामन्तु तन्त्यजेत्।। ३२।।

सब शरीर में जो व्यानवायु रहता है, वह जब मर्म (सुकुमार) स्थानों के व्रण में पहुँचता है, तो अपने वेगों से देह को झुका देता है। इस रोग को व्रणायाम कहते हैं। यह असाध्य होता है। वैद्य को चाहिए के ऐसे रोगी को छोड़ दे।। ३२।।

धनुस्तम्भ के लक्षण

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भसञ्ज्ञितः।

जो वायु कफमिश्रित होकर नसों के भीतर चला करता है और चलते-चलते फिर नसों के मुख को बन्द कर देता है। तब जिस वात रोग में, देह धनुष के समान तन जाता है, इस रोग को धनुस्तम्भ कहते हैं। यह रोग कफ युक्त वायु के द्वारा नसों के मुख के बंद हो जाने पर होता है। यह रोगी दस दिन के भीतर मर जाता है।

अन्तरायाम के लक्षण

अङ्गुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः ।
स्नायुप्रतानमनिलो यदाऽऽक्षिपति वेगवान्।। ३३।।
विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन्।
अभ्यन्तरं धनुनिव यदा नमति मानवम्।
तदाऽस्याभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली।। ३४।।

अंगुली, घुटना, पेट, हृदय, छाती और गला इन स्थानों में आकर वेगवान् वायु इनकी नसों को तान देता है। इस रोगी के नेत्र बढ़ जाते हैं, दाढ़ी जकड़ जाती है, पसुलियाँ मुड़ जाती हैं और मुख से कफ उगलने लगता है, उस मुनष्य का भीतरी हिस्सा धनुष के ऐसा झुकने लगता है। तब यह बली पवन अभ्यन्तरायाम नामक रोग को उत्पन्न करता है।। ३३-३४।।

बाह्यायाम के लक्षण

बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च।
तमसाध्यं बुधाः प्राहुः कटिपार्श्वोरुभञ्जनम्।। ३५।।

बाहर की नसों में जो पतली नस होती है, उसमें प्रविष्ट होकर वायु बाह्यायाम नामक रोग को उत्पन्न करता है। यह रोग कटि, पसुली और फीली को तोड़ता है। पण्डित लोग इसको असाध्य कहते हैं।। ३५।।

आक्षेपक के लक्षण

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः।
कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम्।। ३६।।

कफ-पित्तयुक्त वायु या केवल वायु, अभिघात (धक्का) से उत्पन्न आक्षेपक रोग को उत्पन्न करता है। वह चौथा अभिघातज आक्षेपक रोग करता है। आक्षेपक चार प्रकार के होते हैं। पहला कफान्वित वायु से, दूसरा पित्तान्वित वायु से, तीसरा केवल वायु से और चौथ दण्डाभिघात से।। ३६।।

असाध्य अपतानक के लक्षण

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्त्रवाच्च यः।
अभिघातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः।। ३७।।

गर्भपात होना जिसका निमित्त है, अथवा जो अतिरुधिर बहने से होता है या लाठी, दण्डा आदि के अभिघात से होता है, यह अपतानक रोग असाध्य होता है।। ३७।।

पक्षाघात के लक्षण

गृहीत्वार्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायूर्विशोष्य च।
पक्षमन्यतरं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन्।। ३८।।
कृत्स्नेऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः।
एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः।। ३९।।

वायु देह के आधे भाग को ग्रहण कर दोनों प्रकार की (मोटी-मझोली)

नसों को सुखाकर, दाहिने या बाएं आधे शरीर को नष्ट कर दे, उसमें कुछ शक्ति न रहने दे, तब उसका सम्पूर्ण आधा अङ्ग ऐसा अचेत हो जाए कि कुछ भी कर्म न कर सके, तो उसको कोई एकाङ्ग रोग कहते हैं और कोई-कोई पक्षवध (पक्षाघात) कहते हैं।। ३८-३९।।

सर्वाङ्ग रोग के लक्षण

सर्वाङ्गरोगं तं केचित्सर्वकायाश्रितेऽनिले।

जब सब अङ्गों में वायु व्याप्त हो जाए, और सब अङ्ग वायु के मार देने से सूख जाएँ, तो उसे सर्वाङ्ग रोग कहते हैं।

पित्तकफयुक्त पक्षाघात के उपद्रव

दाहसन्तापमूर्च्छास्स्युर्वायौ पित्तसमन्विते।
शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफान्विते।। ४०।।

वह वायु जब पित्तयुक्त हो कर सब नसों में व्याप्त होता है, तो दाह, सन्ताप और मूर्च्छा होती है। जब कफयुक्त होता है, तो शीतलता, शोथ और अङ्गों में गुरुता होती है।। ४०।।

पक्षाघात के साध्यादि लक्षण

शुद्धवातहतम्पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः।
साध्यमन्येन संसृष्टमसाध्यं क्षयहेतुकम्।। ४१।।

शुद्ध वायु से जो पक्षाघात होता है, वह अतिशय कष्टसाध्य होता है। जब पित्त-कफ युक्त वायु से होता है, तब साध्य होता है। और जब वात-कफ-पित्त तीनों एक सङ्ग हो जाते हैं तो असाध्य होता है।। ४१।।

पक्षाघात के असाध्य लक्षण

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये।
पक्षाघातम्परिहरेद्वेदनारहितो यदि।। ४२।।

गर्भिणी, सूतिका, बालक, वृद्ध, क्षीण और जिसको रक्तक्षय हो, इनको जब पक्षाघात हो, और पीड़ा न हो, तो ऐसे रोगी को छोड़ देना चाहिए। यह असाध्य हो जाता है।। ४२।।

अर्दित के लक्षण

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च।
हसतो जृम्भमाणस्य विषमाच्छयनादपि।। ४३।।
शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः ।
वर्तमानोऽनिलस्तेषु वक्त्रम्मर्दयति द्रुतम्।। ४४।।
वक्रीभवति वक्त्रार्द्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते।
शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनाञ्च वैकृतम्।। ४५।।
ग्रीवाचिबुकदन्तानान्तस्मिन्पार्श्वे च वेदना।
तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः।। ४६।।

बड़े ऊँचे स्वर से पढ़ने से, कठिन (कड़े) पदार्थों के खाने से, हँसने से, जँभाई लेने से, ऊँचे स्थान से उतरने से और कुसमय में शयन करने से, शिर नासिका, ओष्ठ, दाढ़ी, ललाट, नेत्र और सब जोड़ों में पहुँचकर पवन, मुख को पीड़ित कर अर्दितरोग उत्पन्न करता है। इस अर्दित रोग से आधा मुख टेढ़ा हो जाता है, और ग्रीवा टेढ़ी हो जाती है, शिर काँपने लगता है, मुख से बोला नहीं जाता है, भौंह, आँख, दाढ़ी आदि टेढ़े हो जाते हैं। और इनमें पीड़ा भी होने लगती है। ग्रीवा, ठुड्डी, दाँत और पसलियों में पीड़ा होती है। वैद्य लोग इस रोग को अर्दित कहते हैं।। ४३-४६।।

अर्दित के असाध्य लक्षण

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः।
न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च।
गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु।। ४७।।

क्षीणता के कारण जब पुरुष आँख को खोल-मूँद न सके और स्पष्ट शब्द न बोल सके तथा जो तीन वर्ष तक इस रोग से काँपता रहा हो, ऐसे मनुष्य का यह अर्दितरोग असाध्य होता है। इन आक्षेपकादि सब रोगों में वेग उतर जाने पर फिर स्वास्थ्य होता है।। ४७।।

हनुग्रह के लक्षण

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ।
कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम्।। ४८।।

करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम्।
हनुग्रहस्स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम्।। ४९।।

किसी कड़े काष्ठ से जीभी करने से, चना आदि रूखी वस्तुओं के चबाने से, अथवा जीभ में कभी चोट लग जाने से, चौहड़ी की जड़ में स्थित वायु कुपित होकर दाढ़ को नीचे बैठा देता है। इस रोग में वायु या तो मुख को फैला देता है फिर सिकुड़ने नहीं देता, या सिकोड़ देता है तो फिर फैलने नहीं देता। इस रोग को हनुग्रह कहते हैं। इस रोग में चबाना, बोलना और मुस्कुराना आदि कठिन हो जाता है।। ४८-४९।।

मन्यास्तम्भ के लक्षण

दिवास्वप्नाशनस्नानविकृत्योर्ध्वनिरीक्षणैः ।
मन्यास्तम्भम्प्रकुरुते स एव श्लेष्मणाऽऽवृतः।। ५०।।

दिन में सोने से, भोजन करने से, स्नान करने से और टेढ़ी गर्दन कर ऊपर की ओर देखने से, कफ युक्त वायु कुपित होकर गर्दन के ऊपरी भाग को तान देता है। इस रोग को मन्यास्तम्भ कहते हैं।। ५०।।

जिह्वास्तम्भ के लक्षण

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः।।
जिह्वास्तम्भस्स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता।। ५१।।

बोलने वाली नस में स्थित वायु जिह्वा को रोकता है, इस रोग को जिह्वास्तम्भ कहते हैं। इस रोग में अन्न-पानी निगलने में और बोलने में कष्ट होता है।। ५१।।

शिरोग्रह के लक्षण

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराशिशराः।
रूक्षास्सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः।। ५२।।

शिर की नसों के रक्त में पहुँचकर पवन सब नसों को रूखी, काली और पीड़ित कर देता है। यह रोग असाध्य होता है। इसका शिरोग्रह नाम है।। ५२।।

गृध्रसी के लक्षण

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात्।
गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः।
वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता ।। ५३।।

प्रथम कटि के ऊपर के भाग से आरम्भ कर फिर कटि, पीठ, ऊरु, जानु, जङ्घा और पैर इन स्थानों में क्रम से पवन कड़ापन करता है। क्रम-क्रम से अधिक तान देता है। इस रोग को 'गृध्रसी' कहते हैं। इसमें कोंचने की-सी व्यथा होती है, बार-बार कम्प होता है, पीड़ा भी बहुत होती है, अङ्ग भारी ज़ान पड़ते हैं, सब पदार्थों से अरुचि हो जाती है। यह रोग वात से होता है, और वात-कफ दोनों से (मिलकर) भी होता है। इसलिए दो प्रकार का होता है।। ५३।।

विश्वाची के लक्षण

तलं प्रत्यङ्गुलीनां याः कण्डरा बाहुपृष्ठतः।
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाचीति च सा स्मृता।। ५४।।

हाथ के तल के पीछे से अंगुलियों के ऊपर तक जो मोटी-मोटी नसें चली आती हैं, उनमें दुष्ट पवन, प्रविष्ट होकर उन्हें जकड़ लेता है। इस कारण हाथ सिकुड़ और पसर नहीं सकते, तने रहते हैं। इस रोग को 'विश्वाची' कहते हैं।।५४।।

क्रोष्टुकशीर्ष के लक्षण

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः।
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षश्च स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत्।। ५५।।

वात-रक्त से उत्पन्न होकर जो शोथ, जाँघ के मध्य में सियार के मूड़ के आकार का होकर अति पीड़ा करता है, उस रोग को 'क्रोष्टुकशीर्ष' कहते हैं।। ५५।।

खञ्ज और पङ्गु के लक्षण

वायुः कट्याश्रितस्सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा।
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पङ्गुस्सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात्।। ५६।।

कटि में रहने वाला वायु, जब एक पैर की नसों को रोक लेता है, तब मनुष्य लँगड़ा हो जाता है। इसको 'खञ्ज' कहते हैं। यही रोग जब दोनों पैरों

की मोटी नसों में हो जाता है, तो प्राणी पङ्गु हो जाता है। इसे पङ्गु कहते हैं।। ५६।।

कलायखञ्ज के लक्षण

प्रक्रमन् वेपते यस्तु खञ्जन्निव च गच्छति।
कलायखञ्जन्तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम्।। ५७।।

जिस रोग में, मनुष्य चलने के समय काँपने लगता है, फिर कुछ लँगड़ाता हुआ ही चलता है, उसे 'कलायखञ्ज' कहते हैं। इसमें जोड़ों के सब बन्धन ढीले हो जाते हैं।। ५७।।

वातकण्टक के लक्षण

रुक्पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा।
वातेन गुल्ममाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम्।। ५८।।

तिरछा, उलटा आदि विषमता से पैर धरने से या श्रम करने से पैर में पीड़ा होती है, और पवन गाँठ को पकड़ लेता है, चलने नहीं देता। इस रोग को 'वातकण्टक' कहते हैं।। ५८।।

पाददाह के लक्षण

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः।
विशेषतश्चङ्क्रमतः पाददाहन्तमादिशेत्।। ५९।।

रक्त-पित्त युक्त होकर जब पवन दोनों पैरों में दाह करने लगता है और थोड़ा चलने पर भी पैर अधिक गरमा उठते हैं तो इस रोग को 'पाददाह' कहते हैं।। ५९।।

पादहर्ष के लक्षण

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां वा प्रसुप्तकौ।
पादहर्षस्स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः।। ६०।।

जिस रोग में, कफ और वात के अतिकोप करने से, पैरों में कभी-कभी तो झंझनाहट और कभी-कभी अति शिथिलता हो जाए, उस रोग को 'पादहर्ष' कहते हैं।। ६०।।

अपबाहुक के लक्षण

अंसदेशस्थितो वायुः शोषयित्वांसबन्धनम्।
शिराश्चाकुञ्च्य तत्रस्थो जनयत्यपबाहुकम्।। ६१।।

अंस में जो वायु रहता है, वह दुष्ट होकर कभी अंस के सब बन्धनों को सुखा देता है और नसों को सिकोड़कर वहीं स्थित होकर अपबाहुक नामक रोग को उत्पन्न करता है।। ६१।।

मूकमिन्मिन आदि के लक्षण

आवृत्य वायुस्सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः।
नरान्करोत्यक्रियकान् मूकमिन्मिनगद्गदान्।। ६२।।

जिह्वा से शब्द निकालने वाली नसों को सिकोड़कर, कफ़युक्त वायु मनुष्यों को कायरहित कर देता है। उसमें तीन रोग उत्पन्न होते हैं। एक मूक, दूसरा मिन्मिन, तीसरा गद्गद्। अर्थात् या तो मूक (गूँगा) हो जाता है, या पुकारने पर मिन्मिनाकर बोलता है, या स्पष्ट शब्द नहीं बोलता गें-गें करने लगता है, या हकलाने लगता है।। ६२।।

तूनीनाम रोग के लक्षण

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता।
भिनत्तीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः।। ६३।।

पक्वाशय तथा मूत्राशय में पीड़ा करती हुई जो वायु पुरुष अथवा स्त्री की गुदा या भग को और पुरुष के लिंग को मानो चीरती चली जाती है, उसे तूनी कहते हैं।। ६३।।

प्रतूनीनामक रोग का लक्षण

गुदोपस्थोत्थिता चैव प्रतिलोमं प्रधावति।
वेगैः पक्वाशयं याति प्रतूनीति च सोच्यते।। ६४।।

जिस रोग में गुदा और लिङ्ग या भग से पीड़ा उठे, और उलटी ऊपर को पक्वाशय तक चढ़ती चली जाए, उस रोग को प्रतूनी कहते हैं।। ६४।।

आध्मान का लक्षण

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम्।
आध्मानमिति जानीयाद् घोरं वातनिरोधजम्।। ६५।।

जिस रोग में पेट अधिक फूल जाए, मल, मूत्र और अधोवायु न निकले, उसे आध्मान कहते हैं। यह कठिन रोग वात के रुक जाने से होता है।। ६५।।

प्रत्याध्मान का लक्षण

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम्।
प्रत्याध्मानं विजानीयात् कफव्याकुलितानिलम्।। ६६।।

यह आध्मान जब हृदय और पसलियों में पीड़ा नहीं करता, केवल आमाशय में स्थित रहता है, उसी को प्रत्याध्मान कहते हैं। यह कफवात के संयुक्त दोषों के बिगड़ने से होता है।। ६६।।

वाताष्ठीला का लक्षण

नाभेरधस्तात् सञ्जातः सञ्चारी यदि वाऽचलः।
अष्ठीलावद्घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः।
वाताष्ठीलां विजानीयाब्दहिर्मार्गनिरोधिनीम्।। ६७।।

जिस वात रोग में, नांभि के नीचे उत्पन्न होकर वायु अचल रहे अथवा चल हो, और पत्थर के बटखरे के समान कठोर गाँठ को उत्पन्न करे और वह गाँठ ऊपर.की ओर चौड़ी हो और नीचे से कभी-कभी ऊपर चढ़े, तथा बाहर के मार्ग को रोकती रहे, उसे वाताष्ठीला रोग कहते हैं।। ६७।।

प्रत्यष्ठीला का लक्षण

एतामेव रुजोपेतां वातविण्मूत्ररोधिनीम्।
प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम्।। ६८।।

वाताष्ठीला को ही प्रत्यष्ठीला कहते हैं, जब इसमें पीड़ा होने लगे, अधोवायु, विष्ठा, मूत्र को अधिक रोके और गाँठ पेट में तिरछी रहे।। ६८।।

बस्तिवात का लक्षण

मारुतेऽनुगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्तते।
विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि।। ६९।।

जब पेडू पर पवन सीधा रहता है, तो मूत्र बिना पीड़ा किए अधिकता से उतरता है। जब उसके विपरीत (उलटा-पुलटा) चलता है, तो अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्रादि अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।। ६९।।

कम्पवायु का लक्षण

सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः।

जिस रोग में शिर से लेकर पैर तक सब अङ्ग काँपा करें, उसे कम्पवायु रोग कहते हैं।

खल्ली रोग का लक्षण

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटनी।। ७०।।

जिस रोग में पाद, जङ्घा, ऊरु और कलाई में कूटने की-सी पीड़ा हो, उसे खल्ली कहते हैं।। ७०।।

ऊर्ध्ववात का लक्षण

अधःप्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन च।
करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातः स उच्यते।। ७१।।

नीचे से रुककर समानवायु, कफ और वात के स्वहेतुओं से कुपित हुआ बारम्बार डकार आना रोग को उत्पन्न करता है। उसको ऊर्ध्ववात कहते हैं।। ७१।।

स्थाननामादि से वातव्याधि

स्थाननामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत्।
सर्वेष्वेषु च संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत्।। ७२।।

जिन वात रोगों के लक्षण नहीं कहे गये हैं, उसको स्थान, नाम, आकृति और चिह्नों से जान लेना चाहिए और सभी में पित्तादिकों के संसर्गों की कल्पना कर लेनी चाहिए।। ७२।।

वात रोगों के साध्यासाध्यत्व

हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ।
कालेन महता वाता यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा।। ७३।।
नवान्बलवतस्त्वेतान् साधयेन्निरुपद्रवान्।। ७४।।

हनुस्तम्भ, अर्दित, आक्षेपक, पक्षाघात और अपतानक, ये रोग जब बहुत दिनों के हो जाते हैं तो बड़े कठिन यत्न से कभी-कभी साध्य भी हो जाते हैं, असाध्य तो होते ही हैं। जब ये रोग नये हों, बलवान् पुरुष को हों, और कोई उपद्रव भी इनके सङ्ग न हो, तब जो औषध इनमें किया जाएगा, वह साध्य ही होगा।। ७३-७४।।

वात के उपद्रवों के लक्षण

विसर्पदाहरुक्सङ्गमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ।
क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः।। ७५।।

विसर्प अर्थात् रोग फैलता जाता हो, जिसमें दाह बढ़ती हो, पीड़ा अधिक होती हो, मल-मूत्र का निरोध हो, मूर्च्छा आ जाती हो, अग्नि की मन्दता हो, मांस तथा बल क्षीण हो गये हों, ऐसे उपद्रवों से युक्त रोगी को पक्षाघातादि रोग अवश्य मार डालते हैं।। ७५।।

वातरोग के असाध्य लक्षण

शूनं सुप्तत्वचम्भग्नङ्कम्पाध्माननिपीडितम्।
रुजार्तिमन्तञ्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत्।। ७६।।

जिस रोगी का शरीर अति फूल गया हो, जिसकी त्वचा में छूने से न जान पड़े, हाड़ टूट गए हों, सब शरीर काँपता हो, पेट फूल गया हो और पीड़ा से अधिक पीड़ित हो, ऐसे रोगी को वातव्याधि मार ही डालती है।। ७६।।

प्रकृतिस्थित वात के कार्य

अव्याहता गतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः।
वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम्।। ७७।।

इति वातव्याधिनिदानं त्रयोविंशोऽध्यायः।। २३।।

जिस पुरुष का वायु अव्याहतगति हो अर्थात् बिना रोकटोक अपने यथार्थ रूप से चलता हो, अपने स्थान में स्थित रहे, अपने स्वभाव पर स्थित रहे और उसे कोई रोग कभी न हुआ हो तो वह प्राणी अवश्य सौ वर्ष तक जीता रहता है।। ७७।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे वातव्याधिनिदानं त्रयोविंशोऽध्यायः।। २३।।

अथ वातरक्तरोगनिदानम्

वातरक्त का निदान

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः।
क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः।। १।।
कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः ।
दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ।। २।।
विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
प्रायशस्सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम्।। ३।।
स्थूलानां सुखिनां चापि वातरक्तं प्रकुप्यति।। ४।।

दोहा— वातरक्त को कहत कवि, चौबिसवीं महं बात।
ध्यान लाइ ताकौ सुनहु, सब प्रकार हे तात।। १।।

लवण, खटाई, कड़वा, खारा, चिक्वण, उष्ण, पदार्थों के भोजन से, जल-चारी जीवों के मांस के खाने से, सूखे और कच्चे मांस के खाने से, जल के समीप रहने वाले जीवों के मांस के खाने से, तिल की खलीा और मूली के खाने से, कुलथी, उड़द, सेम, विविध प्रकार के शाक, मांस चटनी, गन्ने का रस, सफेद दही, दही का तोड़, सौवीर मद्य, सिरका, मट्ठा, मदिरा और किसी पत्ते आदि को भूनकर गारे हुए रस के खाने से, विरुद्ध भोजन से, क्रोध करने से, दिन में सोने से, रात्रि में जागने से, मिथ्याहार-विहार करने वाले सुकुमार लोगों को, मोटे तथा सुखी मनुष्यों को, वातरक्त कोप करता है।। १-४।।

वातरक्त की संप्राप्ति

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च
विदाह्यन्नं स विदाहोऽशनस्य।
कृष्णं रक्तं विदहत्याशु दुष्टं
स्रस्तं शीघ्रं पादयोश्चीयते तु।
तत्संयुक्तं वायुना दूषितेन
तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम्।। ५।।

हाथी, घोड़े और ऊँटों पर चढ़ने वालों का, दाहकारी अन्न खाने वालों का, और उष्ण अन्न खाने वालों का, रक्त बहुत शीघ्र काला और दुष्ट हो, उनके अङ्गों को जलाता हुआ पैर की ओर उतरता है। वह दूषित वायु से मिलकर अतिदुष्ट हो जाता है। उस वायु की प्रबलता के कारण, इस रोग को वातरक्त कहते हैं।। ५।।

वातरक्त का पूर्वरूप

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक्।
सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिडकोद्गमः।। ६।।
जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु।
निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च।। ७।।
कण्डूः सन्धिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति चासकृत्।
वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम्।। ८।।

अधिक पसीना होना, या कुछ भी पसीना न होना, देह काला हो जाना, देह में छूने से कुछ न विदित होना, घाव लगने से अधिक पीड़ा होना, जोड़ों में शिथिलता, आलस्य और ग्लानि, देह में फुन्सी निकलना, जानु, जाँघ, ऊरु, कटि, कन्धा, हाथ, पैर और अङ्गों के जोड़ों में कोंचने की-सी पीड़ा, फरकना, हड़फूटन, गुरुता, छूने पर न जान पड़ना, जोड़ों में खजुली, पीड़ा, दाह होकर फिर झट मिट जाना, देह का रंग बिगड़ जाना और मण्डल अर्थात् चकत्तों का पड़ना, वातरक्त जब होने वाला होता है, तब प्रथम ये सब होते हैं।। ६-७।।

वाताधिक्य वातरक्त के लक्षण

वातेऽधिकेऽधिकन्तत्र शूलस्फुरणतोदनम्।
शोथश्च रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावतावृद्धिहानयः।। ९।।
धमन्यङ्गुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक्।
शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः।। १०।।

जब वातरक्त रोग में वात की अधिकता होती है, तो शरीर में शूल, फरकना, कोंचना, शोथ, रुखाई, श्यामता, कालापन का क्षण में बढ़ना, क्षण में घटना, नस, अंगुली और जोड़ों में सङ्कोच, अङ्गों का जकड़ जाना, पीड़ा, शीत पदार्थ और जाड़े से दुःख होना, शीत से देह का तन उठना, कम्प होना और छूने पर स्पर्श न जान पड़ना, ये सब उपद्रव होते हैं।। ९-१०।।

रक्ताधिक्य वातरक्त के लक्षण

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते।
स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः।। ११।।

जब वातरक्त रोग में रक्त अधिक होता है, तो शरीर में शोथ, अति पीड़ा, कोंचना, ताम्र रङ्ग के शोथ से रुधिर बहना और सुहराने की-सी पीड़ा होती है, चिकनी व रूखी वस्तु से पीड़ा नहीं मिटती, उस शोथ में खजुली भी होती है, मुख में पानी छूटा करता है।। ११।।

पित्ताधिक्य वातरक्त के लक्षण

पित्ते विदाहः सम्मोहः स्वेदो मूर्च्छा मदः सतृट्।
स्पर्शाक्षमत्वं रुग्रागः शोथः पाको भृशोष्णता।। १२।।

पित्ताधिक वातरक्त में दाह, सम्मोह, पसीना, मूर्च्छा, मद, प्यास, स्पर्श न सहजाना, पीड़ा, ललाई, शोथ, पकना और अति उष्णता, ये सब चिह्न होते हैं।। १२।।

कफाधिक्य वातरक्त के लक्षण

कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ।
कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वं सर्वलिङ्गं च सङ्करात्।। १३।।

कफाधिक वातरक्त में शीतलता, गुरुता, छूने पर न जान पड़ना, चिकनापन, अतिशीतता, खजुली और थोड़ी पीड़ा होती है। इसी प्रकार दो-दो दोषों के मिलने से द्वन्द्वज और तीनों दोषों के मिलने से सन्निपातज वातरक्त होता है।। १३।।

वातरक्त का याप्यत्व और असाध्यत्व लक्षण

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि।
आखोर्विषमिव क्रुद्धन्तद्देहमनुसर्पति।। १४।।
आजानु स्फुटितं यच्च प्रभिन्नम्प्रस्रुतञ्च यत्।
उपद्रवैर्यच्च जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः।
वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम्।। १५।।

जब पैरों की जड़ से वातरक्त चढ़कर कदाचित् हाथों तक पहुँच जाए तो वह मूस के विष के समान देह भर में फैल जाता है। गाँठ तक जाने से जिसकी सब त्वचा फट जाए और बल-मांस क्षय आदि उपद्रवों से युक्त हो, ऐसा वातरक्त असाध्य होता है। वर्ष के भीतर का हो, और ऊपर कहे फट जाने आदि लक्षण न हों, तो साध्य होता है, नहीं तो असाध्य होता है।।१४-१५।।

वातरक्त के उपद्रव

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ।
सम्मूर्च्छामदरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ।। १६।।
हिक्कापाङ्गुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः।। १७।।
अङ्गुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ।
एतैरुपद्रवैर्युक्तम्मोहेनैकेन वापि यत्।। १८।।

नींद न आना, अरुचि, श्वास, मांस गलना, माथा जकड़ना, नसों का तन जाना, मूर्च्छा, थोड़ी पीड़ा, पिपासा, ज्वर, मोह, काँपना, हिचकी, पङ्गुता, रोग का फैलना, पकना, कोंचना, भ्रम और ग्लानि, ये सब उपद्रव होते हैं। अङ्गुलियों का टेढ़ा हो जाना, फोड़ा होना, दाह, मर्म स्थानों में पीड़ा और गाँठियों में गाँठियों का होना, इन उपद्रवों के सहित वातरक्त असाध्य होता है। अथवा एक मोह ही से युक्त हो, तो भी असाध्य होता है।। १६-१८।।

असाध्य याप्य और साध्य का विचार

वातरक्तमसाध्यं स्याद्यच्चातिक्रान्तवत्सरम्।
अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम्।। १९।।
एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम्।
त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः।। २०।।

इति वातरक्तरोगनिदानं चतुर्विंशोऽध्यायः।। २४।।

जो वातरक्त एक वर्ष से अधिक का हो जाता है, वह असाध्य है। जिसमें सब उपद्रव न हों, कुछ थोड़े हों, तो वह याप्य अर्थात् औषध करने के योग्य होता है। परन्तु कष्टसाध्य होता है। जिसमें उपद्रव कोई नहीं होते, वह साध्य है। जिसमें वातपित्तादिकों में से किसी एक ही दोष से युक्त रक्त होता है, वह साध्य होता है। जिसमें दो दोष होते हैं, परन्तु नवीन होता है, वह कष्ट-साध्य होता है। जिसमें तीन दोष मिले हुए होते हैं, वह असाध्य होता है। जिसमें सब उपद्रव होते हैं, वह भी असाध्य होता है।। १९-२०।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे वातरक्तनिदानं चतुर्विंशोऽध्यायः।। २४।।

अथोरुस्तम्भरोगनिदानम्

ऊरुस्तम्भ की संप्राप्ति और सामान्य लक्षण

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ।
जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्रोधस्वप्नजागरैः।। १।।
सश्लेष्ममेदः पवनः साममत्यर्थसञ्चितम्।
अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते।। २।।
सक्थ्यस्थिनी प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन च।
तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ।। ३।।
परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ।
ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ।। ४।।

संयुक्तौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः।
तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे ।। ५।।

दोहा— उरुस्तंभ को कहत कबि, पच्चिसवीं महं भेद।
वैद्य न पावत जाहि लखि, नेक कष्ट ओ खेद।। १।।

शीत, उष्ण, गीले, सूखे, गुरु और चिकने इन परस्पर विरुद्ध पदार्थों के भोजन करने से, कच्चा और अधपका पदार्थ खाने से, शक्ति से अधिक ज़ोर करने से, अतिक्रोध करने से, दिन में सोने से, रात्रि भर जागने से, कफ मेदयुक्त वायु अत्यन्त सञ्चित आम और अन्य पित्त आदि दोष को अनादर करके जाङ्घ में प्राप्त होता है। तब जाङ्घ के हाड़ मन्द कफ से भर जाते हैं। उससे जाङ्घों को पवन थाँम लेता है। इससे दोनों जाङ्घें जकड़कर शीतल और निर्जीव हो जाती हैं। ऐसी गुरु हो जाती हैं जैसे दूसरे की हो गई हैं, अपनी नहीं हैं, और उनमें अत्यन्त व्यथा होती हैं, उठाए से उठती नहीं, अङ्गमर्दन से कुछ जान नहीं पड़ता, अचल हो जाती हैं। तन्द्रा आती है, वमन होता है, अरुचि होती है, ज्वर आता है। इन लक्षणों से युक्त पैरों में बड़ा कष्ट होता है, बड़े कष्ट से पैर उठता है, शून्य हो जाता है। इस रोग को 'ऊरुस्तम्भ' कहते हैं। कोई-कोई लोग आढ्यवात कहते हैं।। १-५।।

ऊरुस्तम्भ का पूर्वरूप

प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः।
रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जङ्घोर्वोः सदनं तथा।। ६।।

ऊरुस्तम्भ होने के पूर्व में निद्रा अधिक आती है, चिन्ता बहुत होती है, देह भरभराने लगती है, ज्वर होता है, रोमाञ्च होता है, अरुचि हो जाती है, वमन होने लगता है, जाङ्घ और ठेहुनों में कष्ट होता है।। ६।।

ऊरुस्तम्भ के लक्षण

वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः।
पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा।। ७।।
जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्वा दाहवेदने।
पादश्च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च।। ८।।

संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः।
अन्यस्येव हि संभग्नावूरू पादौ च मन्यते।। ९।।

अज्ञान के कारण वात की शङ्का रहने से, यह रोग अधिक बढ़ जाता है, पैरों में पीड़ा होती है, स्पर्श करने से कुछ विदित नहीं होता है, बड़े कष्ट से पैर उठते हैं, जाङ्घ और ठेहुनों में अति ग्लानि होती है, अथवा निरन्तर दाह सहित पीड़ा बनी रहती है, पैर धरते ही पीड़ा होने लगती है, शीत वस्तु का स्पर्श नहीं जान पड़ता है, पाद स्थिर रहने से पीड़ा होती है, चलने में पीड़ा होती है। धीरे-धीरे चलने का सामर्थ्य ही जाता रहता है, पाद ऐसे टूटते हैं कि जब कोई और टिकाकर या उठाकर ले चले तो चले। जब पैरों को बटोरना चाहें तो मानो वे अन्य किसी के हैं। अपने आप उन्हें बटोर न सकें।। ७-८।।

ऊरुस्तम्भ के साध्यासाध्य लक्षण

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत्।
ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात् साधयेदन्यथा नवम्।। १०।।

इत्यूरुस्तम्भरोगनिदानं पञ्चविंशोऽध्यायः।। २५।।

जब दाह के सहित पीड़ा हो, मानों कोई कोंचता है, ऐसा जान पड़े, और पुरुष कांपने लगे, तब यह ऊरुस्तम्भ रोग मार ही डालता है। जब ये लक्षण न हों, और रोग नवीन हो बहुत पुराना न हो गया हो, तो साध्य जानना चाहिए।।१०।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे ऊरुस्तम्भनिदानं पञ्चविंशोऽध्यायः।। २५।।

अथामवातरोगनिदानम्

आमवात की निदानपूर्वक संप्राप्ति

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा।। १।।

वायुना प्रेरितो ह्याम: श्लेष्मस्थानं प्रधावति।
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनी: प्रतिपद्यते।। २।।
वातपित्तकफैर्भूयो दूषित: सोऽन्नजो रस:।
स्त्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिल:।। ३।।
जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम्।
व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुण:।। ४।।
युगपत्कुपितावन्तस्त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ।
स्तब्धञ्च कुरुतो गात्रमामवात: स उच्यते।। ५।।

दोहा— आमवात के भेद सब, वर्णन करत निदान।
सज्जन जन सुनिहैं, अवशि, हृदय राखि शुभ ग्यान।। १।।

विरुद्ध आहार करने वाले, मन्दाग्नि वाले, सदा बैठे रहने वाले और चिकना पदार्थ खाने वाले, और अधिक दण्ड आदि परिश्रम करने वाले पुरुष को, वायु से प्रेरित आम, श्लेष्मा के स्थान, कण्ठ, छाती, शिर और सन्धियों में दौड़ने लगता है। फिर वहाँ से अत्यन्त विदग्ध होकर सब नसों में दौड़ता है। फिर वात, पित्त और कफों से दूषित होकर वह अन्नज-रस सब छिद्रों को भर देता है। उसके रङ्ग नाना प्रकार के हो जाते हैं, और अत्यन्त चिकना हो जाता है। फिर वह मन्दाग्नि को करता है। हृदय को गुरु कर देता है। यह सब व्याधियों के रहने का स्थान आमवात रोग कहलाता है। यह बड़ा दारुणरोग है। एक ही सङ्ग कफ और वात कोप करके अन्त:करण में प्रवेश कर फिर त्रिक्स्थान में जाकर सब नसों को अचल कर देते हैं। इसी रोग को आमवात कहते हैं।। १-५।।

आमवात के लक्षण

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा ह्यालस्यं गौरवं ज्वर:।
अपाक: शून्यताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम्।
स कष्ट: सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत्।। ६।।
हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ।। ७।।

करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते।।
स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः।। ८।।
जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचि गौरवम्।।
उत्साहहानिं वैरस्यं दाहञ्च बहुमूत्रताम्।। ९।।
कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम्।
तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धताम्।
जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान्।। १०।।

शरीर ऐंठना, अरुचि, अधिक तृष्णा, आलस्य, उदर में गुरुता, ज्वर होना, अन्न न पचना, अङ्गों की शून्यता, आमवात के ये लक्षण हैं। यह आमवात जब कोप करता है तो सब रोगों से अधिक दुःख देता है। हाथ, पैर, शिर, घुटना, कटि, गाँठ, जाँघ, फीली और सब जोड़ों में अत्यन्त पीड़ा करता है। जिस अङ्ग में उसका दोष अधिक रहता है, उस अङ्ग में शोथ हो आता है। वहाँ बड़ी व्यथा होने लगती है, बीछियों के काटने के ऐसी पीड़ा होने लगती है। यह रोग अग्नि को मन्द कर देता है, मुख से पानी छूटने लगता है, अन्न में अरुचि हो जाती है, उदर और सब अङ्ग भारी लगते हैं, उत्साह जाता रहता है, मुख में किसी वस्तु का स्वाद नहीं जान पड़ता, दाह उत्पन्न होता है, और मूत्र अधिक होता है। कोंखा कड़ा हो जाता है, शूल उठा करता है, निद्रा कभी आती ही नहीं, पिपासा अधिक लगती है, वान्त होता है, भ्रम और मूर्च्छा होती है, हृदय जकड़ जाता है, देह भारी हो जाती है, आँतें गुड़गुड़ाने लगती हैं, पेट फूला रहता है। इनको छोड़ और भी बहुत से दुःखद उपद्रव होते हैं।। ६-१०।।

आमवात के विशेष लक्षण

पित्तात्सदाहरागञ्च सशूलं पवनानुगम्।
स्तिमितं गुरुकण्डूकं कफजुष्टं तमादिशेत्।। ११।।

पित्त सम्बन्धी आमवात में दाह सहित ललाई होती है। वायु सम्बन्धी आमवात में शूल उठती है। कफ सम्बन्धी आमवात में शरीर शीतल बना रहता है, गुरुता होती है और खजुली होती है।। ११।।

आमवात के साध्यासाध्य लक्षण

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते।
सर्वदेहचरः शोथः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः ।। १२।।

इत्यामवातरोगनिदानं षड्विंशोऽध्यायः।। २६।।

एक दोष से युक्त आमवात साध्य होता है, दो दोषों से युक्त कष्टसाध्य होता है और जिसमें सब देह भर में शोथ आ गया हो वह सन्निपातज आमवात असाध्य होता है।। १२।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे आमवातनिदानं षड्विंशोऽध्यायः।। २६।।

अथ शूलरोगनिदानम्

शूल का निदान

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत्।
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः।। १।।

दोहा— सत्ताइसवीं महं कहत कवि, शूलरोग की रीति।
वैद्यन को अस उचित है, यहि पैं राखहिं प्रीति।। १।।

वात, पित्त, कफ दोषों से अलग तीन, सन्निपात से एक, आम से एक, और दो-दो से तीन इस प्रकार के शूल होते हैं। सब प्रकार के शूलों में बहुधा वात प्रधान होता है।। १।।

वातशूल की संप्राप्ति और लक्षण

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च
प्रजागराच्छीतजलातिपानात्।
कलायमुद्गाढकिकोरदूषा-
दत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात्।। २।।
कषायतिक्तातिविरूढजान्न-
विरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात्।

विट्शुक्रमूत्रानिलसन्निरोधा-
च्छोकोपवासादतिहास्यभाष्यात्।। ३।।
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं
हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे ।
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च
शीते च कोपं समुपैति गाढम्।। ४।।
मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपी
विड्वातसंस्तम्भनतोदभेदैः ।
संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः
स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति।। ५।।

व्यायाम (मल्लयुद्धादि) करने से, घोड़े और रथ पर अधिक चढ़ने से, अतिमैथुन करने से, रात्रि में बहुत जागने से, मटर, केराव, मूँग, अरहर, कोदों आदि अति रूखे अन्नों के खाने से, भोजन करने पर तुरन्त फिर भोजन करने से, चोट लगने से, कसैली वस्तु, तीखी वस्तु, अंखुआ निकला अन्न, विरुद्ध पदार्थ, सूखा मांस और सूखा शाक खाने से, मल, मूत्र, वीर्य और अधोवायु के रोकने से, शोक करने से, उपवास करने से, तथा बहुत हँस-हँस कर बात करने से, वायु प्रवृद्ध होकर हृदय, पीठ, पसुली, कटि और पेडू में शूल उत्पन्न करता है। आहार पच जाने पर, सन्ध्या समय में, वर्षा काल में, और शीतकाल में, बहुधा शूल अधिक कोप करता है। बार-बार यह रोग शान्त भी हो जाता है, और कोप भी करता रहता है। मल, मूत्र, और अधोवायु के रोकने से कोंचने और फटने लगता है। पसीना होने से, उबटन लगाने से, मर्दन करने से और चिकनी तथा गरम वस्तु के खाने से कुछ शान्त हो जाता है।। २-५।।

पित्तशूल की संप्राप्ति और लक्षण

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैल-
निष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः।

कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः
क्रोधानलायासरविप्रतापैः ।। ६।।
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः
पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम्।
तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां
सस्वेदमूर्च्छाभ्रमचोषयुक्तम् ।। ७।।

मध्यन्दिने कुप्यति चार्धरात्रे
निदाघकाले जलदात्यये च।
शीते च शीतैस्समुपैति शान्तिं
सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च।। ८।।

क्षार पदार्थों के खाने से, अतितीक्ष्ण लाल-मिरचादि खाने से, उष्ण पदार्थों के खाने से, बाँस आदि के अंकुर जो अत्यन्त विदाही होते हैं उनके खाने से, तेल पीने से, सेम आदि शाक खाने से, खली पीना खाने से, कुलथी खाने से, किसी का यूष पीने से, कड़वा-खट्टा खाने से, काँजी पान करने से, मदिरा के विकार, सिरका आदि पीने से, क्रोध करने से, अधिक अग्नि तापने से, धूप में अधिक फिरने से, अत्यन्त मैथुन करने से, और जला-भुना अन्न खाने से, पित्त कोप करके अति शीघ्र शूल को उत्पन्न करता है। तब तृषा, मोह, दाह तथा नाभि में पीड़ा होने लगती है। पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, कोंचना होता है। यह शूल दोपहर को कोप करता है, अर्धरात्रि में कोप करता है, ग्रीष्म ऋतु में, वर्षा बीतने पर क्वार के महीने में और शीतकाल में कोप करता है, शीत और मीठे पदार्थों के खाने से तथा सुस्वादु ठंडे पदार्थों के खाने से शान्त होता है।। ६-८।।

कफशूल की संप्राप्ति और लक्षण

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारै-
र्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः।

अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च
श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम्।। ९।।
हृल्लासकाससदनारुचिसंप्रसेकै-
रामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः।
भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं
सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च।। १०।।

जल समीप के पक्षी या मछलियों का मांस खाने से, नई ब्याई गाय-भैंस का मट्ठा, दही, दूध, घी आदि खाने से, मांस और गन्ने का रस खाने तथा पीने से, पीठी के बने पदार्थ या खिचड़ी खाने से, तिल और पूड़ी खाने से, अथवा अन्य कफकारक पदार्थों के खाने से, श्लेष्मा कोप करके शूल को उत्पन्न करता है। इस शूल में बहुधा जी मचलाना, खाँसी, देह टूटना, अरुचि, मुख में पानी छूटना, पेट में गजबज, शिर भारी रहना, ये लक्षण होते हैं। भोजन के पीछे सदा देह में अधिक पीड़ा होती है। सूर्योदय के समय जाड़े में और वसन्त ऋतु में अधिक कोप करता है।। ९-१०।।

सन्निपात शूल के लक्षण

सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं
विद्याद्भिषक् सर्वभवं हि शूलम्।
सुकष्टमेनं विषवज्रतुल्यं
विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।। ११।।

जिसमें वात, पित्त और कफ तीनों के लक्षण मिलें, उसे तीनों दोषों से मिलने के कारण सन्निपात शूल जाने। यह अतिकष्टदायक विष और वज्र के तुल्य होता है। इससे वैद्य लोग इसे त्याज्य कहते हैं।। ११।।

आमशूल के लक्षण

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्व-
स्तैमित्यकानाहकफप्रसेकैः।
कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्ग-
मामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति।। १२।।

पेट गुड़गुड़ाना, जी मचलाना, वमन होना, शिर गुरु रहना, मन्दता, उदर फूलना और कफ का वेग अधिक रहना, इन लक्षणों से युक्त अथवा कफ के लक्षणों से युक्त शूल को आमशूल कहते हैं।। १२।।

द्वन्द्वजशूल के लक्षण

द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम्।
बस्तौ हृत्कण्ठपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः।। १३।।
कुक्षौ हृन्नाभिमध्ये तु स शूलः कफपैत्तिकः।
दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः।। १४।।

जो दो दोषों से उत्पन्न होता है, उसे द्विदोषज शूल कहते हैं। उनमें भी जिसमें पेड़ू, हृदय, गला और पसलियों में शूल होता है, उसे कफ-वातिक शूल कहते हैं। जिसमें कोखा, हृदय और नाभि में शूल हो, उसे कफ-पैत्तिक कहते हैं। जिसमें दाह और ज्वर होता है, वह वात-पैत्तिक शूल कहलाता है।। १३-१४।।

शूल के साध्यासाध्य लक्षण

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः।
सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः।। १५।।

इति शूलरोगनिदानं सप्तविंशोऽध्यायः।। २७।।

एक दोष से उत्पन्न शूल साध्य होता है। दो दोषों से उत्पन्न शूल कष्टसाध्य होता है। तीनों दोषों से उत्पन्न शूल असाध्य होता है। जो पीड़ा, पिपासा, मूर्च्छा, पेट फूलना, भारी होना, अरुचि, खाँसी, श्वास और हिचकी, इन उपद्रवों के सहित शूल होता है, वह भी असाध्य होता है।। १५।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे शूलरोगनिदानं सप्तविंशोऽध्यायः।। २७।।

अथ परिणामशूलरोगनिदानम्

परिणामशूल के सामान्य लक्षण

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तदा
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद् बली।। १।।
भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम्।
तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते।। २।।

रोला— परिणाम शूल को भेद, अट्ठाइस में कह्यो अखेद।
जानै जो वैद वाहि, कीरति मिले सु ताहि।। १।।

अपने कारणों से कुपित वायु जब कफ और पित्त के निकट जाकर, उनको आच्छादित करके बली हो जाता है तो शूलकारक होता है। फिर अन्न पचने के समय वही शूल करता है, इसी को परिणामज शूल कहते हैं। उसका लक्षण भी यह संक्षेप रीति से किया गया है।। १-२।।

वातिक परिणामशूल के लक्षण

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवेपनैः।
स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक्।। ३।।

जो पेट का फूलना, गुड़गुड़ाना, मल-मूत्र का अवरोध, अप्रीति और काँपना, इन कारणों से उत्पन्न होता है तथा चिकनी और उष्णवस्तु के खाने से कुछ शान्त हो जाता है, वैद्य उसे वातिक शूल कहते हैं।। ३।।

पैत्तिक परिणामशूल का लक्षण

तृष्णादाहारुचिस्वेदं कट्वम्ललवणोत्तरम्।
शूलं शीतसमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद्बुधः।। ४।।

जिस शूल में तृष्णा, दाह, अरुचि और पसीना, ये लक्षण होते हैं, जो कड़वा, खट्टा और खारी इन वस्तुओं से बढ़ता है और शीतल पदार्थों से शान्त होता है, उसे पैत्तिक परिणामशूल कहते हैं।। ४।।

श्लैष्मिक परिणामशूल का लक्षण

छर्दिहृल्लाससंमोहं स्वल्परुग्दीर्घसंततिः।
कटुतिक्तोपशान्तिश्च ज्ञेयं तच्च कफात्मकम्।। ५।।

जो शूल वमन, जी मचलाना, इन्द्रियों में मोह होना, थोड़ी पीड़ा, शूल अधिक होना आदि उपद्रवों से युक्त होता है और कड़वी तथा तिक्त वस्तु से जिसकी शान्ति होती हो, उस शूल को कफ परिणामशूल कहते हैं।। ५।।

द्विदोषज व त्रिदोषज परिणामशूल के लक्षण

संसृष्टं लक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत्।
त्रिदोषजमसाध्यं स्यात् क्षीणमांसबलानलम्।। ६।।

मिले हुए लक्षण कों जानकर द्विदोषज परिणामशूल की कल्पना करना चाहिए। जिसमें तीनों दोष मिले हों, उसे त्रिदोषज परिणामशूल जाने, यही असाध्य होता है। मांस, बल और अग्नि जिस रोगी के क्षीण हो गए हों, उस को अत्यन्त असाध्य जाने।। ६।।

अन्नद्रव शूल का लक्षण

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते।
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च।
न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः।। ७।।

इति परिणामशूलरोगनिदानमष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

अन्न पचते समय या पच जाने पर, अजीर्ण के समय, सदा शूल बना रहे, पथ्य खाने पर और अपथ्य खाने पर, भोजन करने पर और भूखे रहने पर, कभी शान्त न हो, कुछ शान्त भी हो तो नियम से न शान्त हो, कभी किसी समय, कभी किसी समय शान्त हो, उस शूल को अन्नद्रवशूल कहते हैं।। ७।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे परिणामशूलान्नद्रवशूलनिदान-
मष्टाविंशोऽध्यायः।। २८।।

अथोदावर्तरोगनिदानम्

उदावर्त की उत्पत्ति

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसम्भवः।। १ ।।

दोहा— उदावर्त की कहत कवि, उन्तिसवीं महं बात।
जो याको जानै भिषक्, पावन यश सो तात।। १ ।।

वायु, विष्ठा, मूत्र, जँभाई, आँसू, छींक, डकार, वमन, शुक्रपात, क्षुधा, तृष्णा, ऊर्ध्वश्वास और निद्रा, जो पुरुष रोकता है, उसे उदावर्त रोग होता है।। १ ।।

अधोवायु निरोध का उदावर्त

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो ध्मानं क्लमो रुजाः।
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात्।। २ ।।

अधोवायु के रोकने से वात, मूत्र, और पुरीष की रुकावट होती है, पेट फूलता है, ग्लानि होती है, पेट में पीड़ा होती है और पेट में अन्य वातज रोग होते हैं।। २ ।।

पुरीष निरोध का उदावर्त

आटोपशूलौ परिकर्तिका च
सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः।
पुरीषमास्यादथवा निरेति
पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य।। ३ ।।

विष्ठा के वेग को रोकने से, पेट गुड़गुड़ाता है, शूल उठता है, गुदा में कतरनी के कतरने की-सी पीड़ा होती है, मल का अवरोध होता है, ऊपर को पवन चढ़ता है, डकार आती है और मुख की ओर से भी मल निकल पड़ता है।। ३ ।।

मूत्रनिरोध का उदावर्त

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा।
विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिङ्गम्मूत्रनिग्रहे।। ४।।

मूत्र के वेग को रोकने से पेडू और लिङ्ग में शूल उठता है, बड़ी कठिनता से मूत्र उतरता है, शिर में पीड़ा होती है, देह झुक जाता है, पट्ठे का जोड़ जकड़ जाता है और पेट फूलता है।। ४।।

जृम्भानिरोध का उदावर्त

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा
जृम्भोपघातात्पवनात्मकास्स्युः।
तथाऽक्षिनासावदनामयाश्च
भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः।। ५।।

जँभाई को रोकने से गर्दन और गले की नसें तन जाती हैं, शिर में पीड़ा होती है और अन्य वातज रोग भी होते हैं। ऐसे ही नेत्र, नासिका, मुख और कानों में भी बहुत से वातज रोग होते हैं।। ५।।

अश्रुनिरोध का उदावर्त

आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं वा
नेत्रोदकम्प्राप्तममुञ्चतो हि।
शिरोगुरुत्वन्नयनामयाश्च
भवन्ति तीव्रास्सह पीनसेन।। ६।।

आनन्द से अथवा शोक से उत्पन्न आँसुओं को जो हठ से रोक लेता है, उसके शिर में पीड़ा होती है, नेत्रों में रोग होते हैं, बड़ी तीव्र व्यथा होती है तथा पीनस रोग होता है।। ६।।

छींक रोकने का उदावर्त

मन्यास्तम्भः शिरश्शूलमर्दितार्धावभेदकौ।
इन्द्रियाणाञ्च दौर्बल्यं क्षवथोस्स्याद्विधारणात्।। ७।।

छींक को रोकने से, गर्दन तन जाती है, शिर में पीड़ा होती है, आधा मुख टेड़ा हो जाता है, अधकपारी पीड़ा होती है और सब इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं।। ७।।

डकार रोकने का उदावर्त

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः
कूजश्च वायोरथवाऽप्रवृत्तिः।
उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति
घोरा विकाराः पवनप्रसूताः।। ८।।

डकार को रोकने से, गला और मुख भरा-सा हो जाता है, अत्यन्त कोंचने की-सी पीड़ा होने लगती है, पेट घुलघुलाने लगता है, वायु की प्रवृत्ति बाहर को होती है, जिससे श्वासादिकों की रुकावट होती है और पवन सम्बन्धी घोर विकार उत्पन्न होते हैं।। ८।।

वमन रोकने का उदावर्त

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः।
कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः।। ९।।

ओकाई को रोकने से, खजुली होती है, ददरा पड़ जाते हैं, अरुचि होती है, व्यङ्ग (कोपल पर काले धब्बे) होता है, शोथ होता है, पाण्डुरोग और ज्वर होता है, कुष्ठ रोग होता है, जी मचलाता है, विसर्परोग होता है और मकड़ी आदि होते हैं।। ९।।

शुक्र रोकने का उदावर्त

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च।।
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकारा विहते च शुक्रे।। १०।।

मैथुन करने के समय और अन्य किसी समय वीर्य न गिरने देने से मूत्राशय में, गुदा में और अण्डकोश में सूजन हो आती है, पीड़ा होती है, मूत्र नहीं उतरता, चिलक होती है, शुक्राश्मरी (वीर्य की पथरी) हो जाती है और फिर प्रमेह हो जाता है।। १०।।

क्षुधा और तृषा रोकने का उदावर्त

तन्द्राङ्गमर्दावरुचिश्श्रमश्च
क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः।
कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोध-
स्तृष्णाभिघाताद्धृदयव्यथा च।। ११।।

भूख रोकने से, तन्द्रा, देह ऐंठना, अरुचि, बिना श्रम के थकावट और दृष्टि की दुर्बलता होती है। पिपासा को रोकने से, गला और मुख सूख जाता है, कान से कम सुनायी पड़ता है। हृदय में पीड़ा होने लगती है।। ११।।

श्वास और निद्रा रोकने का उदावर्त

श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण
हृद्रोगमोहावथवाऽपि गुल्मः।
जृम्भाऽङ्गमर्दोऽक्षिशिरोऽभिजाड्यं
निद्राभिघातादथवाऽपि तन्द्रा।। १२।।

थका हुआ मनुष्य, जब अपने श्वासों को हठ से रोक लेता है तो उससे हृदय में रोग होता है, मोह अथवा कोई गुल्म देह में निकल आता है। निद्रा के रोकने से जँभाई, अङ्गों का टूटना, नेत्र तथा शिर में जड़ता और तन्द्रा होती है।। १२।।

कुपितवातजन्य उदावर्त

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः।
भोजनैः कुपितस्सद्य उदावर्तं करोति हि।। १३।।

रूखा, कसैला, कड़वा और तीखा भोजन करने से कोष्ठ में प्राप्त वायु कुपित होकर उदावर्त रोग को उत्पन्न करता है।। १३।।

उदावर्त की संप्राप्ति और लक्षण

वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै।
स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत्।। १४।।

ततो हृद्बस्तिशूलार्तो हृल्लासारतिपीडितः।
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः।। १५।।
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहवमिज्वरान् ।
तृष्णाहिक्काशिरोरोगमनः श्रवणविभ्रमान्।। १६।।
बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातसम्भवान्।। १७।।

इत्युदावर्तरोगनिदानमेकोनत्रिंशोध्यायः।। २९।।

वात, मूत्र, मल, आँसू, कफ और मेदाओं के बहने के मार्गों को बन्द करके, पवन मल को सुखा देता है। तब रोगी हृदय और पेडू की शूल से पीड़ित होता है, जी मचलाने लगता है, सुस्ती आ जाती है, वात, मल और मूत्र बड़े कष्ट से उतरते हैं। श्वास, खाँसी, नाक बहना, दाह होना, मोह, तृष्णा, ज्वर, वमन, हिचकी, शिर पीड़ा, मन की भ्रान्ति और अन्य बहुत से वातज-विकार उत्पन्न होते हैं।। १४-१७।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे उदावर्तनिदानमेकोनत्रिंशोऽध्यायः।। २९।।

अथानाहरोगनिदानम्

आनाह का लक्षण

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण
भूयो विबद्धं विगुणानिलेन।
प्रवर्तमानन्न यथास्वमेनं
विकारमानाहमुदाहरन्ति ।। १।।

सोरठा— कह आनाह निदान, तिसवीं महं भलि भाँति कवि।
ताहि जानि सुख खानि, लहैं सदा सज्जन भिषज।। १।।

आम, मल और मूत्र, इकट्ठे होकर कुपित वायु से बहुधा बँधकर सूख जाते हैं। इसलिए अपने मार्ग से यथार्थ रूप में बाहर नहीं आ पाते। इस रोग को आंनाह कहते हैं।। १।।

आमज आनाह का लक्षण

तस्मिन्भवन्त्यामसमुद्भवे तु
तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविकाराः।
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं
हृत्स्तम्भ उद्गारविघातनं च।। २।।

आम से उत्पन्न आनाह रोग में तृष्णा, नाक बहना, शिर में विकार, आमाशय में शूल, अङ्गों में गुरुता, जी मचलाना और डकार न आना, ये उपद्रव होते हैं।। २।।

मलसंचयज आनाह का लक्षण

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे
शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतः वमिश्च।
श्वासश्च पक्वाशयजे भवन्ति
तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि।। ३।।

कमर, पीठ, मूत्र और मल के स्थानों में पीड़ा, मूर्च्छा, मल का वमन और श्वास ये सब लक्षण पक्वाशय से उत्पन्न आनाह रोग में होते हैं। और अलस रोग में जो लक्षण कह आए हैं, वे भी होते हैं।। ३।।

उदावर्त के असाध्य लक्षण

तृष्णार्दितम्परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम्।
शकृद्वमन्तम्मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ।। ४।।

इत्यानाहरोगनिदानं त्रिंशोऽध्यायः।। ३०।।

जब रोगी तृष्णा से पीड़ित हो, बहुत क्लेशित हो, क्षीण शरीर हो, शूलादिकों से युक्त हो और विष्ठा वमन करता हो, ऐसे उदावर्त वाले को बुद्धिमान् वैद्य छोड़ दे, औषधि न करे।। ४।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे उदावर्तानाहनिदानं त्रिंशोऽध्यायः।। ३०।।

अथ गुल्मरोगनिदानम्

गुल्मरोग की संख्या और स्थान

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मङ्कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम्।। १।।
तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः।
हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः।। २।।
वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्तितः।।

सोरठा— गुल्मरोग को भेद, इकतिसवीं महँ कहत कवि।
सुनिये सज्जन लोग, ताहि चित्त एकाग्र करि।। १।।

मिथ्या आहार-विहार करने से दुष्ट वात, पित्त और कफ, कोष्ठ के भीतर पाँच प्रकार के गुल्मों (गाँठियों) को उत्पन्न करते हैं। उसके ये पाँच स्थान हैं—दोनों पसली, हृदय, नाभि और पेडू। हृदय और नाभि के बीच में चलती हुई अथवा अचल जो गोल ग्रन्थि होती है और प्रतिदिन कुछ बढ़ती ही रहती है, उस ग्रन्थि को गुल्मरोग कहते हैं।। १-२।।

गुल्म के पाँच प्रकार

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः।। ३।।

पुरुषों को चार प्रकार के गुल्म होते हैं। पहला वात-पित्त का, दूसरा वात-कफ का, तीसरा कफ-पित्त का और चौथा वात-पित्त-कफ तीनों का। स्त्रियों को पाँच प्रकार के होते हैं। उन्हें इन चारों के अतिरिक्त एक रक्तज गुल्म अधिक होता है।। ३।।

गुल्म का पूर्वरूप

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्ध-
स्तृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।
आटोप आध्मानमपक्तिशक्ति-
रासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम्।। ४।।

गुल्म होने के पूर्व डकार अधिक आती है, मल नहीं उतरता है, अन्न खाने को मन नहीं चलता है, आँतें घुलघुलाती हैं, पेट फूलता है और मन्दाग्नि होती है। ये ही उपद्रव होते हैं।। ४।।

सब गुल्मों के सामान्य लक्षण

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रवातश्चान्त्रविकूजनम्।
आनाहश्चोद्ध्र्ववातश्च सर्वगुल्मेषु लक्षयेत्।। ५।।

अरुचि, कष्ट से मल, मूत्र और अधोवायु का उतरना, आँतों का घुलघुलाना, पेट का फूलना और ऊपर को वायु चढ़ना, ये लक्षण सब प्रकार के गुल्मों में होते हैं।। ५।।

वातज गुल्म का लक्षण

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं
विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च।
शोकोऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च
निरन्नता चानिलगुल्महेतुः।। ६।।

विषम समय पर रूखा अन्न और पान सेवन करने से, अपने से अधिक बल वाले के सङ्ग मल्लयुद्ध करने से, मल, मूत्र और वात के वेगों को रोकने से, अति शोक करने से, अति दस्त होने से और बहुत उपवास करने से वातज-गुल्म होता है।। ६।।

वातज गुल्म का अन्य लक्षण

यः स्थानसंस्थानरुजां विकल्पं
विड्वातसङ्गङ्गलवक्त्रशोषम्।
श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरञ्च
हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजश्च ।। ७।।
करोति जीर्णेऽभ्यधिकं प्रकोपं
भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च।
वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं
कषायतिक्तं कटु चोपशेते।। ८।।

जिस गुल्म में कभी किसी अङ्ग में और कभी किसी अङ्ग में पीड़ा होती है, वह (गुल्म) कभी छोटा, कभी बड़ा हो जाता है। कभी गोल, कभी लम्बा हो जाता है। पीड़ा भी कभी अधिक, कभी कम हो जाती है। मल और वात जिसमें अच्छे प्रकार नहीं होते। गला और मुख जिसमें सूखता रहता है, शरीर जिसमें नीला और लाल हो जाता है, शीतज्वर बना रहता है। हृदय, पसली, कोखा, गर्दन और शिर में पीड़ा रहती है। जो (गुल्म) अन्न पच जाने पर अधिक पीड़ा करता और उछलता है। भोजन करने पर उष्णता से कुछ कोमल हो जाता है, ऐसे गुल्म को वात-प्रधान जाने। इसमें रूखा, कसैला, तीखा और कड़वा पदार्थ खाने से अधिक कष्ट होता है।। ७-८।।

पित्तज गुल्म का लक्षण

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्ष-
क्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ।
आमाभिघातो रुधिरञ्च दुष्टं
पैत्तस्य गुल्मस्य निदानमुक्तम्।। ९।।

कड़वी, खट्टी, तीखी, उष्ण, दाहकारक और रूखी वस्तुओं के खाने से, अति क्रोध करने से, अति मद्य पीने से, घाम (धूप) में अधिक रहने से, अग्नि का अधिक सेवन करने से, जले हुए अन्न के रस के सेवन से, अधिक चोट लगने से और रुधिर दुष्ट हो जाने से पैत्तिक गुल्म होता है।। ९।।

पित्तज गुल्म का अन्य लक्षण

ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः
शूलं महज्जीर्यति भोजने च।
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः
स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम्।। १०।।

पित्तज गुल्म में बहुधा ज्वर बना रहता है, पिपासा लगती है, मुख और शरीर लाल रहता है, भोजन पचने के समय बड़ी पीड़ा होती है, पसीना बहुत होता है, दाह होता है और गुल्म में घाव के समान पीड़ा होती है, इससे छुआ नहीं जाता है, पैत्तिक गुल्म का यही रूप होता है।। १०।।

कफज और सन्निपातज गुल्म के लक्षण

शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनञ्च
सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च।
गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य
सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य।। ११।।

शीत, गुरु, और चिकना पदार्थ खाने से, परिश्रम न करने से, अघाने पर फिर कुछ खा लेने से और दिन में बहुत सोने से, कफज गुल्म उत्पन्न होता है। इन तीनों के लक्षणों से युक्त सन्निपातज गुल्म होता है। यह बड़ा ही दुष्ट होता है।। ११।।

कफज गुल्म का लक्षण

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसाद-
हृल्लासकासारुचिगौरवाणि ।
शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं
गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य।। १२।।

देह ऐसा गीला रहता है जैसे भिजोया हुआ है, शीतज्वर बना रहता है, अङ्ग फटा करते हैं, जी मचलाया करता है, खाँसी आती है, अरुचि रहती है, अङ्ग गुरु बने रहते हैं, शीतलता रहती है, थोड़ी पीड़ा होती है और गुल्म ऊँचा तथा कड़ा रहता है, ये सब कफज गुल्म के लक्षण हैं।। १२।।

द्विदोषजादि गुल्म का लक्षण

निमित्तलिङ्गान्युपलक्ष्य गुल्मे
द्विदोषजे दोषबलाबलञ्च।
व्यामिश्रलिङ्गानपरांस्तु गुल्मां-
स्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम्।। १३।।

द्वन्द्वज गुल्मों में अर्थात् वात-पित्त-कफादिकों में से दो-दो जिसमें मिले हुए होते हैं, उनमें कारण, लक्षण और दोष के बलाबल को देखकर, तब औषधि करनी चाहिए। मिले हुए इन तीनों तथा अन्य प्रकार के गुल्मों में ऐसे ही विचार करना चाहिए।। १३।।

त्रिदोषज (सन्निपातज) गुल्म का लक्षण

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्
घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम्।
मनश्शरीराग्निबलापहारिणं
त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत्।। १४।।

जिस गुल्म में बड़ी पीड़ा हो, बहुत दाह हो, जो पत्थर के समान कठोर हो, बहुत ऊँचा हो, एकाएकी बहुत जलने लगे, अग्नि दारुण हो, मन, शरीर, अग्नि और बल का नाशक हो, ऐसे गुल्म को त्रिदोषज (सन्निपातज) जाने। यह गुल्म असाध्य होता है।। १४।।

आर्तवरूप रक्तज गुल्म के लक्षण

नवप्रसूताऽहितभोजना या
या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा।
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं
करोति गुल्मं सरुजं सदाहम्।। १५।।
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं
विशेषणं चाप्यपरं निबोध।
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गै-
श्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः।
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो
मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः।। १६।।

नवीन प्रसूता स्त्री को अपथ्य भोजन करने से, अथवा कच्चा गर्भ गिरने से, अथवा ऋतुकाल में अपथ्य भोजन से, या गर्भपात होने से, वात कुपित होकर स्त्री के रक्त को इकट्ठा कर गुल्म को उत्पन्न करता है, उस गुल्म में पीड़ा होती है और दाह होता है। इस गुल्म के सब लक्षण पैत्तिक गुल्म के समान होते हैं। कुछ विशेष लक्षण भी होते हैं। जो स्त्री का रक्तज-पिण्ड इधर-उधर चलता रहे, परन्तु हाथ, पैर, शिर आदि अङ्ग न जान पड़ें और

बहुत दिनों के पीछे कभी पीड़ा भी उठे, परन्तु स्त्री के गर्भ के जो लक्षण होते हैं, वे सब हों, जैसे स्तनों में दूध उतरना, उनका मोटा हो जाना, ऊपर का भाग काला पड़ जाना इत्यादि। ऐसे गुल्म की औषधि दस महीना बीत जाने पर करनी चाहिए। कारण यह है कि दस मास तक गर्भ की शङ्का रहती है। इसके अतिरिक्त जब गर्भ के लक्षणों से कुछ विरुद्ध लक्षणों के देखने से निश्चय भी हो जाए कि यह गर्भ नहीं है, गुल्म ही है, तो भी दस मास के बाद ही इस रक्तगुल्म की औषधि करनी चाहिए। दस मास के भीतर औषधि करने से गर्भाशय नष्ट हो जाता है। जब तक दस मास नहीं बीत जाता, तब तक यह गुल्म भी परिपक्व नहीं होता। इससे औषधि करने से विपरीत फल होता है।। १५-१६।।

गुल्म के असाध्य लक्षण

सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः।
कृतमूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः।। १७।।
दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यरुचिज्वरैः ।
तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति।। १८।।

जब क्रम से रक्तगुल्म बहुत पुराना हो जाता है, धातु में व्याप्त हो जाता है और बहुत नसें उसके ऊपर फैल जाने से नसों से बँध जाता है और कछुआ के समान ऊँचा हो जाता है, तब उस रोगी को दुर्बलता आ जाती है, अरुचि होती है, जी मचलाता है, खाँसी आती है, ओकाई लगती है, असन्तोष हो जाता है, ज्वर आता है, तृष्णा, तन्द्रा और नाक बहती है। जब ये सब उपद्रव हो जाते हैं, तब यह रोग असाध्य हो जाता है।। १७-१८।।

अन्य असाध्य लक्षण

गृहीत्वा सज्वरं श्वासच्छर्द्यतीसारपीडितम्।
हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम्।। १९।।
श्वासशूलौ पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता।
जायते दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मरणाय वै।। २०।।

इति गुल्मरोगनिदानमेकत्रिंशोऽध्यायः।। ३१।।

जब ज्वर सहित दम फूलने लगता है, वमन होता है, पीड़ा के साथ दस्त भी होने लगते हैं, हृदय, नाभि, हाथ और पैरों में शोथ आ जाता है, तब उस रोगी को यह रोग खींच लेता है। अर्थात् वह रोगी जीता नहीं। जब श्वास और शूल सङ्ग ही हों, पिपासा लगती ही रहे, अन्न से अरुचि हो जाए, गाँठ बहुत कड़ी हो जाए और शरीर दुर्बल हो जाए, तो फिर उस गुल्म वाले की मृत्यु ही हो जाती है।। १९-२०।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे गुल्मरोगनिदानमेकत्रिंशोऽध्यायः।। ३१।।

अथ हृद्रोगनिदानम्

हृद्रोग की संप्राप्ति

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्त-
श्रमाभिघाताध्ययनप्रसङ्गैः।
सञ्चिन्तनैर्वेगविधारणैश्च
हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः।। १।।

दोहा— बत्तिसवीं महं कहत कवि, हृदय रोग को मूल।
जाहि जानि करिहैं न कछु, लक्षण में कोउ भूल।। १।।

अति उष्ण, अति खारी, अति खट्टे, अति कसैले और अति कड़वे पदार्थों के खाने से, बहुत परिश्रम करने से, लाठी आदि की चोट लग जाने से, बहुत जोर से पढ़ने से, बहुत चिन्ता करने से, मल, मूत्र और अधोवायु के वेग को रोकने से, हृदय रोग होता है। वह पाँच प्रकार का है।। १।।

हृद्रोग का सामान्य लक्षण

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते।। २।।

वात आदि दोष कुपित होकर, रस को दूषित कर तथा हृदय में जाकर, नाना प्रकार की बाधा करते हैं, उसको हृदय रोग कहते हैं।। २।।

वातज हृद्रोग का लक्षण

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा।
निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च।। ३।।

वातज हृदय रोग में, हृदय तनता-सा रहता है, उसमें पीड़ा होती है, मथने के समान खलखलाता रहता है, दो खण्ड होने के समान फटा जाता है, चीरने के तुल्य चर्राता है और कुठारादि से फाड़ने के तुल्य फटता रहता है।। ३।।

पित्तज हृद्रोग का लक्षण

तृष्णोष्मादाहमोहास्स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः।
धूमायनञ्च मूर्च्छा च क्लेदः शोषो मुखस्य च।। ४।।

पित्तज हृदय रोग में, हृदय में तृष्णा, उष्णता, दाह, मोह, ग्लानि, धुआँइंध आना, मूर्च्छा, पसीना और मुख सूखना, ये सब उपद्रव होते हैं।। ४।।

कफज हृद्रोग का लक्षण

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम्।
माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावर्तत हृदि।। ५।।

कफज हृदय रोग में, शरीर में गुरुता रहती है, मुख से अधिक कफ गिरता है, अरुचि रहती है, हृदय भारी रहता है, अग्नि की मन्दता रहती है और मुख मीठा रहता है, ये सब उपद्रव होते हैं।। ५।।

सन्निपातज और कृमिज हृद्रोग का लक्षण

विद्यात्त्रिदोषं त्वपि सर्वलिङ्गं
तीव्रार्तितोदं कृमिजं सकण्डूम्।
उत्क्लेदः ष्ठीवनन्तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोथश्च कृमिजे भवेत्।। ६।।

जिसमें वात, पित्त, कफ तीनों के लक्षण मिलें, उसे त्रिदोषज (सन्निपातज) हृदयरोग जानना चाहिए। इसमें कुपथ्य करने से गुल्म उत्पन्न

होता है। उससे कृमि उत्पन्न होती है। कृमिज रोग तीव्र पीड़ा करता है। मानों कोई सुई से कोंचता है। खुजली भी उठती है। ओकाई आती है। थुकथुकी लगती है, कोंचने की-सी पीड़ा होती है। शूल उठता है, जी मचलाता है, आगे अँधेरा सा छा जाता है, अरुचि हो जाती है, नेत्र काले हो जाते हैं, शरीर सूख जाता है। ये लक्षण कृमिज हृदय रोग में होते हैं।। ६।।

हृद्रोग के उपद्रव

क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः।
कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः।। ७।।

इति हृद्रोगनिदानं द्वात्रिंशोऽध्यायः।। ३२।।

इन सब हृदय रोगों में ये उपद्रव होते हैं— ग्लानि होना, शरीर विशीर्ण होना, भ्रम होना, शरीर का सूखना, कृमिज हृदय रोग में वे ही उपद्रव होते हैं जो कफज हृदय रोग में कहे हैं, जैसे मुख से लार बहना, जी मचलाना, अन्न न पचना और अरुचि हो जाना।। ७।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे हृद्रोगनिदानं द्वात्रिंशोऽध्यायः।। ३२।।

अथ मूत्रकृच्छ्ररोगनिदानम्

मूत्रकृच्छ्ररोग की उत्पत्ति

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्य-
प्रसङ्गनृत्यद्रुतपृष्ठयानात् ।
आनूपमांसाध्यशनादजीर्णा-
त्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ।। १।।

सोरठा— मूत्रकृच्छ्र को भेद, तेतिसवीं महं कहत हैं।
जानि जाहिं भल होय, वैद्यन को संदेह नहिं।।१।।

अति परिश्रम करने से, तीक्ष्ण औषधि सेवन करने से, रूखी वस्तु बहुत खाने से, अधिक मदिरा पीने से, अति मैथुन करने से, नाचने से, घोड़ा,

हाथी, बग्घी आदि शीघ्र चलने वाली सवारी के पीछे दौड़ने से, उन पर चढ़ कर दौड़ने से, जलचर जीव के मांस को खाने से अथवा जलसमीपी जीव के मांस को खाने से और अजीर्ण होने से मनुष्यों को आठ प्रकार के मूत्रकृच्छ्र होते हैं।। १।।

मूत्रकृच्छ्र की संप्राप्ति

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानै-
स्सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति
यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात्।। २।।

अपने-अपने कारणों से कुपित वात, पित्त और कफ अलग-अलग अथवा सब इकट्ठे होकर पेडू के भीतर जाकर मूत्र के मार्ग को जब पीड़ित करते हैं, तो मनुष्य बड़े कष्ट से लघुशङ्का करता (मूत्रत्याग) है। इसी को मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।। २।।

वातज मूत्रकृष्छ्र का लक्षण

तीव्रार्तिरुग्वङ्क्षणबस्तिमेढ्रे-
ष्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात्।

वातज मूत्रकृच्छ्र में, अण्डसन्धि में, मूत्राशय में और लिङ्ग में तीव्र पीड़ा होती है और बार-बार थोड़ा-सा मूत्रत्याग होता है।

पित्तज मूत्रकृच्छ्र का लक्षण

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं
वेगान्मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात्।। ३।।

पित्तज मूत्रकृच्छ्र में, पीला, लाली लिए, दाह सहित, और पीड़ा करता हुआ मूत्र बार-बार बड़े वेग से निकलता है।। ३।।

कफज मूत्रकृच्छ्र का लक्षण

बस्तेस्सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ
मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे।

कफज मूत्रकृच्छ्र में मूत्राशय और लिङ्ग में गुरुता और शोथ होते हैं और मूत्र में चिकनाई होती है।

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र का लक्षण

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपाता-
द्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमञ्च कृच्छ्रम्।। ४।।

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र में, वात, पित्त और कफ तीनों के सब लक्षण मिलते हैं। यह मूत्रकृच्छ्र अत्यन्त कष्टदायक होता है।। ४।।

शल्यज मूत्रकृच्छ्र का लक्षण

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च।
मूत्रकृच्छ्रन्तदाघाताज्जायते भृशदारुणम्।
वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत्।। ५।।

जब मूत्र निकलने वाली नसों में घाव हो जाता है अथवा चोट लग जाती है, तो अतिदारुण मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके सब लक्षण वातज मूत्रकृच्छ्र के समान होते हैं।। ५।।

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र का लक्षण

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणताङ्गतः।
आध्मानवातशूलौ च मूत्रसङ्गं करोति च।। ६।।

मल में किसी प्रकार के अभिघात होने से वायु उल्टा चलने लगता है। वह पेट को फुला देता है, शूल उठाता है और मूत्र को रोक देता है। इसी को मलज मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।। ६।।

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र

अश्मरीहेतुतत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत्।

पथरी रोग के कारण जो कष्ट से लघुशङ्का की जाती है, उसे अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र का लक्षण

शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधाविते।
सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान्।। ७।।

शुक्र में दोषों के योग से, शुक्र अभिहत होकर मूत्र के मार्ग में घाव कर देता है अथवा मांस बढ़ाकर उसे रोकता है। तब बड़े कष्ट से मूत्र निकलता है अथवा मूत्र के साथ धातु जाने लगता है। इसमें मूत्राशय और लिङ्ग में पीड़ा होती है।। ७।।

शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्र के लक्षण

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे।
विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्तयतो मम।। ८।।
पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना।
विमुक्तकफसंधाना क्षरन्ती शर्करा मता।। ९।।
हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः।
तया भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम्।। १०।।

इति मूत्रकृच्छ्ररोगनिदानं त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।। ३३।।

अश्मरी रोग और शर्करा रोग के लक्षण और उत्पत्ति एक ही हैं। परन्तु शर्करा रोग में जो विशेषता है उसे हम कहते हैं, सुनो। पित्त से पककर और वायु से शोषित होकर कफ का ज़ोर न होने से अश्मरी (पथरी) मूत्र के संग कुछ खरखराहट के साथ गिरने लगती है। इसी को शर्करा रोग कहते हैं। इस शर्करा रोग में हृदय में पीड़ा होती है, शरीर काँपने लगता है, कोखा में शूल उठता है, अग्नि मन्द हो जाती है और मूर्च्छा होती है। यह मूत्रकृच्छ्र अति दारुण होता है।। ९-१०।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे मूत्रकृच्छ्रनिदानं त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।। ३३।।

अथ मूत्राघातरोगनिदानम्

मूत्राघात का निदान और संख्या

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश।।
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः।। १।।

दोहा— चौंतिसवीं महं कवि कह्यो, मूत्राघात निदान।
वे हैं तेरह भाँति के सुनो तासु परमान।। १।।

बहुधा मूत्र, मल और शुक्र के रोकने से, दोषों के कुपित होने पर, वातकुण्डलिकादिक तेरह प्रकार के मूत्राघात रोग होते हैं।। १।।

वातकुण्डलिका नाम मूत्राघात का लक्षण

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः।
मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः।। २।।
मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते।
वातकुण्डलिकान्तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम्।। ३।।

रुखाई से अथवा मूत्रादिकों के वेगों को रोकने से, कुपित वायु मूत्राशय में प्रवेश कर पीड़ा करता हुआ, मूत्र में प्रवेश करके, कुण्डलाकार घूमने लगता है। तब मूत्र थोड़ा-थोड़ा होता है अथवा पीड़ा सहित होता है। इस रोग को वातकुण्डलिका कहते हैं। यह अतिदारुण रोग है।। २-३।।

अष्ठीला नामक मूत्राघात का लक्षण

आध्मापयन् बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम्।
कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम्।। ४।।

वायु, मूत्राशय और गुदा को फुलाकर और रोककर, चलती हुई ऊँची बड़ी कष्ट देने वाली और मूत्र-मल को रोकने वाली अष्ठीला नाम की पत्थर सरीखी गाँठ को उत्पन्न करता है।। ४।।

वातबस्ति नामक मूत्राघात का लक्षण

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः।
निरुणद्धि मुखन्तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः।। ५।।
मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः।
वातबस्तिस्स विज्ञेयो व्याधिःकृच्छ्रप्रसाधनः।। ६।।

जो अकुशल मनुष्य लघुशङ्का लगने पर उसे रोक लेता है, उसके मूत्राशय में रहने वाला वायु, मूत्राशय के मुख को बन्द कर लेता है। इससे मूत्र बन्द हो जाता

है। उसी से मूत्राशय में और कोठे में, वायु पीड़ा करने लगता है। इस रोग को वातबस्ति नामक मूत्राघात कहते हैं। यह रोग बड़े कष्ट से साध्य होता है।। ५-६।।

मूत्रातीत नामक मूत्राघात का लक्षण

चिरन्धारयतो मूत्रन्त्वरया न प्रवर्तते।
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते।। ७।।

बड़ी देर तक मूत्र को रोक लेने पर, फिर शीघ्रता के साथ मूत्र नहीं उतरता, किन्तु मन्द-मन्द उतरता है, इस रोग को मूत्रातीत कहते हैं।। ७।।

मूत्रजठर नामक मूत्राघात का लक्षण

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः।
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम्।। ८।।
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम्।
तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधनम्।। ९।।

मूत्र के वेग को रोकने से, उदावर्त रोग के कारण गुदा में रहने वाला अपान वायु, कुपित होकर पेट को भर देता है। वह नाभि के नीचे पेड़ू को फुला देता है और बड़ी पीड़ा करता है। इस रोग का नाम मूत्रजठर है। यह नाभि के नीचे मूत्राशय को रोक लेता है।। ८-९।।

मूत्रोत्सङ्ग नामक मूत्राघात का लक्षण

बस्तौ वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः।
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः।। १०।।
स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाप्यनीरुजम्।
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः।। ११।।

जब लघुशङ्का लगती है, तब किसी प्राणी को किसी कारण मूत्राशय में या लिङ्ग में या लिङ्ग के अग्रभाग में मूत्र अड़ जाता है, वह रक्त सहित जब थोड़ा-थोड़ा होता है, धीरे-धीरे बहुत होता है। वह चाहे पीड़ा के साथ हो अथवा बिना पीड़ा के हो, तब वायु कुपित होती है। इस कुपित वायु से उत्पन्न रोग को मूत्रोत्सङ्ग कहते हैं।। १०-११।।

मूत्रक्षय का लक्षण

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ।
मूत्रक्षयं सरुग्दाहञ्जनयेतान्तदाह्वयम्।। १२।।

रूखे और अतिश्रम से थके हुए पुरुष के मूत्राशय में स्थित पित्त और पवन पीड़ा और दाह सहित मूत्र का नाश कर देते हैं। इस रोग को 'मूत्रक्षय' कहते हैं।। १२।।

मूत्रग्रन्थि का लक्षण

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत्।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते।। १३।।

मूत्राशय के मुख पर गोल, अचल, छोटी-सी, जो एकाएकी गाँठ हो आए और पथरी रोग के तुल्य पीड़ा करे तो इस गाँठ रूपी रोग को मूत्रग्रन्थि कहते हैं।। १३।।

मूत्रशुक्र का लक्षण

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम्।
स्थानाच्च्युतम्मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वा प्रवर्तते।
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते।। १४।।

जब किसी पुरुष को लघुशङ्का लगे और वह उसी समय बिना लघुशङ्का किये ही स्त्री-सङ्ग करने लगे तो पवन शुक्र को उसके स्थान पर से हटा देता है। फिर जब वह लघुशङ्का करने लगता है तो उसके प्रथम या पीछे वह शुक्र को गिराता है। उसका रङ्ग राख मिले हुए पानी का-सा होता है। इस रोग को मूत्रशुक्र कहते हैं।। १४।।

उष्णवात मूत्राघात का लक्षण

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलान्वितम्।
बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहन् स्रावयेदधः।। १५।।
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा।
कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम्।। १६।।

अधिक श्रम (दण्ड, मुद्गरादि) करने से, अथवा बहुत मार्ग चलने से, अथवा अधिक घाम (धूप) लग जाने से, वायुसहित पित्त मूत्राशय में पहुँचकर मूत्राशय, लिङ्ग और गुदा को जलाते हुए, हरिद्रा के रङ्ग का मूत्र बड़े कष्ट से बार-बार होता है। इस रोग को उष्णवात कहते हैं।। १५-१६।।

मूत्रसाद का लक्षण

पित्तं कफो वा द्वौ वापि संहन्येतेऽनिलेन चेत्।
कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत्।। १७।।
सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेत्ततः।
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम्।। १८।।

जब पित्त या कफ या पित्त-कफ दोनों जाकर वायु में मिल जाते हैं, तब बड़े कष्ट से पीला, लाल अथवा श्वेत गाढ़ा मूत्र होता है। अथवा जलता हुआ मूत्र होता है। पृथ्वी पर गिरने पर वह जमकर गोरोचन और शङ्ख के रङ्ग का अथवा सूखने पर सबरङ्ग का हो जाता है। इस रोग को मूत्रसाद कहते हैं।। १७-१८।।

विड्विघात का लक्षण

रूक्षान्नभुग्दुर्बलयोर्वातेनाधोवृतं शकृत्।
मूत्रस्त्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः।। १९।।
विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत्।। २०।।

रूखा अन्न खाने वाले और दुर्बल के मल को, वायु आच्छादित करके मूत्रस्थान में कर देता है, तब वह पुरुष विष्ठा मिली लघुशङ्का करता है जिसकी गन्ध विष्ठा की-सी आती है। इसमें बड़ा कष्ट होता है। इसको विड्विघात कहते हैं।। १९-२०।।

बस्तिकुण्डल का लक्षण

द्रुताध्वलङ्घनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् ।
स्वस्थानादबस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत्।। २१।।
शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्त्रवत्यपि।
पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान्।। २२।।

बस्तिकुण्डलमाहुस्तद्घोरं शस्त्रविषोपमम्।
पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः।। २३।।
तस्मिन् पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता।
शोथः श्लेष्मयुते गौरं स्निग्धम्मूत्रं घनान्वितम्।। २४।।

दौड़कर मार्ग चलने से, उपवास करने से, बहुत परिश्रम करने से, लाठी आदि की चोट लगने से और कहीं दब जाने से मूत्राशय अपने स्थान से ऊपर जाकर पेडू को फुलाकर गर्भ के समान कर देता है। इससे शूल, कुछ चलना, दाह और पीड़ा, ये सब होते हैं। मूत्र बूँद-बूँद होता है। जब मूत्राशय पर ज़ोर पड़ता है, तब मूत्र की धारा बहने लगती है। जब स्तम्भन हो जाता है अर्थात् मूत्र रुकता है, तो बड़ी पीड़ा होती है। इस रोग को 'बस्तिकुण्डल' कहते हैं। यह शस्त्र और विष के तुल्य घोर होता है। इसमें प्रायः पवन की प्रबलता होती है। थोड़ी बुद्धि वाले वैद्यों से बड़े कष्ट से इसका निवारण होता है। यह रोग जब पित्तयुक्त होता है तो दाह और शूल रङ्ग-बिरङ्ग का होता है। जब कफ युक्त होता है तो मूत्र उजला होता है, मूत्राशय में शोथ हो आता है। मूत्र चिकना, गाढ़ा और श्वेत होता है।। २१-२४।।

मूत्राघात के साध्यासाध्य लक्षण

श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्ध्यति।
अविभ्रान्तबिलस्साध्यो न तु यः कुण्डलीकृतः।। २५।।
स्याद्बस्तौ कुण्डलीभूते तृणमोहः श्वास एव च।। २६।।

इति मूत्राघातरोगनिदानं चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।। ३४।।

जिस मूत्राशय का छिद्र कफ से रुक जाता है अथवा पित्तयुक्त होता है, वह सिद्ध नहीं होता, असाध्य होता है। जिस मूत्राशय का मुँह खुला रहता है, वह साध्य होता और जो कुण्डलीभूत नहीं है, वह भी साध्य होता है। जब मूत्राशय कुण्डलीभूत हो जाता है, तो तृष्णा, मोह और श्वास होते हैं।।२५-२६।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे मूत्राघातनिदानं चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

अथाश्मरीरोगनिदानम्

अश्मरी की उत्पत्ति और संख्या

वातपित्तकफैस्तिस्त्रश्चतुर्थी शुक्रजा स्मृता।
प्राय: श्लेष्माश्रयास्सर्वा अश्मर्यस्स्युर्यमोपमा:।। १।।

दोहा— पैंतिसवीं महँ अश्मरी, रोग निदान सुनाय।
बरन्यो ताको भेद सब, जेहि जाने सुख पाय।। १।।

वात, पित्त और कफ से, तीन भाँति की 'अश्मरियाँ' होती हैं। चौथी शुक्र से उत्पन्न होती है। सब अश्मरियों में बहुधा कफ ही का प्रधानत्त्व होता है। ये सब यमराज के तुल्य होती हैं।। १।।

अश्मरी की संप्राप्ति

विशोषयेद् बस्तिगतं सशुक्रं
मूत्रं सपित्तम्पवन: कफं वा।
यदा तदाश्मर्युपजायते तु
क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गो:।। २।।

पवन जब मूत्राशय में जाकर शुक्रसहित अथवा पित्तसहित मूत्र को अथवा कफ को सुखाता है, तब जमकर वैसे ही अश्मरी (पथरी) हो जाती है जैसे गौ का पित्त जमकर गोरोचना हो जाती है।। २।।

अश्मरी का पूर्वरूप

नैकदोषाश्रया: सर्वा अथासाम्पूर्वलक्षणम्।
बस्त्याध्मानन्तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक्।। ३।।
मूत्रे बस्तस्य गन्धत्वम्मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचि:।। ४।।

अश्मरियों का पूर्वरूप यह है कि सब अश्मरियों में एक नहीं अनेक दोष होते हैं, सभी में बस्ति फूल जाती है, और बस्ति के चारों ओर पीड़ा हुआ करती है, मूत्र में बकरे के मूत्र की जैसी गन्ध आती है, मूत्र बड़े कष्ट से उतरता है, ज्वर होता है और भोजनादि में अरुचि रहती है।। ३-४।।

अश्मरी का सामान्य लक्षण

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीबस्तिमूर्द्धसु।
विशीर्णधारम्मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते।। ५।।
तद्व्यपाये सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम्।
तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत्।। ६।।

नाभि में और मूत्राशय के ऊपरी भाग में पीड़ा होती है। पथरी से मूत्रमार्ग रुक जाने पर थोड़ा मूत्र पतली धारा से होता है। जब पथरी मूत्र के मार्ग से हट जाती है, तो सुख से मूत्र उतरता है, कुछ भी कष्ट नहीं होता, और मूत्र का रङ्ग अच्छा गोरोचन के तुल्य होता है। जब अश्मरी के चलने से घाव हो जाता है तब रुधिर सहित मूत्र निकलता है। यदि बड़ा ज़ोर किया जाता है तो मूत्रत्याग के समय बड़ी पीड़ा होती है।। ५-६।।

वातज अश्मरी का लक्षण

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान्खादति वेपते।
मृद्नाति मेहनन्नाभिम्पीडयत्यनिशं क्वणन्।। ७।।
सानिलम्मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः।
श्यावारुणाऽश्मरी वा स्यात्सञ्चिता कण्टकैरिव।। ८।।

वातज अश्मरी वाला रोगी अत्यन्त दुःख से पीड़ित होता है। वह दाँत पीसने लगता है, काँपने लगता है, मूत्रत्याग के समय नाभि और लिङ्ग को सुहराने लगता है, और निरन्तर काँखता और हाय-हाय करता रहता है। मल उतरने के समय बहुत शब्द होता है। मूत्र बार-बार बूँद-बूँद उतरता है। उसके भीतर से जब पथरी निकाली जाती है, तो लाल-काली मिली हुई रंग की निकलती है। वह मानो काँटों से बिंधी हुई होती है।। ७-८।।

पित्तज अश्मरी का लक्षण

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान्।
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्तपीताऽसिताऽश्मरी ।। ९।।

पित्तज अश्मरी में मूत्राशय में पकाने के समान दाह होता है, उसमें से जब पथरी निकाली जाती है, तो भिलावाँ के आकार की लाल, पीली और काली निकलती है।। ९।।

कफज अश्मरी का लक्षण

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः।
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता।। १०।।
एता भवन्ति बालानान्तेषामेव च भूयसा।
आश्रयोपचयाल्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः।। ११।।

कफज अश्मरी में मूत्राशय में कोंचने के समान पीड़ा होती है। वह स्थान शीतल और भारी जान पड़ता है। अश्मरी (पथरी) बड़ी चिकनी, मधु के रङ्ग की अथवा उजली होती है। बहुधा ये सब अश्मरियाँ (पथरियाँ) बालकों को ही होती हैं। इसका हेतु यह है कि बहुधा उन लोगों का भोजन भारी, शीतल, मीठा और चिकना होता है। इससे ग्रन्थि बँध जाती हैं। उनकी बस्ति छोटी और नम्र होती है, इससे उसको ग्रहण करने में सुख ही रहता है, बड़ी कठिनता नहीं पड़ती।। १०-११।।

शुक्राश्मरी की संप्राप्ति

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात्।
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः।। १२।।
शोषयत्युपसंहृत्य शुक्रन्तच्छुक्रमश्मरी।। १३।।

वह शुक्राश्मरी जिनको वीर्य उत्पन्न हो जाता है उन युवकों को ही होती है, बालकों को कभी नहीं। जब कभी पुरुष वीर्य को रोकता है, तब होती है। जैसे जब मैथुन करने लगा और किसी कारण से बिना वीर्यपात के बन्द कर दिया तो शुक्र अपने स्थान से चला पर निकल कर बाहर नहीं आया, इससे पवन उसे लिङ्ग और अण्डकोशों में ले जाकर शुष्क कर डालता है। वही वीर्य सूख कर अश्मरी रोग हो जाता है।। १२-१३।।

शुक्राश्मरी का लक्षण

बस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वं मुष्कश्वयथुकारिणी।
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते।। १४।।
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा।। १५।।
अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे।। १६।।

निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे निरुध्यते।
मूत्रस्रोतः श्रिता सानुषक्ता कुर्यादुपद्रवान्।। १७।।

अश्मरी मूत्राशय में पीड़ा और मूत्रोत्सर्ग करने में बड़ा कष्ट देती है, अण्डकोशों में शोथ करती है। अश्मरी रोग के होते ही नया शुक्र आता है, परन्तु पतला होकर बह जाता है। कारण यह है कि पीड़ा उसके अवकाश को दबाती है और वह पतला हो जाता है। अश्मरी ही को शर्करा भी कहते हैं। यह वार्ता प्रथम कह आए हैं कि जब तक पित्त और वात में कफ नहीं मिलता, तब तक अश्मरी नहीं बनती। इसके पूर्व ही शर्करा से समान कुछ खरखरा सा पदार्थ मूत्र के सङ्ग गिरता है, उसी को शर्करा कहते हैं। जब पवन मूत्राशय में सीधा रहता है, तो वायु से प्रेरित थोड़ा-थोड़ा मूत्र उतरता रहता है। जब वायु उलटा चलता है, तो एकाएकी बन्द हो जाता है। जब अश्मरी मूत्र की नसों के भीतर जाकर रहती है तो नाना प्रकार के उपद्रवों को करती है।। १४-१७।।

अश्मरी के उपद्रव

दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिम्।
पाण्डुत्वमुष्णवातञ्च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम्।। १८।।

अश्मरी में शरीर की दुर्बलता, ग्लानि, कृशता, सूख जाना, कुक्षि में शूल, अरुचि, पीलापन, उष्णवात, तृष्णा, हृदय में पीड़ा और वमन, ये सब उपद्रव होते हैं।। १८।।

अश्मरी और शर्करा आदि के असाध्य लक्षण

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजातुरम्।
अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विता।। १९।।

इत्यश्मरीरोगनिदानं पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।। ३५।।

जिस अश्मरी (पथरी रोग) में नाभि और अण्डकोश सूज आएं और मूत्र बन्द हो जाए और पीड़ा अधिक हो, वह अश्मरी और शर्करा रोगी का शीघ्र नाश कर डालती है।। १९।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादेऽश्मरीरोगनिदानं पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।। ३५।।

अथ प्रमेहरोगनिदानम्

प्रमेह का कारण

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि
ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।
नवाम्बुपानं गुडवैकृतञ्च
प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्।। १।।

दोहा— छत्तिसवीं अध्याय में, कह्यो प्रमेह निदान।
लखहु वैद्य गन तासु को, समझो हिय धरि ध्यान।। १।।

बैठने में दुःख मिलना, सुखपूर्वक सोना, दही खाना, ग्राम्य जीवों के मांसादि का रस, जल जन्तुओं के मांसादि का रस, जल के समीप रहने वाले पदार्थों का रस, दूध और नवीन जल पीना, गुड़ के विकारों को खाना और सब कफकारी पदार्थ का सेवन करना, ये सब प्रमेह रोग़ के कारण हैं।। १।।

वात-पित्त-कफादि से प्रमेह की संप्राप्ति

मेदश्च मांसञ्च शरीरजं च
क्लेदं कफो बस्तिगतः विदूष्य।
करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णै-
स्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि।। २।।
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्
संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च।

कफ, मूत्राशयगत मेद, मांस और शरीर से उत्पन्न (रसरूप) जल को दूषित करके, सब प्रकार के प्रमेहों को उत्पन्न करता है। उष्ण पदार्थों के खाने से पित्त कोप करके मांसादिकों को दूषित कर प्रमेहों को उत्पन्न करता है। दोष क्षीण हो जाने पर वायु भी मज्जा-मांसादि धातुओं को खींचकर और दूषित कर के प्रमेहों को उत्पन्न करता है।। २।।

वादाहि भेद से साध्यासाध्यत्व

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड्
यापया न साध्यः पवनाच्चतुष्कः।
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वा-
न्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमन्ते।। ३।।
कफः सपित्तः पवनश्च दोषा
मेदोऽस्थिशुक्राम्बुवसालसीकाः ।
मज्जारसौजः पिशितञ्च दूष्याः
प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः।। ४।।

कफ से दश प्रकार के प्रमेह होते हैं, वे साध्य होते हैं। पित्त से छः प्रकार के प्रमेह होते हैं, वह कष्टसाध्य (याप्य) होते हैं। वायु से चार प्रकार के प्रमेह होते हैं, वे असाध्य होते हैं। कफ वालों की क्रिया सम होती है, इससे वे साध्य होते हैं। पित्त वालों की क्रिया विषम होती है, इससे वे कष्टसाध्य होते हैं। वात वालों की क्रिया अतिनाशकारक होती है, इससे वे असाध्य होते हैं। कफ, पित्त और वायु के ये दोष हैं। मेद, रुधिर, शुक्र, जल, वसा, लासा, मज्जा, रस, ओज और मांस, ये दूष्य हैं। इसलिए कफ, पित्त और वायु इन सबको दूषित करके बीस प्रकार के प्रमेहों को उत्पन्न करते हैं।। ३-४।।

प्रमेह का पूर्वरूप

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः।
दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यं च जायते ।।५।।

प्रमेह का पूर्वरूप यह है कि दाँत, जीभ और तालु में अधिक मल लपटता है, हाथ-पैरों में दाह होता है, देह में चिकनाई आ जाती है, तृषा लगती है और मुख में प्रत्येक वस्तु के खाने से बहुत स्वाद जान पड़ता है।। ५।।

प्रमेह का सामान्य लक्षण

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता।। ६।।

सब प्रमेहों का यह सामान्य लक्षण है कि मूत्र बहुत उतरे और वह ढबैले रंग का हो।। ६।।

दोष-दूष्यादि से प्रमेह भेद

दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः।
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कथ्यते।। ७।।

दोष और दूष्यों में कुछ भेद नहीं है, परन्तु उनके संयोग विशेष से और मूत्र के रङ्गादि के भेद से प्रमेहों में भेद कहा जाता है।। ७।।

दस कफज प्रमेहों के लक्षण

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम्।
मेहत्युदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम्।। ८।।
इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरश्चेक्षुमेहतः।
सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति।। ९।।
सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम्।
संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम्।। १०।।
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति।।
मूर्ताणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान्।।११।।
शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम्।
शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति।
लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम्।। १२।।

(१) उदकप्रमेह में स्वच्छ, बहुत उजला, ठंडा, गन्धरहित जल के तुल्य, कुछ पिघला और चिकना मूत्र होता है। (२) इक्षुप्रमेह में ईख के रस के समान अत्यन्त मीठा मूत्र होता है। (३) सान्द्रप्रमेह में रख देने पर मूत्र जम जाता है। (४) सुराप्रमेह में मदिरा के समान ऊपर स्वच्छ नीचे कुछ गाढ़ा मूत्र होता है। (५) पिष्टप्रमेह में मूत्र करने के समय रोमाञ्च हो आता है, पीठी के समान गाढ़ा और बहुत उजला मूत्र उतरता है। (६) शुक्रप्रमेह में शुक्र के तुल्य या शुक्र मिला हुआ मूत्र उतरता है। (७) सिकताप्रमेह में रेत मिला हुआ मूत्र होता है और कुछ खरखराता सा रहता है। (८) शीतप्रमेह में अत्यन्त शीत, मीठा और बहुत-सा मूत्र होता है। (९) शनैःप्रमेह में धीरे-धीरे

थम-थम कर मूत्र उतरता है। (१०) लालाप्रमेह में लार के समान चटचटाता चिकना मूत्र होता है।। ८-१२।।

छः पित्तज प्रमेहों के लक्षण

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत्।
नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम्।। १३।।
हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत्।
विस्रम्माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम्।। १४।।
विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः।

(१) क्षारप्रमेह में गन्ध, रङ्ग, रस और स्पर्श में क्षार पानी के समान मूत्र होता है। (२) नीलप्रमेह में नीले रङ्ग का मूत्र होता है। (३) कालप्रमेह में मषी (श्याही) के समान काला मूत्र होता है। (४) हारिद्रप्रमेह में हल्दी के समान कड़वा जलता हुआ मूत्र होता है। (५) माञ्जिष्ठप्रमेह में कच्चे मांसादिक के सड़ने के गन्ध के तुल्य और मँजीठ के काढ़े के रङ्ग का मूत्र होता है। (६) रक्तप्रमेह में कच्चे मांस के सड़ने के गन्धवाला खारा और रक्त के समान मूत्र होता है।। १३-१४।।

चार वातज प्रमेहों के लक्षण

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः।। १५।।
मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जामेही मुहुर्मुहुः।
कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहेन मेहति।। १६।।
हस्ती मत्त इवाजस्रम्मूत्रं वेगविवर्जितम्।
सलसीकं विबद्धञ्च हस्तिमेही प्रमेहति।। १७।।

(१) वसाप्रमेह में रोगी वसा (चर्बी) मिला हुआ वसा के ही रङ्ग का मूत्र बार-बार करता है (२) मज्जाप्रमेह में रोगी मज्जा के रङ्ग का और मज्जा से मिला मूत्र बार-बार करता है। (३) क्षौद्रप्रमेह में गेरु से रँगे कपड़े के रङ्ग का मीठा और रूखा मूत्र होता है। (४) हस्तिप्रमेह में मतवाले हाथी के समान बार-बार धीरे-धीरे लसलसाता हुआ मूत्र रोगी करता है।। १५-१७।।

कफजप्रमेहों के उपद्रव

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्ज्वरः कासः सपीनसः।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम्।। १८।।

कफजप्रमेहों में अन्न का न पचना, अरुचि, वमन, ज्वर, खाँसी और पीनस (नाक बहना), ये उपद्रव होते हैं।। १८।।

पित्तजप्रमेहों के उपद्रव

बस्तिमेहनयोः शूलं मुष्कावदरणं ज्वरः।
दाहतृष्णा क्लमो मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम्।। १९।।

पित्तजप्रमेहों में मूत्राशय और लिङ्ग में पीड़ा होती है, अण्डकोश की खाल फट जाती है, ज्वर होता है, दाह, तृष्णा, ग्लानि और मूर्च्छा होती है तथा मल पतला होता है।। १९।।

वातजप्रमेहों के उपद्रव

वातजानामुदावर्तः कम्पहृद्ग्रहलोलताः।
शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते।। २०।।

वातजप्रमेहों में उदावर्त, काँपना, हृदय का जकड़ना, सब पदार्थों के भोजन की इच्छा, शूल, नींद का उचटना, देह सूखना, खाँसी और श्वास, ये उपद्रव होते हैं।। २०।।

प्रमेह के असाध्य लक्षण

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव वा।
पिडिकापीडितं गाढः प्रमेहो हन्ति मानवम्।। २१।।

पहले वातादिप्रमेहों के, जो अन्न न पचना आदि उपद्रव कहे गए हैं, वे विद्यमान हों और मूत्र बार-बार बहुत होता हो और फोड़े-फुन्सी भी बहुत हों, उनसे अत्यन्त पीड़ित हो, ऐसा प्रमेह रोगी को मार डालता है।। २१।।

अन्य असाध्य प्रमेह के लक्षण

जातः प्रमेही मधुमेहिनां वा
न साध्यरोगः स हि बीजदोषात्।
ये चापि केचित् कुलजा विकारा
भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान्।। २२।।

मधुप्रमेह वालों को जब कोई और प्रमेह उत्पन्न होता है तो उनके बीज में ऐसा दोष आ जाता है कि बीज नष्ट हो जाता है, तब यह रोग असाध्य हो जाता है अथवा जिसके कुल परम्परा से जो प्रमेहादि विकार होते चले आते हैं, उन सभी को असाध्य कहते हैं।। २२।।

मधुमेह की उत्पत्ति और लक्षण

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि।। २३।।
मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा।
क्रुद्धे धातोः क्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा।। २४।।
आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन्।
क्षीणः क्षणात् क्षणात् पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम्।। २५।।
मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति।
सर्वे च मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः।। २६।।

इति प्रमेहरोगनिदानं षट्त्रिंशोऽध्यायः।। ३६।।

सब प्रमेहों की जब उपेक्षा (लापरवाही) की जाती है, कुछ औषधादि नहीं की जाती तो वे सब मधुप्रमेह हो जाते हैं तथा असाध्य हो जाते हैं। मधुमेह में मूत्र मधु के समान होता है। यह प्रमेह दो प्रकार का होता है, पहला वायु के क्रुद्ध होने से, इसमें धातुओं का क्षय हो जाता है, दूसरा दोष से वायु के मार्ग के रुक जाने पर। यह आवृत वात से उत्पन्न 'मधुप्रमेह' जिन-जिन पित्तादि दोषों से उत्पन्न होता है, उनके लक्षणों को दिखाता रहता है, क्षण भर में क्षीण हो जाता है और क्षण भर में पूर्ण। यह प्रमेह कष्टसाध्य होता है। मधुप्रमेह में बहुधा रोगी मधु ही के समान मूत्रोत्सर्ग करता है, देह में मधुरता आ जाती है, इसी से वैद्य लोग इसे 'मधुप्रमेह' कहते हैं।। २३-२६।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे प्रमेहरोगनिदानं षट्त्रिंशोऽध्यायः।। ३६।।

अथ प्रमेहपिडिकारोगनिदानम्

प्रमेहपिडिकाओं के नाम

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी।
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका।। १।।
विद्रधिश्चेति पिडिका प्रमेहोपेक्षया दश।
सन्धिर्मर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु।। २।।

दोहा— मेह जनित पिडिका सकल, अब कवि करत बखान।
सेंतिसवीं अध्याय महं, सुनिये श्रवण निदान।। १।।

शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारिका और विद्रधि, ये दश प्रकार की पिडिका (फुड़िया) जब प्रमेह रोग की उपेक्षा की जाती है (औषध नहीं होती), तब जोड़ों के सुकुमार स्थानों में और जहाँ-जहाँ मांस बहुत होता है, उन स्थानों में उत्पन्न होती हैं।।१-२।।

प्रमेहपिडिकाओं के लक्षण

अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका।
सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः।। ३।।
जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता।
अवगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वा जठरेऽपि वा।। ४।।
महती पिडिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता।
रक्ता सिता स्फोटवती दारुणा त्वलजी भवेत्।। ५।।
मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका।
गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी।। ६।।
महत्यल्पाचिता ज्ञेया पिडिका चापि पुत्रिणी।
विदारीकन्दवद् वृत्ता कठिना च विदारिका।। ७।।
विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा।

शराविका पिडिका (फुड़िया) अन्त में ऊँची और बीच में खाली होती है। कच्छपिका कछुआ की पीठ की भाँति ऊँची होती है और इसमें दाह होता है। जालिनी में दाह अधिक होता है, यह मांस के जाल से आच्छादित रहती है और पीड़ा बहुत करती है। विनता में भी पीड़ा बहुत होती है। यह पीठ या पेट में होती है, बड़ी भारी होती है, इसका रंग नीला होता है। अलजी का रङ्ग लाल उजला मिला होता है और इसके आसपास और बहुत-सी पिडिका होती हैं। यह महादारुण होती है। मसूरिका में मसूरी के तुल्य दाने होते हैं, सर्षपिका में पीली सरसों के आकार के दाने होते हैं। पुत्रिणी बहुत भारी होती है। उसके पास-पास छोटी-छोटी बहुत-सी पिडिका होती हैं। विदारिका बिलारीकन्द की तरह गोल तथा बड़ी कड़ी होती है। जो विरथिया नामक फोड़े के समान होती है, उसे विद्रधि कहते हैं। यह फीली में होती है।। ३-७।।

वातादिभेद से प्रमेहपिडिकाओं के साध्यासाध्यत्व

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः।
विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः।। ८।।
तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः।
गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः।। ९।।सऽ
सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत्।। १०।।

इति प्रमेहपिडिकारोगनिदानं सप्तत्रिंशोऽध्यायः।। ३७।।

जो प्रमेह वात-पित्त या कफादिकों में से जिस कारण से होते हैं, उनकी फुन्सियाँ भी उन्हीं से संयुक्त रहती हैं। बिना प्रमेह के भी दुष्ट मेदे वालों को वे फुड़ियाँ होती हैं। जब तक अच्छी प्रकार उभर नहीं आतीं, तब तक ये लक्षित नहीं होती हैं। जो फुड़ियाँ गुदा, हृदय, शिर, कन्धा, पीठ या अन्य सुकुमार स्थलों में होती हैं और उपद्रव सहित होती हैं और मन्दाग्नि ग्ले के होती हैं, वैद्य उनको छोड़ दें। वे असाध्य होती हैं।। ८-१०।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे प्रमेहपिडिकारोगनिदानं
सप्तत्रिंशोऽध्यायः।। ३७।।

अथ मेदोरोगनिदानम्

मेदरोग की संप्राप्ति तथा उत्पत्ति

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः ।
मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्द्धयेत्।। १।।
मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः।
मेदस्तु चीयते तस्मादशक्तः सर्वकर्मसु।। २।।

दोहा— मेद रोग को कहत है, ग्रंथकार सब भेद।
वाको सुनि करिये सुजन, भल उपाय तजि खेद।। १।।

परिश्रम न करने से, दिन में सोने से और कफ करने वाले पदार्थों के भोजन से, पुरुष के अन्नादिकों का रस मीठा और चिकना होकर मेद (चर्बी) को बढ़ा देता है, फिर मेद से सब मार्ग बन्द हो जाने के कारण अन्य धातु पुष्ट नहीं होते हैं, भेद धीरे-धीरे बढ़ कर मनुष्य को सब कर्मों के करने से अशक्त कर देता है।। १-२।।

मेदस्वी के लक्षण

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः ।
युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः।। ३।।
मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम्।
अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत्।। ४।।

जब पुरुष का मेद (चर्बी) बहुत बढ़ जाता है तो उसको क्षुद्रश्वास रोग के सब लक्षण हो जाते हैं, तृषा बहुत लगती है, मोह होता है, निद्रा बहुत आती है, अकस्मात् श्वास रुक जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है, छींक और पसीने में दुर्गन्ध आने लगती है, निर्बल हो जाता है और मैथुन करने की शक्ति कम हो जाती है। मेद सब प्राणियों के पेट और हाड़ में रहता है। इसी से जब वह बढ़ जाता है, तो बहुधा मनुष्य का उदर बढ़ जाता है।। ३-४।।

मेदस्वी की अग्निवृद्धि में कारण

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः।
चरन् सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि।। ५।।

तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं चापि काङ्क्षति।
विकारान्कुरुते घोरान् कांश्चित्कालव्यतिक्रमात्।। ६।।
एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ।
एतौ हि दहतस्स्थूलं वनं दावानलो यथा।। ७।।

मेद से मार्गों के रुक जाने से वायु बहुधा कोठे के भीतर ही घूमा करता है, इससे अग्नि को बहुत प्रचण्ड कर देता है और आहार को शीघ्र सुखा देता है। इससे वह आहार को शीघ्र ही पचा देता है, अतः पुरुष तुरन्त ही और भोजन करने की इच्छा करता है। यह काल के व्यतिक्रम होने से बड़े घोर बहुत से विकारों को करता है। ये अग्नि और पवन विशेष उपद्रव करते हैं। ये दोनों मोटे मनुष्य को शीघ्र ही जला देते हैं जैसे दावानल वन को जला देता है।। ५-७।।

मेदवृद्धि के विकार

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः।
विकारान्दारुणान् कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम्।। ८।।

जब मेद अत्यन्त बढ़ जाता है तो एकाएकी पवनादिक दारुण विकारों को उत्पन्न करके शीघ्र प्राणी को मार डालते हैं।। ८।।

अतिस्थूल के लक्षण

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः ।
अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्चते।। ९।।

इति मेदोरोगनिदानमष्टात्रिंशोऽध्यायः।। ३८।।

मेद और मांस के बहुत बढ़ जाने के कारण मनुष्य के नितम्ब, पेट और स्तन थलथलाने लगते हैं। उत्साह और तेज़ी जाती रहती है। ऐसे पुरुष को अतिस्थूल कहते हैं।। ९।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे मेदोवृद्धिनिदानमष्टात्रिंशोऽध्यायः।। ३८।।

अथोदररोगनिदानम्

उदररोग का कारण

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात्।। १।।

दोहा— उनतालिसवीं अध्याय महं, उदररोग के भेद।
बरनत कवि जेहि श्रवण करि, वैद्य न पावहिं खेद।। १।।

उदर के सब रोग मन्दाग्नि होने से होते हैं, अजीर्ण से, मलिन अन्नों के भोजनों से और अधिक मल इकट्ठा हो जाने से भी होते हैं।। १।।

उदररोग की संप्राप्ति

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि यञ्चिताः।
प्राणाग्न्यपानान् संदूष्य जनन्त्ययुदरं नृणाम्।। २।।

बहुत दिनों के सञ्चित वातादि दोष पसीना बहाने वाली नसों के मुख को बन्द कर, अग्नि, प्राण और अपानवायु को अतिदूषित कर, मनुष्यों को उदररोग उत्पन्न करते हैं।। २।।

उदररोग के सामान्य लक्षण

आध्मानङ्गमने शक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता।
शोथः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः।
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि।। ३।।

सब प्रकार के उदररोगों में पेट फूलना, चलने में अशक्ति, दुर्बलता, मन्दाग्नि, शोथ, अङ्गों में सुस्ती, अधोवायु और मल के वेग का अवरोध, दाह और तन्द्रा ये सब उपद्रव होते हैं।। ३।।

उदर रोगों की संख्या

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः।
सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गम्पृथक् पृथक्।। ४।।

तीन वायु आदि दोषों से, एक सन्निपात से, प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर, और जलोदर, ये सब आठ प्रकार के उदर रोग होते हैं। इनके अलग-अलग लक्षण होते हैं।। ४।।

वातोदर के लक्षण

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्नाभिकुक्षिषु।
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ।। ५।।
शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधो गुरुता मलसंग्रहः।
श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत्।। ६।।
सतोदभेदमुदरन्तनुकृष्णशिराततम् ।
आध्मानं दृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च।
वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत् सर्वतोगतिः।। ७।।

वातोदर में हाथ, पैर, नाभि और कोखा में शोथ होता है। कोखा, पसली, पेट, कटि और पीठ में पीड़ा होती है। सब जोड़ों में हड़फूटन होती है। सूखी खाँसी आती है, अङ्गों में पीड़ा होती है, अधोभाग में गुरुता रहती है, मल बँधा रहता है, देह के चमड़े का रङ्ग श्याम और लाल रहता है, पेट अकस्मात् फूलता और पचकता रहता है। पेट कोंचता रहता और उसमें छोटी-छोटी काली नसें तन उठती हैं, पेट फूलने पर ठोंकने से ढोल की तरह कुछ शब्द करता है। पवन भी पीड़ा और शब्द करता हुआ सर्वत्र घूमा करता है।। ५-७।।

पित्तोदर के लक्षण

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता।
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित्।। ८।।
पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते।
धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते।। ९।।

पित्तोदर में ज्वर, मूर्च्छा, दाह, तृष्णा, कड़वा मुख, भ्रम, अतीसार, त्वचा और नखादि पीले, उदर हरा, नसें पीली या लाल हो जाती हैं। पसीना होता है, उष्णता सहित दाह और धुआंइन आती है, पेट छूने में नम्र होता है, अन्न शीघ्र पचता है, पीड़ा अधिक होती है।। ८-९।।

कफोदर के लक्षण

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापः श्वयथुगौरवम्।
निद्रा क्लेदोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता।। १०।।
उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीचितं मरुत्।
चिराभिवृद्धं कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम्।। ११।।

कफोदर में हाथ, पैर आदि अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, निद्रा बहुत आती है, आलस्य बना रहता है, शरीर गुरु रहता है, नेत्रों में झपकी लगी रहती है, अरुचि होती है, श्वास आती है, खाँसी आती है, त्वचा आदि श्वेत हो जाती है, पेट निश्चल, चिकना, सफेद रहता है, नसें ऊपर निकल आती हैं, पवन छूटा करता है, बहुत काल तक पेट फूला रहता है, कड़ा रहता है, छूने पर ठंडा और गुरु जान पड़ता है।। १०-११।।

सन्निपातोदर के लक्षण

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रं
विडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः।
यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च
दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ।। १२।।
तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः
कुर्युस्तु घोरं जठरं त्रिलिङ्गम्।
तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च
विशेषतः कुप्यति दह्यते च।। १३।।
स चातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्तं
पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया यः।
दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव
प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध।। १४।।

दुष्ट स्त्रियाँ जिस पुरुष को, नख, रोम, मूत्र, मल और स्त्रियों के ऋतुकाल के रुधिर से युक्त अन्न या जल खिला और पिला देती हैं, अथवा जिसको शत्रु लोग विष खिला देते हैं, अथवा जिनको दुष्ट जल पिला दिया

जाता है अथवा कुछ विषैले पदार्थों के सेवन करने से, शीघ्र ही रक्त और वातादि दोष कुपित होकर उदर को घोर कर देते हैं। अतः वह वात-पित्त और कफ तीनों दोषों से युक्त हो जाता है। यह सन्निपातोदर शीतकाल में अथवा अधिक पवन चलने के दिन या जिस दिन अधिक बादल होता है, विशेष कोप करता है और जलने लगता है। उस समय रोगी अति मूर्च्छित हो जाता है, पीला और दुबला होकर प्यास से सूखने लगता है। यह दुष्योदर कहा गया है। अब प्लीहोदर कहते हैं। सुनो।। १२-१४।।

प्लीहोदर के लक्षण

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः
प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ।
प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ
प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति।। १५।।
तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति
विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र।
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गै-
रुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः।। १६।।

जो पुरुष दाह करने वाले पदार्थ खाता है या अभिष्यन्दी (दधि आदिक गीली चिकनी) वस्तु अधिक खाता है, उसका रक्त और कफ अत्यन्त दुष्ट होकर प्लीहा (पिलही) को बढ़ा देता है। इस रोगी को प्लीहोदर (पेट में पिलही वाला) कहते हैं। यह प्लीहोदर (पिलही रोग) पेट में बाईं ओर होता है और बढ़ता रहता है। इसमें रोगी बहुत व्याकुल होता है और गलता चला जाता है। मन्द-मन्द कुछ ज्वर होता रहता है। मन्दाग्नि हो जाती है, इससे जो खाता है, वह पचता नहीं। रोगी कफ और पित्त के लक्षण से युक्त हो जाता है। बल क्षीण हो जाता है। देह अति पीला हो जाता है।। १५-१६।।

यकृद्दाल्युदर के लक्षण

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे
ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरन्तदेव।। १७।।

इसी प्रकार का रोग जब पेट में दाहिनी ओर होता है तो उस रोग को

'यकृद्दाल्युदर' कहते हैं। दोषों के कारण यकृत् और यकृद्दाल्युदर में कुछ भेद होता है।। १७।।

दोषों का सम्बन्ध

उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात्।। १८।।

उदावर्त, शूल और आनाह से वात के दोष का सम्बन्ध जाने। मोह, तृष्णा, दाह और ज्वर से पित्त के दोष का सम्बन्ध समझे। गुरुता, अरुचि और कठिनता से कफ के दोष का सम्बन्ध जाने।। १८।।

बद्धगुदोदर के लक्षण

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा
बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत्।
सञ्चीयते तस्य मलः सदोषः
शनैः शनैः सङ्करवच्च नाड्याम्।। १९।।
निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं
निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम्।
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति
तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति।। २०।।

जिसकी आँत, चिकने अन्न, शाकादिक अथवा छोटी-छोटी पथरियों से मुँद जाती है, तब उसका धीरे-धीरे दोष सहित मल आँत की नाड़ी में इकट्ठा हो जाता है जैसे संकर (कतवारखाने) में कूड़ा करकट इकट्ठा हो जाता है। ऐसा होने से उसकी गुदा में मल रुक जाता है और बड़े कष्ट से थोड़ा-थोड़ा निकलता है। वह हृदय-नाभि के बीच में बढ़ जाता है, इस रोग को 'बद्धगुदोदर' कहते हैं।। १९-२०।।

क्षतोदर के लक्षण

शल्यं तथाऽन्नोपहितं यदन्त्रं
भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा।
तस्मात्क्षतान्त्रात्सलिलप्रकाशः
स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः।। २१।।

नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं
निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम्।
एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं
दकोदरं कीर्तयतो निबोध।। २२।।

कंकड़, पत्थर और काँटे आदि से युक्त अन्न खा जाने से पक्वाशय में उलट-पलट से आँत में घाव कर देता है। उस घावसहित आँत से जल का प्रस्राव होकर गुदमार्ग से बाहर आता है, जो वहीं इकट्ठा होता रहता है और नाभि के नीचे बढ़ता जाता है। इसमें सुई आदि से कोंचने की-सी पीड़ा होती है। इसको 'क्षतोदर' या 'परिस्राव्युदर' कहते हैं। अब हम 'जलोदर' के लक्षण कहते हैं।। २१-२२।।

जलोदर की उत्पत्ति तथा लक्षण

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा
वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य
स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि।। २३।।
स्नेहोपलिप्तेष्वथवाऽपि तेषु
दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति।
स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि-
समाततम्पूर्णमिवाम्बुना च।। २४।।
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च
शब्दायते चापि दकोदरन्तत्।

जो पुरुष किसी रोग को मिटाने के लिए तैल पीता है, अथवा अनुवासन करता है, अथवा वान्त करता है, अथवा जुलाब लेता है, अथवा निरुहणवस्ति करता है और तुरन्त ही अतिशीतल जल पीता है, उसकी जल बहाने वाली नसें दुष्ट हो जाती हैं, और उन नसों में वह तैलादिक लपट जाता है, तब जलोदर पूर्व कही हुई रीति से बढ़ता है। ऊपर बड़ा चिकना हो जाता है, नाभि को सब ओर से तान देता है, मानों जल से पेट भर जाता है, जैसे

मशक के भीतर पानी इधर-उधर चलता रहता है, काँपता और शब्द करता है, वैसे ही यह जलोदर भी काँपता, थलथलाता और शब्द करता रहता है।। २३-२४।।

साध्यासाध्य विचार

ः।

म्।। २५।।

ा।

्।। २६।।

सब कष्टसाध्य होते हैं।
ी न पहुँचा हो और नये
रोग पन्द्रह दिनों में
ाता है तो सब उदररोग
ा है, वह बहुधा असाध्य
ध करने से साध्य भी हो

।

।। २७।।

और लिङ्ग टेढ़ा हो गया
धिर, मांस तथा अग्नि से
ध न करे।। २७।।

।

त्।। २८।।

इत्युदररोगनिदानमेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।

जिसकी पसलियाँ टूट गई हों, अन्न से अरुचि हो गई हो, देह शोथ युक्त हो गया हो, अतीसार से भी पीड़ित हो, जुलाब आदि देने पर, फिर

नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं
निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम्।
एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं
दकोदरं कीर्तयतो निबोध।। २२।।

जाने से पक्वाशय में
त आँत से जल का
होता रहता है और
की-सी पीड़ा होती
हम 'जलोदर' के

।।

।

न पीता है, अथवा
ाब लेता है, अथवा
ीता है, उसकी जल
बहाने वाली नसें दुष्ट हो जाती हैं, और उन नसों में वह तैलादिक लपट जाता है, तब जलोदर पूर्व कही हुई रीति से बढ़ता है। ऊपर बड़ा चिकना हो जाता है, नाभि को सब ओर से तान देता है, मानों जल से पेट भर जाता है, जैसे

मशक के भीतर पानी इधर-उधर चलता रहता है, काँपता और शब्द करता है, वैसे ही यह जलोदर भी काँपता, थलथलाता और शब्द करता रहता है।। २३-२४।।

साध्यासाध्य विचार

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं विदुः।
बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम्।। २५।।
पक्षाद्बद्धगुदन्तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा।
प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम्।। २६।।

जो उदररोग जन्म के साथ ही से होते हैं, वे सब कष्टसाध्य होते हैं। परन्तु यदि वे किसी बली पुरुष को हों, आँत में पानी न पहुँचा हो और नये हों, तो यत्न से साध्य भी होते हैं। बद्धगुदोदर रोग पन्द्रह दिनों में असाध्य हो जाता है। जब जल आँत में पहुँच जाता है तो सब उदररोग असाध्य हो जाते हैं। जिस उदर रोग में घाव हो जाता है, वह बहुधा असाध्य ही होता है। परन्तु चीड़ने से अथवा शस्त्र द्वारा औषध करने से साध्य भी हो जाता है।। २५-२६।।

असाध्य उदर के लक्षण

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणञ्च वर्जयेत्।। २७।।

जिस उदररोगी के नेत्रों पर सूजन हो गई हो और लिङ्ग टेढ़ा हो गया हो, उदर की खाल नीरस हो गई हो और बल, रुधिर, मांस तथा अग्नि से हीन हो गया हो, ऐसे रोगी को वैद्य छोड़ दे, औषध न करे।। २७।।

अन्य असाध्य लक्षण

पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम्।
विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत्।। २८।।

इत्युदररोगनिदानमेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।

जिसकी पसलियाँ टूट गई हों, अन्न से अरुचि हो गई हो, देह शोथ युक्त हो गया हो, अतीसार से भी पीड़ित हो, जुलाब आदि देने पर, फिर

उदररोग ज्यों का त्यों हो जाता हो, ऐसे रोगी को वैद्य छोड़ दे, औषध न करे।। २८।।

इति श्रीमाधवीये भाषानुवादे उदररोगनिदानमेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

अथ शोथरोगनिदानम्

संप्राप्तिपूर्वक शोथ के लक्षण

रक्तपित्तकफान् वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिश्शिराः।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम्।। १।।
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः।

दोहा— चालिसवीं महँ कहत कवि, शोथनिदान बुझाय।
देखहु सुजन लगाय चित, वाके सकल उपाय।। १।।

दुष्टवायु, अपने कारणों से, दुष्ट रक्त-पित्त-कफों को ऊपर की नसों में भर के और उनके मार्ग को दुष्ट करके, चर्म और मांस के आश्रित होकर शोथ करता है। वह शोथ ऊँचा और कड़ा होता है। यह रक्त, वात, पित्त और कफ इन चारों के संयोग से होता है, इससे यह सन्निपातात्मक शोथ कहलाता है।। १।।

हेतुभेद से शोथ के भेद

सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम्।। २।।
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि।

वे सब शोथ हेतु विशेषों के रूपभेद होने से, नव प्रकार के होते हैं। वात-पित्त-कफ इनसे तीन, दो-दो मिलने से तीन, सन्निपात से एक, अभिघात से एक और विष से एक।। २।।

शोथ का पूर्व रूप

तत्पूर्वरूपं दवथुः शिरायामोऽङ्गगौरवम्।। ३।।

सन्तप्त नसों को तनने की-सी पीड़ा और शरीर भारी होना, जब ये लक्षण हों तो जानें कि शरीर में शोथ होगा।। ३।।

शोथ होने के कारण

शुद्ध्यामयाभुक्तकृशाबलानां
क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा।
दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्ट-
गरोपसृष्टान्ननिषेवणञ्च ।।४।।
अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धि-
र्मर्मोपघातो विषमा प्रसूतिः।
मिथ्योपचारः परिकर्मणाञ्च
निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः।।५।।

विरेचन, वमन आदि द्वारा शरीर शुद्ध करने से, ज्वरादि रोग होने से और उपवास करने से, दुर्बल और बलहीन पुरुष जब खारा, खट्टा, तीक्ष्ण, उष्ण, और गुरु वस्तुओं का सेवन करता है, दधि, कच्ची वस्तु, मिट्टी, शाकादि, दुग्ध और मछली आदि पदार्थों का एक संग भोजन करता है, अथवा अन्य परस्पर विरुद्ध दुष्ट पदार्थों का सेवन करता है, विदूषित अन्न खाता है, तब शोथ होता है। बवासीर होना, परिश्रम न करना, शोधन करने के योग्य दोष में शोधन न करना, हृदयादि सुकुमार स्थानों में लाठी, शस्त्रादि का अभिघात होना, स्त्रियों के कच्चे गर्भ का गिरना और वमन, विरेचन, बस्ति आदि पाँचों कर्मों को मिथ्या करना, इन कारणों से शोथ होता है।। ४-५।।

शोथ के सामान्य लक्षण

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं
सोत्सेधमूष्माऽथ शिराकृशत्वम्।
सलोमहर्षश्च विवर्णता च
सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम्।। ६।।

शरीर का भारी रहना, व्याकुलता, ऊँची सूजन, उष्णता, नसों का पतला होना, रोम खड़े होना और शरीर का रङ्ग विपरीत हो जाना, शोथ के ये सामान्य. लक्षण हैं।। ६।।

वातज शोथ के लक्षण

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः
प्रसुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः ।
प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो
दिवाबली च श्वयथुस्समीरणात्।। ७।।

वायु से उत्पन्न शोथ में चञ्चलता, त्वचा का पतला होना, कठोरता, खरखराहट, रङ्ग लाल या काला होना, त्वचा का सुन्न हो जाना, रोम खड़े होना, पीड़ा होना, दबाने से दब जाना और फिर उठ आना, दिन में अधिक बली रहना और रात्रि में कुछ-कुछ शान्त हो जाना,. ये लक्षण होते हैं।। ७।।

पित्तज शोथ के लक्षण

मृदुस्सगन्धोऽसितपीतरागवान्
भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ।
य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृ-
त्स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान्।। ८।।

पित्तज शोथ, मृदु, गन्धयुक्त, काला और पीला होता है। उसमें भ्रम, ज्वर, खेद, तृषा और मद होते हैं। दाह होता है। स्पर्श करने से पीड़ा होती है। नेत्र लाल रहते हैं। अतिदाह होकर वह पक जाता है।। ८।।

कफज शोथ के लक्षण

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः
प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत्।
स कृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो
न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः।। ९।।

कफ से उत्पन्न शोथ, गुरु, स्थिर, पीले रङ्ग का, अरुचियुक्त, लारयुक्त, होता है और निद्रा, वमन और अग्नि की मन्दता को उत्पन्न करता है, स्वयं उत्पन्न होकर नष्ट भी शीघ्र ही हो जाता है, यह दबाने से फिर बराबर नहीं होता और रात्रि में अधिक बली होता है।। ९।।

द्वन्द्वज और त्रिदोषज शोथ के लक्षण

निदानाऽऽकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद् द्विदोषतः।
सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः।। १०।।
अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः।
हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ।। ११।।
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान्।
भृशोष्णो लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः।। १२।।

जिसमें, दो-दो दोषों के लक्षण और आकृति मिले हों, वह द्वन्द्वज शोथ कहलाता है। जिसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों, वह सन्निपातज शोथ कहलाता है। लाठी आदि के घाव लगने से, शस्त्रादिकों से कटने-छिदने से, शीतल पवन के लगने से, समुद्री पवन के लगने से, भिलवां और केवांच के वायु और धूम के लगने से, केवांचादि का रस या उसके कांटों के लग जाने से भी शोथ हो जाता है, वह सब ओर फैलता रहता है। उसमें अत्यन्त उष्णता होती है। उसका रङ्ग लाल होता है और प्रायः पित्त के शोथ के सब लक्षण इसमें होते हैं।। ११-१२।।

विषज शोथ के लक्षण

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्।
दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ।। १३।।
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्तुसङ्करात् ।
विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ।। १४।।
मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः।

विषधर जीव के शरीर पर रेंग जाने से, और मूत्रत्याग करने से, अविषधर जीव के दाँत, दाढ़ और नखों के घात से, विषधारी जीव के विष्ठा, मूत्र, शुक्र के स्पर्श हो जाने से, मलिनवस्त्र धारण करने से, विषैले वृक्ष के पवन लगने से तथा विष मिली हुई वस्तुओं के देह में लग जाने से जो शोथ होता है, वह विषज कहलाता है। विषज शोथ कोमल, चलायमान, फैलाव वाला, शीघ्र बढ़ने वाला, दाह तथा पीड़ा करने वाला होता है।। १३-१४।।

दोषों की स्थिति से शोथस्थान

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः।। १५।।
पक्वाशयस्था मध्ये तु वक्षःस्थानगतास्त्वधः।
कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरन्तथा।। १६।।

आमाशय में स्थित दोष छाती में शोथ करते हैं। पक्वाशय में स्थित दोष छाती और पक्वाशय दोनों में शोथ उत्पन्न करते हैं। मलस्थान में स्थित दोष नीचे और अण्डकोशों में सूजन करते हैं और सब देह में स्थित दोष देह भर में शोथ करते हैं।। १५-१६।।

शोथ के साध्यासाध्य लक्षण

यो मध्यदेशे श्वयथुः स कष्टः सर्वगश्च यः।
अर्धाङ्गे रिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वम्परिसर्पति।। १७।।

जो शोथ बीच देह में होता है अथवा सब देह में होता है, वह कष्ट-साध्य होता है। जो शोथ नीचे के आधे अङ्ग में होकर ऊपर चढ़ता है, वह मरणकारी होता है।। १७।।

शोथ के असाध्य लक्षण

श्वासः पिपासाच्छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च।
यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनम्परिवर्जयेत्।। १८।।
अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः।
पुरुषं हन्ति नारीन्तु मुखजो गुह्यजो द्वयम्।। १९।।
नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः।

इति शोथरोगनिदानं चत्वारिंशोऽध्यायः।

जिस शोथ रोगी को श्वास, पिपासा, वमन, दुर्बलता, ज्वर हो और अन्न में रुचि न हो, उसे वैद्य औषध न दे, अन्य उपद्रवों से न हो, किन्तु शोथ ही के उपद्रवों से युक्त शोथ, जब पैरों में होकर फिर ऊपर चढ़ता है, तो पुरुष को नष्ट कर देता है। जो मुख में होकर फिर नीचे को चलता है, वह स्त्री को नष्ट करता है। जो गुदा से प्रारम्भ होकर फिर देह भर में हो जाता है, वह चाहे पुरुष हो, चाहे

स्त्री, दोनों को मार डालता है। नया और उपद्रव रहित शोथ साध्य होता है। साध्य-असाध्य इस अध्याय के प्रथम श्लोक में कह चुके हैं।। १८-१९।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे शोथरोगनिदानं चत्वारिंशोऽध्यायः।। ४०।।

अथाण्डवृद्धिरोगनिदानम्

अण्डवृद्धि की संप्राप्ति

क्रुद्धस्तूर्ध्वगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन्।
मुष्कौ वङ्क्षणतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः।। १।।
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिङ्करोति फलकोशयोः।। २।।

दोहा— इकतालिस महँ कहत हौं, अण्डवृद्धि का भेद।
देखहिं सुजन विचारि यहि, लहैं अँनंद सुसेव।। १।।

कुपित वायु ऊपर से नीचे को चलकर शोथ और शूल करता हुआ कोष्ठ में जाकर, अण्डकोश की सन्धियों से अण्डकोश तक चली गई हुई नाड़ियों को अतिपीड़ित करके, एक अथवा दोनों अण्डों को बढ़ा देता है।। १-२।।

दोषभेद से अण्डवृद्धि की संख्या

दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः।
मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदश्च केवलम्।। ३।।

वातज, पित्तज, कफज, रुधिर, मेद, मूत्र और आँत, इन सात हेतु-भेदों से अण्डवृद्धि सात प्रकार की होती है। उनमें मूत्रज और अन्त्रज, ये दोनों अण्डवृद्धियाँ वायु से होती हैं। केवल हेतु का भेद है।। ३।।

वातज अण्डवृद्धि के लक्षण

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक्।

जो स्पर्श करने से वायु से भरी हुई चमड़े की थैली के समान विदित हो, जिसमें बिना कारण पीड़ा हुआ करे और रूखी रहे, उसे वातज अण्डवृद्धि कहते हैं।

पित्तज अण्डवृद्धि के लक्षण

पक्वोदुम्बरसङ्काशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान्।। ४।।

जो पके हुए गूलर के रङ्ग की हो, जिसमें दाह हुआ करे, गरम बनी रहे और पक जाए, उसे पित्तज अण्डवृद्धि जाने।। ४।।

कफज अण्डवृद्धि के लक्षण

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान् कठिनोऽल्परुक्।

जो अण्डवृद्धि कफ से होती है, वह भारी, ठण्डी, चिकनी, खजुली सहित, कड़ी और थोड़ी पीड़ाकारक होती है।

रक्तज अण्डवृद्धि के लक्षण

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्तजः।। ५।।

जो काले फोड़ों से युक्त हो और जिसमें पित्तज अण्डवृद्धि के लक्षण हों, उसे रक्तज अण्डवृद्धि कहते हैं।। ५।।

मूत्रज अण्डवृद्धि के लक्षण

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः।। ६।।
अम्भोभिः पूर्णदृतिवत् क्षोभं याति सरुङ्मृदुः।
मूत्रकृच्छ्रमधस्याच्च चालयन् फलकोशयोः।। ७।।

मूत्रज अण्डवृद्धि मूत्र लगने पर, हठ से मूत्रत्याग न करने से होती है। जब रोगी चलता है, तो जलभरी मशक के समान बोलती है, उसमें पीड़ा हुआ करती है, छूने से नरम जान पड़ती है, मूत्र कष्ट से उतरता है और अण्डकोश की थैलियाँ इधर-उधर चलती रहती हैं।। ६-७।।

अन्त्रवृद्धि की संप्राप्ति और लक्षण

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः।
धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः ।। ८।।
क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा।
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत्।। ९।।
कुर्याद्वङ्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुन्तदा।

वात को कोप कराने वाले भोजनों से, बड़े शीत जल में स्नान करने से, मल-मूत्र के वेग के रोकने से, मल-मूत्र बिना लगे हुए हठ से उनको करने से, भारी बोझा ले चलने से, रण में घबराकर भागने से, बहुत झपटकर मार्ग चलने से, टेढ़े-मेढ़े होकर ऐंठते हुए चलने से और दौड़ते हुए मनुष्यों के संग दौड़ने से, कुपित होकर वायु छोटी-छोटी आँतों में जाकर, विकार उत्पन्न करके, आँतों को उनके स्थान से नीचे को उतार देता है और अण्डकोश के ऊपर गाँठ के समान शोथ कर देता है।। ८-९।।

उपेक्षित अन्त्रवृद्धि की अवस्था

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धि-
माध्मानरुक् स्तम्भवर्ती स वायुः।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति
प्रध्मापयन्नेति पुनर्विमुक्तः।। १०।।

इस रोग की उपेक्षा करने का फल यह होता है कि अण्डकोश फूल जाता है, पीड़ा करता है और कड़ा रहता है। जब अण्डकोश दबाये जाते हैं तो उसमें का पवन आँतों सहित ऊपर को चढ़ जाता है और धलधलाता रहता है। छोड़ देने से पवन आँतों सहित फिर अपने स्थान पर ज्यों का त्यों आ जाता है।। १०।।

वर्ध्म और अन्त्रवृद्धि के असाध्य लक्षण

यस्यान्त्रावयवाश्लेषान्मुश्कयोरतिसञ्चयात्।
ज्वरशूलाङ्गसादाद्यन्तं वर्ध्ममिति निर्दिशेत्।
अण्डवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः।। ११।।
इत्यण्डवृद्धिरोगनिदानमेकचत्वारिंशोऽध्यायः।।

जो अण्डवृद्धि वायु और कफ से होती है, जिसमें वात के लक्षण बहुत पीछे पाये जाते हैं, जिसमें आँतों को अङ्गों से पृथक् करने से और अण्डकोशों में वात के सञ्चय से ज्वर, शूल, अङ्गों का टूटना, ये होते हैं, उसे 'वर्ध्म' कहते हैं। यह वातवृद्धि के समान वर्ध्म नामक 'अण्डवृद्धि' असाध्य होती है।। ११।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादेऽण्डवृद्धिरोगनिदानमेकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

अथ गलगण्डरोगनिदानम्

गलगण्ड के सामान्य लक्षण

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले।
महान् वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डन्तमादिशेत्।। १।।

दोहा— बयालिस में गलगण्ड को, वर्णन कवि करि दीन्ह।
दुष्ट रोग यहि को भिषक, औषधि करिहैं चीन्ह।। १।।

जिसके गले में अण्डकोश के समान बड़ा या छोटा शोथ होकर लटकने लगता है और बँधा रहता है, उसे गलगण्ड (घेंघा) कहते हैं।। १।।

गलगण्ड की संप्राप्ति

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो
मान्ये समाश्रित्य तथैव भेदः।
कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः
समन्वितन्तद्गलगण्डमाहुः ।। २।।

वात, कफ और मेद दुष्ट होकर, अपने-अपने लक्षणों से युक्त होकर गले में गण्ड के समान शोथ करते हैं। उसे वैद्य लोग 'गलगण्ड' कहते हैं।। २।।

वातज गलगण्ड के लक्षण

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः
श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु।
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको
यदृच्छया पाकमियात्कदाचित्।। ३।।
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तो-
र्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः।

वातिक गलगण्ड में कोंचने की-सी पीड़ा होती है, गला काली-काली नसों से बँधा हुआ होता है, श्याम या अरुण रङ्ग का होता है, कड़ापन रहता है, पकता

नहीं, यदि पकता है तो अपनी ही इच्छा से, किसी विकार से नहीं। इस रोग वाले के मुख का स्वाद जाता रहता है तथा तालु और गले में शोथ होता है।। ३।।

कफज गलगण्ड के लक्षण

स्थिरः सवर्णोऽल्परुगुग्रकण्डूः
शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु।। ४।।
चिराभिवृद्धिम्भजते चिराद्वा
प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित्।
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तो-
र्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः।। ५।।

कफज गलगण्ड में स्थिरता रहती है। उस रोगी के सब शरीर के चर्म का रङ्ग जैसा होता है, वैसा ही उसका भी रङ्ग होता है। इसमें थोड़ी पीड़ा होती है, परन्तु खुजलाहट बड़ी होती है, यह सदा ठण्डा बना रहता है और बहुत बड़ा होता है। बढ़ता बहुत दिनों में है और बहुत दिनों में पकता भी है, कभी-कभी थोड़ी पीड़ा होती है, इस रोगी का मुख मीठा बना रहता है तथा तालु और गले में सदा कफ लपटा रहता है।। ४-५।।

मेदज गलगण्ड के लक्षण

स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो
मेदोभवः स्वल्परुजोऽतिकण्डूः।
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो
देहानुरूपः क्षयवृद्धियुक्तः।
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तो-
र्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम्।। ६।।

इस गलगण्ड में चिकनाई और गुरुता रहती है, यह पीले रङ्ग का होता है, इसमें दुर्गन्ध आती है, पीड़ा थोड़ी होती है, खुजलाहट अधिक होती है, लौकी की भाँति लम्बा और जड़ में पतला रहता है, रङ्ग बहुधा देह का-सा ही रहता है, कभी अपने आप घट जाता है और कभी फिर बढ़ जाता है, रोगी का मुँह चिकना बना रहता है, बोलने के समय शब्द घें-घें निकलता है।। ६।।

गलगण्ड के असाध्य लक्षण

कृच्छ्राच्छ्वसन्तम्मृदुसर्वगात्रं
संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ।
क्षीणञ्च वैद्यो गलगण्डजुष्टं
भिन्नस्वरञ्चापि विवर्जयेत्तु।। ७।।

जो गलगण्ड वाला बड़े कष्ट से श्वास ले सकता हो, उसके सब अङ्ग कोमल हों और रोग वर्ष भर से अधिक दिनों का हो गया हो, अरुचि से रोगी पीड़ित हो और बलादि से क्षीण हो गया हो, जिसका बोल भनभनाने लगा हो, ऐसे गलगण्डी की औषध न करे।। ७।।

गण्डमाला के लक्षण

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः
कक्षांसमन्यागलवङ्क्षणेषु ।
मेदः कफाभ्याञ्चिरमन्दपाकैः
स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः।। ८।।

मेद तथा कफ से काँख, काँधा, गर्दन, गला और अङ्गों के जोड़ पर बेर और आँवले के समान बहुत से गण्ड हो जाते हैं। वे बहुत दिनों में धीरे-धीरे पकते हैं, इसे गण्डमाला कहते हैं।। ८।।

अपची के लक्षण

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः
स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये।
कालानुबन्धञ्चिरमादधाति
सैवापचीति प्रवदन्ति केचित्।। ९।।

जब गण्डमाला की गाँठ पकती हैं, बहने लगती हैं, कभी अपने आप मिट जाती हैं तथा और हो आती हैं, इस प्रकार बहुत दिनों तक रहती हैं, तब उसे कोई-कोई आचार्य अपची कहते हैं।। ९।।

अपची के साध्यासाध्य लक्षण

साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूल-
कासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ।। १०।।

अपची रोग साध्य कहा जाता है। परन्तु जब पीनस, पसलियों में शूल, खाँसी, ज्वर और वमन से युक्त होता है, तो असाध्य हो जाता है।। १०।।

अथग्रन्थिरोगनिदानम्

ग्रन्थि रोग की संप्राप्ति

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः
संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च।
वृत्तोन्नतं विग्रथितन्तु शोथं
कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः।। ११।।

वात, पित्त और कफ जब दुष्ट होकर, मांस, रक्त, मेद और नसों को भी दूषित करते हैं, तब गोल और ऊँची गाँठ के सदृश शोथ कर देते हैं। वह ग्रन्थि गाँठ कहलाती है।। ११।।

वातज ग्रन्थि के लक्षण

आयम्यते वृश्च्यति तुद्यते च
प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च।
कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाततश्च
भिन्नः स्त्रवेच्चानिलजोऽस्त्रमच्छम्।। १२।।

यह ग्रन्थि फैलती है, छेदती रहती है, कोंचने की-सी व्यथा करती है, मानो कोई उखाड़ कर फेंक देता है, मानो मथ डालता है और मानो फोड़ डालता है। उसका रङ्ग काला होता है, छूने में कोमल जान पड़ता है, बस्ति के तुल्य फैली रहती है और जब फूटती है, तो उसमें से अच्छा रुधिर निकलता है।। १२।।

पित्तज ग्रन्थि के लक्षण

दन्दह्यते धूम्यति चूष्यते च
पापच्यते प्रज्वलतीव चापि।
रक्तः सपीतोऽप्यथवाऽपि पित्ता-
द्भिन्नः स्रवेद् दुष्टमतीव चास्रम्।। १३।।

पित्तज ग्रन्थि में अतिशय दाह होता है, उसमें धुआँ-सा निकलने लगता है, मानो कोई चूसे लेता है, अतिशय पकाये डालता है और जल जाना चाहती है। इसका रङ्ग लाल-पीला मिला होता है। इस ग्रन्थि के फूटने से अतिदुष्ट रुधिर निकलता है।। १३।।

कफज ग्रन्थि के लक्षण

शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डुः
पाषाणवत्संहननोपपन्नः ।
चिराभिवृद्धश्च कफप्रकोपा-
द्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम्।। १४।।

कफज गाँठ शीत, शरीर के रङ्ग से कुछ भिन्न वर्ण वाली, थोड़ी पीड़ा वाली, बहुत खुजली युक्त, पत्थर-सी कड़ी, ऊँची और बहुत दिनों में बढ़ने वाली होती है। फूट जाने पर इसमें से उजली और गाढ़ी पीब निकलती है।। १५।।

मेदज ग्रन्थि के लक्षण

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः
स्निग्धो महान्कण्डुयुतोऽल्परुक् च।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने
पिण्याकसर्पिःप्रतिमञ्च मेदः।। १५।।

मेदज गाँठ शरीर के मुटाने से बढ़ती है और दुबलाने से दुर्बल हो जाती है। चिकनी, मोटी, खुजली सहित तथा थोड़ी पीड़ा वाली होती है, फूटने पर इसमें से तिल की खली के तुल्य और जमे हुए घी के समान मेद (चर्बी) निकलती है।। १५।।

शिराजग्रन्थि के लक्षण

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तै-
राक्षिप्य वायुर्हि शिराप्रतानम्।
सङ्कोच्य संपीड्य विशोष्य चापि
ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम्।। १६।।

निर्बल पुरुष जब अनेक प्रकार के व्यायाम आदि करता है तो कुपित होकर पवन नसों के जाल को तानकर, इकट्ठा करके, बटोर कर और सुखाकर बड़ी ऊँची गोल गाँठ बना देता है।। १६।।

शिराजग्रन्थि के साध्यासाध्य लक्षण

ग्रन्थिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो
भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च।
स चारुजश्चाप्यचलो महांश्च
मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः।। १७।।

शिराओं से उत्पन्न ग्रन्थि पीड़ा सहित और चञ्चल हो तो कष्टसाध्य होती है। पीड़ारहित, अचल और बड़ी हो तथा किसी सुकुमार स्थान में उत्पन्न हुई हो तो त्यागने के योग्य होती है।। १७।।

अथार्बुदरोगनिदानम्

अर्बुदरोग की संप्राप्ति

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः
समुच्छ्रृता मांसमसृक् प्रदूष्य।
वृत्तं मृदुं मन्दरुजं महान्त-
मनल्पमूलं चिरवृद्धिपाकम्।। १८।।
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं
तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति।

शरीर के किसी स्थान पर, वातादिदोष उठकर, मांस और रक्त को अत्यन्त दूषित करते हैं। उससे गोल, कोमल, थोड़ी पीड़ायुक्त, बड़ी भारी, जड़ में अधिक फैलाव वाली, बहुत दिनों में बढ़ने वाली और पकने वाली मांस की गोली निकल आती है। वैद्य उसे अर्बुद (वतौरी) कहते हैं।। १८।।

दोषभेद से भेद और लक्षण

वातेन पित्तेन कफेन चापि
रक्तेन मांसेन च मेदसा च।
यज्जायते तस्य च लक्षणानि
ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति।। १९।।

वात, पित्त, कफ, मांस, रक्त और मेद, इनसे उत्पन्न होने से छः प्रकार के अर्बुद होते हैं। इनके लक्षण वातजादि ग्रन्थियों के समान होते हैं।। १९।।

रक्तार्बुद के लक्षण

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च
सङ्कुच्य संपीड्य गतस्त्वपाकम्।
सास्त्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं
मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धम्।। २०।।
करोत्यजस्त्रं रुधिरप्रवृत्ति-
मसाध्यमेतद्रुधिरात्मकन्तु ।
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वा-
त्पाण्डुर्भवेत्सोऽर्बुदपीडितस्तु ।। २१।।

दुष्ट वातादिक दोष रुधिर और नसों को सिकोड़कर और पीड़ित करके मांस के पिण्ड को ऊपर की ओर उठाते हैं। वह पहले कच्चा रहता है। फिर कभी पकता है, तो उसमें से रुधिर बहने लगता है, मांस के अङ्कुर उसके किनारे पर निकल आते हैं और बहुत शीघ्र वह बढ़ जाता है। यदि उसमें से निरन्तर रक्त बहता रहे तो वह रक्तार्बुद असाध्य हो जाता है। रक्तार्बुद से पीड़ित पुरुष रक्तक्षय होने से और उपद्रव से पीड़ित होने से पीला हो जाता है।। २०-२१।।

मांसार्बुद की संप्राप्ति

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे
मांसञ्च दुष्टं जनयेत्तु शोथम्।
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्ण-
मपाकमश्मोपममप्रचाल्यम्।। २२।।

मुक्के आदि से चोट खाकर मांस अतिदुष्ट होकर शोथ उत्पन्न करता है। उस शोथ में पीड़ा नहीं होती। वह चिकना होता है, उसका रङ्ग शरीर का-साही होता है, पकता नहीं है। पत्थर के समान कड़ा होने के कारण अचल हो जाता है।। २२।।

मांसार्बुद का साध्यासाध्य विचार

प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढ-
मेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ।
मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं
साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ।। २३।।
संप्रस्नुतं मर्मसु यच्च जातं
स्रोतस्सु वा यच्च भवेदचाल्यम्।

जिस मनुष्य का मांस बिगड़ जाता है अथवा जो नित्य मांस भक्षण करता है। उसका मांसार्बुद असाध्य होता है। साध्यों में भी जो आगे कहे हैं, वे असाध य ही होते हैं। जो अर्बुद सदा बहता रहता है अथवा जो किसी सुकुमारस्थान में उत्पन्न होता है, जो नसों में उत्पन्न होता है और जो किसी के चलाये नहीं चलता, वह असाध्य होता है।। २३।।

अध्यर्बुद के लक्षण

यज्जायतेऽन्यत् खलु पूर्वजाते
ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः।

जिस स्थान में प्रथम अर्बुद हुआ हो, उसी पर जो दूसरा हो तो अर्बुदज्ञ उसे अध्यर्बुद कहते हैं।

द्विरर्बुद के लक्षण

यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा
द्विरर्बुदन्तच्च भवेदसाध्यम्।। २४।।

द्वन्द्वज अर्बुद जो एक साथ एक ही स्थान पर हों अथवा एक दूसरे के पीछे हों, तो उन्हें द्विरर्बुद कहते हैं। ये द्विरर्बुद असाध्य होते हैं।। २४।।

अर्बुद न पकने का कारण

न पाकमायान्ति कफादिकत्वा-
न्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु।
दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां
सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु।। २५।।

इति गलगण्डगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदरोगनिदानं द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।

कफ अधिक होने से, मेद बहुत होने से, दोष के स्थिर होने से अथवा गाँठ पड़ जाने से सब अर्बुदों का स्वभाव है कि वे अपने आप नहीं पकते हैं।। २५।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादेलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदादिरोगनिदानं द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४२।।

अथ श्लीपदरोगनिदानम्

श्लीपद का कारण

मेदोमांसाश्रयं शोथम्पादयोश्श्लीपदम्भवेत्।
स्वलिङ्गदर्शिभिर्दोषैस्त्रिधा स्याच्च कफोत्तरम्।। १।।

दोहा— तेंतालिस महँ कहत कवि, श्लीपदरोग निदान।
करि विचार बहुभाँति सों, सुनिये ताहि सुजान।। १।।

पैरों में मेद और मांस के आश्रय से जो शोथ होता है, उसे श्लीपदरोग कहते हैं। वह वात, पित्त और कफ रूप दोषों के कारण तीन प्रकार का होता है। इस रोग में कफ प्रधान होता है।। १।।

श्लीपद के सामान्य लक्षण

यस्सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्तिः
शोथो नृणां पादगतः क्रमेण।
तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्र-
शिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः।। २।।

जो शोथ अण्डकोशों के जोड़ में होकर क्रम से मनुष्यों के पैरों की ओर उतर जाता है और उसके होने पर ज्वरसहित अत्यन्त पीड़ा होती है, उसे श्लीपदरोग कहते हैं। कोई-कोई का मत है कि यह रोग हाथ, कान, नेत्र, लिङ्ग, ओष्ठ और नासिका में भी होता है।। २।।

वातज श्लीपद के लक्षण

वातजं कृष्णरूक्षञ्च स्फुटितं तीव्रवेदनम्।
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च।। ३।।

वातज़ श्लीपद रोग में रुखाई होती है और फट जाता है, उसमें बड़ी पीड़ा होती है। वह पीड़ा भी बिना कारण हुआ करती है। इस रोगी को ज्वर बहुत आता है और इसका रङ्ग काला होता है।। ३।।

पित्तज व कफज श्लीपद के लक्षण

पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु।
श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णञ्च श्वेतं पाण्डु गुरु स्थितम्।। ४।।

पित्तज श्लीपद पीतवर्ण का होता है। यह छूने में कोमल होता है और दाहज्वर से युक्त रहता है। कफज श्लीपद चिकना श्वेत-पीला मिला हुआ, भारी और कठिन होता है।। ४।।

श्लीपद के असाध्य लक्षण

वल्मीकमिव सञ्जातं कण्टकैरुपचीयते।
सर्वात्मकम्महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः।। ५।।

यह रोग जब वल्मीक (बामी) के समान ऊपर को बढ़े और काँटों से घिर

जाये और वात, पित्त तथा कफ, तीनों के लक्षणों से युक्त हो और बड़ा हो जाये तो विशेष रीति से त्याज्य होता है।। ५।।

श्लीपद में कफ की प्रधानता

त्रीण्येतानि विजानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात्।
गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात्।। ६।।

इन तीनों श्लीपदों में कफ की ही अधिकता होती है। क्योंकि बिना कफ के भारीपन और बड़ा होना नहीं हो सकता और इन वातजादि तीनों श्लीपदों में भारीपन और बड़ापन होता है।। ६।।

श्लीपद अधिक होने के स्थान

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः।
ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः।। ७।।

जहाँ वर्षाकाल में पानी बहुत बरसता है, इससे पुराना जल वर्षभर बहुत स्थान में भरा रहता है और जो देश सब ऋतुओं में शीतल रहते हैं, उन्हीं देशों में सब प्रकार के श्लीपदरोग विशेष होते हैं।। ७।।

श्लीपद के असाध्य लक्षण

यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं
पुंसः प्रकृत्याऽपि कफात्मकस्य।
सास्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं
सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम्।। ८।।

इति श्लीपदरोगनिदानं त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४३।।

जो श्लीपदरोग कफकारक आहार-विहारों से उत्पन्न होता है, अथवा कफ प्रकृति वाले पुरुष को होता है, अथवा उसमें से कुछ पसीना, रुधिर, पीब आदि बहा करते हैं, अथवा जिस दोष से उत्पन्न हुआ है, उसके लक्षण बहुत बढ़ गए हैं, अथवा उसमें खुजली अधिक होती है, वह कफात्मक श्लीपद त्यागने योग्य है।। ८।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे श्लीपदरोगनिदानं त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

अथ विद्रधिरोगनिदानम्

विद्रधि के संप्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः।
दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम्।। १।।
महामूलं रुजावन्तं वृत्तं वाऽप्यथवाऽऽयतम्।
स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः।। २।।
पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा।
षण्णामपीह तेषां तु लक्षणं सम्प्रवक्ष्यते।। ३।।

दोहा— चब्बालिस अध्याय महँ, विद्रधिरोग निदान।
सुकवि कहत चित लाय तेहि, सुनिये लोग सुजान।। १।।

वात-पित्त-कफादि दोष उद्दण्ड हो हड्डियों में प्रविष्ट होकर त्वचा, रक्त, मांस और मेद को दूषित करके धीरे-धीरे अतिघोर शोथ उत्पन्न करते हैं जिसकी जड़ बड़ी चौड़ी होती है, पीड़ा बहुत होती है, वह गोल हो या लम्बी हो, उसे लोग विद्रधि कहते हैं। वह छः प्रकार की होती है। वात, पित्त और कफ तीनों दोषों से तीन प्रकार की, सभी के मिलने से एक सन्निपात की, पाँचवीं क्षत की और छठी रक्त की। इन छहों के लक्षण कहते हैं।। १-३।।

वातज विद्रधि के लक्षण

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः।
चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः।। ४।।

वातज विद्रधि काले या लाल रङ्ग की होती है, वह छोटी बड़ी होती है। उसमें पीड़ा बहुत होती है। उसका उठना और पकना अनेक प्रकार का होता है।। ४।।

पित्तज विद्रधि के लक्षण

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसम्भवः।। ५।।

पित्तज विद्रधि पके हुए गूलर के रङ्ग की होती है, अथवा श्याम वर्ण की

होती है। ज्वर और दाह भी इसमें होते हैं। इसका उठना और पकना शीघ्र ही होता है।। ५।।

कफज विद्रधि के लक्षण

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः।
चिरोत्थानप्रपाकश्च सकण्डुश्च कफोत्थितः।। ६।।

कफज विद्रधि दिया (सकोरा) के तुल्य बड़ी, पाण्डुरङ्ग, ठंडी, चिकनी और अल्प पीड़ायुक्त होती है। बहुत काल में उठती और पकती है। इसमें खुजली होती है।। ६।।

पकने पर स्राव

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः।

वातज विद्रधि में पतली पीब बहती है, पित्तज विद्रधि में पीली, और कफज विद्रधि में उजली पीब बहती है।

सन्निपातज विद्रधि के लक्षण

नानावर्णरुजास्रावो घण्टालो विषमो महान्।
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः।। ७।।

सन्निपातज विद्रधि का रङ्ग नाना प्रकार का होता है, उसमें नाना प्रकार की पीड़ा होती है, नाना प्रकार से बहती है और घण्टा के समान लम्बाई होती है। विषम स्वभाव की बड़ी भारी होती है, कोई तो पकती है और कोई पकती ही नहीं।। ७।।

आगन्तुक विद्रधि के लक्षण

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः।
क्षतोष्णो वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत्।। ८।।
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः।
आगन्तुर्विद्रधिस्त्वेष पित्तविद्रधिलक्षणः।। ९।।

लोहा, पत्थर, काठ आदिकों के आघात से अथवा किसी अन्य प्रकार के घाव में जब रोगी अपथ्य करता है, तो घाव का उष्ण वायु कुपित होकर रक्त

सहित पित्त को कुपित करता है। उसे ज्वर, तृष्णा और दाह होते हैं। इस आगन्तुक विद्रधि के लक्षण प्राय: पित्तज विद्रधि के से होते हैं।। ८-९।।

रक्तज विद्रधि के लक्षण

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजा ज्वरः।
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते।। १०।।

रक्तज विद्रधि काले फोड़ों से घिरी हुई होती है, कुछ श्यामता लिये उसका रङ्ग होता है, उसमें दाह, पीड़ा और तीव्र ज्वर होता है। पित्तज विद्रधि के सब लक्षण रक्तज विद्रधि में होते हैं।। १०।।

अन्तर्विद्रधि के लक्षण

पृथक्सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम्।
वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम्।। ११।।

कुपित वात, पित्त और कफ अलग-अलग या एक संग होकर अन्तःकरण में गुल्मरूप वल्मीक के समान ऊँची विद्रधि उत्पन्न करते हैं।। ११।।

स्थानभेद से विद्रधि के विशेष लक्षण

गुदे बस्तौ मुखे नाभौ कुक्षौ वङ्क्षणयोस्तथा।
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदये क्लोम्नि वाप्यथ।। १२।।
तेषामुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः।
अधिष्ठानविशेषेण लिङ्गं भृणु विशेषतः।। १३।।
गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता।
नाभ्यां हिक्का तथाऽऽटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम्।। १४।।
कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्क्षणोत्थे तु विद्रधौ।
वृक्कयोः पार्श्वसङ्कोचः प्लीह्न्यु च्छ्वासावरोधनम्।। १५।।
सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते।
श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः।। १६।।

गुदा, बस्ति, मुख, नाभि, कोख, अण्डकोशसन्धि में, अण्डकोशों में, पिलही

में, यकृत् में हृदय में और पिपासास्थान में विद्रधि होती है। इनके चिह्न बाह्य विद्रधि के लक्षणों से कहे। अब स्थानविशेष से लक्षणविशेष कहते हैं। गुदा में विद्रधि होने से वायु का निरोध होता है। बस्ति में होने से कष्ट से थोड़ा मूत्र उतरता है। नाभि में होने से हिचकी आती है और पेट फूलता है। कोख में होने से वायु का कोप होता है। अण्डकोशसन्धि में विद्रधि हाने से कटि और पीठ जकड़कर अति पीड़ित होती है। कोख के पिण्ड में होने से पसलियाँ सिकुड़ जाती हैं। पिलही में होने से श्वास रुकने लगती है। हृदय में विद्रधि होने से सब अङ्ग जकड़ जाते हैं, और खाँसी आने लगती है। यकृत् में (कलेजे में) होने से श्वास और हिचकी आती है। पिपासास्थान में होने से फिर-फिर पिपासा लगती है, इससे पानी अधिक पीया जाता है।। १२-१६।।

स्रावनिर्गम

नाभेरुपरि याः पक्वा यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः।
अधःस्रुतेषु जीवेच्च स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति।। १७।।

नाभि के ऊपर जो विद्रधियाँ होती हैं, फूटने पर उनकी पीब मुख की ओर बहती है। जो नाभि के नीचे होती हैं, वे गुदमार्ग से बहती हैं। जो नीचे होकर बहती हैं, उनमें रोगी जीता है। जो ऊपर को बहती हैं, उनमें नहीं जीता है।। १७।।

विद्रधि के साध्यासाध्य लक्षण

हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः।
जीवेत्कदाचित् पुरुषो नेतरेषु कदाचन।। १८।।
साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः।
आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत्।। १९।।

हृदय, नाभि और बस्ति इन स्थानों को छोड़कर पिलही, पिपासादि स्थानों की विद्रधियाँ जब फूटकर बहती हैं तो कदाचित् पुरुष जी भी सकता है, परन्तु अन्य स्थानों में होने पर नहीं जीता। पाँच विद्रधियाँ साध्य होती हैं। सन्निपातज असाध्य होती है। वह त्याज्य है। इनमें कच्ची, पक्की और विदग्ध, ये तीन शोथ के समान जानना चाहिए।। १८-१९।।

असाध्य विद्रधि के लक्षण

आध्मानं बद्धनिष्यन्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम्।
रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम्।। २०।।

इति विद्रधिरोगनिदानं चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।। ४४।।

जिस विद्रधि में पेट फूलता है, मूत्र रुककर होता है, ओकाई आती है, जी मचलाता है, वान्त होती है, हुचकी आती है। पिपासा लगती है, पीड़ा होती है और श्वास अधिक चलती है, वह विद्रधि रोगी का नाश कर देती है।। २०।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे विद्रधिरोगनिदानं चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।। ४४।।

अथ व्रणशोथरोगनिदानम्

व्रणशोथ की संख्या और सामान्य रूप

एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम्।
षड्विधः स्यात्पृथक्सर्वैरक्तागन्तुनिमित्तजः।। १।।
शोथाः षडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः।
विशेषः कथ्यते चैषां पक्वापक्वविनिश्चये।। २।।

दोहा— पैंतालिस अध्याय महँ, सब व्रणशोथ विचार।
लखहु सुजन मन लायकै, निज हिय माँहि सुधार।। १।।

किसी एक स्थान पर जब शोथ हो आए तो उसको व्रणों का पूर्व लक्षण जाने, वह छः प्रकार का होता है। वात, पित्त और कफ से तीन, सभी के मिलने से सन्निपातज चौथा, पाँचवाँ रक्तज, और छठा आगन्तुक, ये छः शोथ पूर्वोक्त शोथों के लक्षणों से जानने चाहिए। इनके कच्चे, पक्के के निश्चय के विषय में विशेष कहा जाता है।। १-२।।

व्रणशोथ के विशिष्ट रूप

विषमें पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिरच्चिरम्।
कफजः पित्तवच्छोथा रक्तागन्तुसमुद्भवः।। ३।।

वातज का पकना विषम होता है। इससे कहीं पक जाता है, कहीं नहीं भी पकता है। पित्तज बहुत शीघ्र पकता है। कफज विलम्ब से पकता है। रक्तज और आगन्तुक शोथ पित्तज के समान शीघ्र पकता है।। ३।।

कच्चे फोड़े के लक्षण

मन्दोष्णताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता।
मन्दवेदनता चेति शोथानामामलक्षणम्।। ४।।

थोड़ी उष्णता, थोड़ी सूजन, कड़ापन, देह के चर्म ही का-सा रङ्ग होना और थोड़ी पीड़ा, ये कच्चे शोथों के लक्षण हैं।। ४।।

पच्यमान व्रण के लक्षण

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव च पच्यते।
पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा।। ५।।
भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते।
पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते।। ६।।
शोषचोषौ विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावपाट्यते।
आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत्।। ७।।
न गच्छेदाततः शोथो भवदाध्मातबस्तिवत्।
ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैतत् पच्यमानस्य लक्षणम्।। ८।।

जब शोथ में अग्नि के समान जलन हो, लोन के तुल्य पकने लगे, चींटियों के काटने की-सी पीड़ा होने लगे, जानो कोई चीर डालता है, शस्त्र से कोई काटता है, दण्डे से पीटता है, हाथ से दबाता है, भीतर मानो कोई सुइयों से कोंचता है तथा सूखना, जलन, रङ्ग बदल जाना, मानो कोई अङ्गुली डाल फाड़ता है, ऐसा जान पड़ना, बैठने में, सोने में शान्ति न होनी, बीछी के काटे के समान पीड़ा होना। वह शोथ जब न जाए किंतु पेडू के शोथ के तुल्य हो जाए और ज्वर, तृष्णा और अरुचि, ये हों तो सूजन पकेगी, यह समझे।। ५-८।।

पक्वव्रण के लक्षण

वेदनोपशमः शोथोऽलोहितो वाल्पवेदनः।
प्रादुर्भावो वलीनाञ्च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः।। ९।।

उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचः।
बस्ताविवाम्बुसञ्चारः स्याच्छोथेऽङ्गुलिपीडिते।। १०।।
पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते।
भक्ताकाङ्क्षा भवेच्चैतच्छोथानां पक्वलक्षणम्।। ११।।

जब पीड़ा मिट जाती है, सूजन का रङ्ग कुछ मैला या लाल हो जाता है, थोड़ी पीड़ा रह जाती है, खाल़ सिकुड़ जाती है, कोंचना और खुजलाना बार-बार होता है, जब उपद्रव शान्त हो जाते हैं, शोथ में गड्ढे पड़ जाते है, खाल फूट जाती है, बस्ति से मानों पानी बहने चाहता है, सूजन पर अँगुली के दबाने से पीब इधर-उधर हट जाती है, इससे कुछ गड्ढे से हो जाते हैं और अन्न खाने की इच्छा होती है, तब शोथ को पक गया समझे।। ९-११।।

एक दोष में तीनों दोषों का कोप

नर्तेऽनिलाद्रुङ्न विना च पित्तं
पाकः कफाच्चापि विना न पूयः।
तस्मात्तु सर्वे परिपाककाले
पचन्ति शोथास्त्रिभिरेव दोषैः।। १२।।

वायु के दोष के बिना पीड़ा नहीं होती। पित्त के बिना शोथ पकता नहीं। कफ के बिना पीब होती ही नहीं। इससे सब शोथ पकने के समय तीनों दोषों से युक्त होते हैं।। १२।।

पाक में मतान्तर

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं
कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य।
पचत्यतः शोणितमेष पाको
मतः परेषां विदुषां द्वितीयः।। १३।।

कुपित पित्त समय पाकर हठ से वात-कफ को अपने वश में करके रुधिर को पकाता है। यह अन्य पण्डितों का मत है। ।। १३।।

पीबस्राव में दृष्टान्त

कक्षं समाश्रित्य यथैव वह्नि-
वार्य्वीरितः सन्दहति प्रसह्य।
तथैव पूयोऽप्यविनिःसृतो हि
मांसं शिराःस्नायु च खादतीह।। १४।।

जैसे वायु से प्रेरित अग्नि हठ से सूखे घास-फूस को जलाता है, इसी प्रकार पीब जब तक घाव से बाहर नहीं निकलती, तब तब मांस और छोटी-बड़ी सब नसों को खाती रहती है।। १४।।

शोथ में आमादि दोषों के गुण-दोष

आमं विदह्यमानञ्च सम्यक् पाकञ्च यो भिषक्।
जानीयात् स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः।। १५।।
यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते।
श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ।। १६।।

इति व्रणशोथरोगनिदानं पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४५।।

जो वैद्य लक्षणों से व्रण का कच्चापन, दाह और अच्छे प्रकार से पक जाना जान लेता है, वह वैद्य है, जो इन दोनों को नहीं जानते और वैद्यवृत्ति करते हैं, वे चोर हैं। वैद्य नहीं हैं। जो अज्ञान से कच्चे फोड़े आदि को चीर डालता है और जो पके हुए को चीरने व फोड़ने के उपाय की उपेक्षा करता है, वे दोनों अनिश्चितकारी होने से चाण्डाल के समान हैं।। १५-१६।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे व्रणशोथरोगनिदानं पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४५।।

अथ शारीरव्रणरोगनिदानम्

व्रण के भेद

द्विधा व्रणः परिज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः।
दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसम्भवः।। १।।

दोहा— छयालिसवीं अध्याय महँ, व्रण के सकल निदान।
कहते सुकवि विचार करि, लखें ताहि गुणवान।। १।।

शारीरिक और आगन्तुक भेद से व्रण दो प्रकार के होते हैं। उनमें शारीरिक शरीर के वात-पित्त-कफ आदि के दोष से होता है और आगन्तुक शस्त्रादिकों की चोट लगने से होता है।। १।।

वातिक व्रण के लक्षण

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः।
तुद्यते स्फुटति श्यावो व्रणो मारुतसंभवः।। २।।

वायु से उत्पन्न व्रण, अचल, कड़ा, थोड़ा बहने वाला और बड़ी पीड़ा वाला होता है। इसमें कोंचने की-सी पीड़ा भी होती है। यह फूट जाता है। यह व्रण कुछ ललाई लिए मटमैले रङ्ग का होता है।। २।।

पैत्तिक व्रण के लक्षण

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्ट्यवदारणैः।
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्रावैश्च पूतिकैः।। ३।।

पैत्तिक व्रण में पिपासा, मोह, ज्वर, आर्द्रता, दाह, सड़ना, विदीर्ण होना, दुर्गन्ध आना, बहने पर भी दुर्गन्ध ही आना, ये लक्षण होते हैं।। ३।।

कफज व्रण के लक्षण

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः।। ४।।

बहुत चमकीला, गुरु, चिकना, अचल, थोड़ी पीड़ा, पीला रङ्ग, थोड़ा बहना और विलम्ब से पकना, कफज व्रण के ये लक्षण हैं।। ४।।

रक्तज व द्वन्द्वजादि व्रण

रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद् द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः।। ५।।

रक्तज व्रण का रङ्ग लाल होता है और उससे रक्त बहता है। वह जब वातादिकों में से किसी एक दोष के सङ्ग हो तो द्वन्द्वज, जब दो दोषों के सङ्ग

हो तो त्रिदोषज, और जब तीन दोषों के सङ्ग हो तो चतुर्दोषज कहलाता है।। ५।।

सुखव्रण के लक्षण

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः।
धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखव्रणः।। ६।।

जो व्रण बुद्धिमान युवा पुरुष की त्वचा, मांस और सुकुमार स्थानों में होता है, उपद्रवरहित होता है, नया होता है और सुखद काल (हिम-शिशिर ही) में होता है, वह सुख साध्य होता है, इसी से इसको सुखव्रण कहते हैं।। ६।।

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य व्रण के लक्षण

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः।
सर्वैर्विहीनोऽसाध्यस्तु तथैवोपद्रवान्वितः।। ७।।

जिसमें कहे हुए गुणों में से कुछ हों और कुछ न हों, वह व्रण कष्टसाध्य होता है। जिसमें एक भी गुण न हो और उपद्रव भी हों, वह असाध्य होता है।। ७।।

दुष्टव्रण के लक्षण

पूतिःपूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्सङ्गी चिरस्थितिः।
दुष्टव्रणोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः।। ८।।

जिस व्रण में दुर्गन्धसहित पीब और अतिदुष्ट रुधिर बहे, जो ऊपर की ओर अधिक ऊँचा हो और बहुत दिनों का हो तथा बहुत दुर्गन्धयुक्त हो और शुद्धता का कोई चिह्न जिसमें न हो, वह दुष्टव्रण कहलाता है।। ८।।

शुद्धव्रण के लक्षण

जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः।
सुव्यवस्थो निरास्रावश्शुद्धो व्रण इति स्मृतः।। ९।।

जो व्रण जिह्वा के नीचे के भाग की तरह चिकना हो, छूने पर कोमल जान पड़े, उजला हो, पीडारहित हो, व्यवस्था अच्छी हो और बहुत न बहता हो, उसे शुद्धव्रण कहते हैं।। ९।।

भरने वाले व्रण के लक्षण

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः।
स्थिराश्च पिडिकावन्तो रोहतीति तमादिशेत्।। १०।।

जिस व्रण का रङ्ग ललाई लिए मटमैले कबूतर का-सा हो, उसमें से पीब आदि बहती न हो, स्थिर हो, ऊपर काफी दाने पड़ गए हों, यह अब भर चला है, ऐसा कहे।। १०।।

भरे हुए व्रण के लक्षण

रूढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम्।
त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं विनिर्दिशेत्।। ११।।

जिस व्रण का मार्ग भर आया हो, मुँह पर गाँठ न हो, सूजन न हो, पीड़ा भी न हो, देह के चर्म का-सा रङ्ग उसके चर्म का भी हो गया हो और बराबर हो गया हो, खाली-ऊँचा न रह गया हो, ऐसे व्रण को अच्छे प्रकार भर आया हुआ समझे।। ११।।

कृच्छ्रसाध्य व्रण के लक्षण

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम्।
व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषाञ्चापि व्रणे व्रणाः।। १२।।

कुष्ठरोग वालों के, विष भक्षण करने वालों के, शोथ रोग वालों के, मधुप्रमेह वालों के और प्रथम घाव पर दूसरी बार घाव वालों के व्रण असाध्य होते हैं।। १२।।

साध्यासाध्य व्रण के लक्षण

वसां मेदोऽथ मज्जानम्मस्तुलुङ्गञ्च यः स्त्रवेत्।
आगन्तुजो व्रणः सिध्येन्न सिध्येद्दोषसम्भवः।। १३।।

जिस व्रण से वसा, मेद और मज्जा बहती हो और मट्ठे के पानी से समान पानी बहता हो, ऐसे आगन्तुक व्रण को साध्य जाने। जो व्रण वातादि दोषों से होता है, वह सिद्ध नहीं होता।। १३।।

असाध्य व्रण के लक्षण

मद्यागुर्वाज्यसुमनापद्मचन्दनचम्पकैः ।
सुगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षाणां व्रणाः स्मृताः।। १४।।

मदिरा, अगुरु, घृत, मालती पुष्प, कमल, चन्दन, चम्पा, अन्य सुगन्धित पुष्प अथवा अन्य दिव्य गन्धयुक्त व्रण मरने वाले पुरुषों के ही होते हैं।। १४।।

व्रण के अन्य असाध्य लक्षण

ये च मर्मसु सम्भूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः।
दह्यन्ते चान्तरत्यथ बहिःशीताश्च ये व्रणाः।। १५।।
दह्यन्ते बहिरत्यर्थम्भवन्त्यन्तश्च शीतलाः।
प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ।। १६।।
प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु।
क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च ये व्रणाः।
वर्जयेदपि तान् वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः।। १७।।

इति शारीरव्रणरोगनिदानं षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।। ४६।।

जो व्रण मर्मस्थानों में हुए हों और पीड़ा अधिक करते हों, जो व्रण भीतर बहुत जलते हों और ऊपर अत्यन्त शीतल हों, जो बाहर अत्यन्त जलते हों पर भीतर अत्यन्त शीतल हों, जिनमें बल-मांस क्षीण हो गया हो और श्वास, खाँसी, अरुचि की बड़ी पीड़ा हो, जो व्रण मर्मस्थानों में हुए हों और जिनमें पीब, रक्त बहुत बहते हों, जिनकी अच्छी रीति से औषध होने पर भी कुछ सिद्धि न होती हो, जो वैद्य अपने यश की रक्षा चाहता हो, वह ऐसे व्रणों की औषध न करे।।१७।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे शारीरव्रणरोगनिदानं षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।। ४६।।

अथागन्तुकव्रणरोगनिदानम्

आगन्तुक व्रण की संख्या और संप्राप्ति

नानाधारमुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः।
भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे।। १।।
छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च।
घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्।। २।।

दोहा— सैंतालिस अध्याय महँ, व्रण के भेद बताय।
ग्रन्थकार ने जगत हित, दियो उपाय दिखाय।। १।।

आगन्तुक व्रण, नाना प्रकार की धार वाले शस्त्रों के, नाना स्थानों पर, प्रहार करने से नाना प्रकार की आकृति के होते हैं। उनको सुनो। छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और घृष्ट, व्रण छः प्रकार के होते हैं। उनके लक्षण कहते हैं।। १-२।।

छिन्नव्रण के लक्षण

तिर्यक्छिन्न ऋजुर्वाऽपि यो व्रणस्त्वायतो भवेत्।
गात्रस्य पातनन्तं तच्च छिन्नमित्यभिधीयते।। ३।।

जो व्रण ऊपर तिरछा अथवा सीधा कैसा ही चीरा हो, परन्तु भीतर जाकर फैल गया हो, उसे छिन्नव्रण कहते हैं। यह शरीर का पातन करता है।। ३।।

भिन्नव्रण के लक्षण

शक्तिकुन्तेषु खड्गाग्रविषाणैराशयो हतः।
यत्किञ्चित्प्रस्रवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते।। ४।।

बर्छी, भाला, बाण, तलवार, दाँत अथवा सींग से पेट में चोट लगने से जो व्रण हो और जिसमें थोड़ा-थोड़ा रुधिर बहे, उस व्रण को भिन्नव्रण कहते हैं।। ४।।

कोष्ठ के लक्षण

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च।
हृदुण्डुकः फुस्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते।। ५।।

आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, प्लीहा, हृदय, मलाशय और फेफड़े को कोष्ठ कहते हैं।। ५।।

कोष्ठ के भेद

तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते।
मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति।। ६।।
मूर्च्छाश्वासस्तृषाऽऽध्मानमभक्तच्छन्द एव च।
विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता।। ७।।
लोहगन्धत्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च।
हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषञ्चात्र मे शृणु।। ८।।

जब कोष्ठ भिन्न हो जाता है और रक्त से पूर्ण हो जाता है, तो ज्वर और दाह होता है। मूत्र, गुदा, मुख और नासिका से रक्त बहने लगता है। मूर्च्छा, श्वास, तृष्णा, पेट फूलना, अरुचि, मल-मूत्र तथा अधोवायु का रुकना, पसीना अधिक होना और नेत्रों में ललाई होती है। मुख में लौह की गन्ध आती है, अन्य अङ्गों से दुर्गन्ध आती है। हृदय और पसुलियों में शूल होता है। इस विषय में और विशेष कहते हैं। सुनो।। ६-८।।

आमाशय में स्थित रक्त के लक्षण

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरञ्छर्दयत्यपि।
आध्मानमतिमात्रञ्च शूलश्च दारुणं भृशम्।। ९।।

जब पुरुष के आमाशय में रुधिर जाकर भर जाता है तो वह रुधिर ही वमन करता है, पेट बहुत फूल आता है और अतिदारुण शूल उठता है।। ९।।

पक्वाशय में प्राप्त रक्त के लक्षण

पक्वाशयगते रक्ते रुजा गौरवमेव च।
अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह।। १०।।

जब मनुष्य के पक्वाशय में रुधिर स्थित होता है तो पीड़ा होती है, शरीर भारी लगता है और कटि से नीचे के भाग में विशेष शीतलता हो जाती है।। १०।।

विद्धव्रण के लक्षण

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गन्त्वाशयं विना।
उत्तुण्डितन्निर्गतञ्च तद्विद्धमिति निर्दिशेत्।। ११।।

आशय को छोड़ अन्य कोई अङ्ग जब पतले नोक वाले काँटे से छिद जाए और उस स्थान पर कुछ ऊँचा हो जाए, उस व्रण को विद्ध कहते हैं।। ११।।

क्षतव्रण के लक्षण

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम्।
विषमं व्रणमङ्गेषु तत्क्षतं त्वभिनिर्दिशेत्।। १२।।

जो न बहुत छिन्न हुआ हो और न बहुत भिन्न ही हुआ हो, किन्तु दोनों लक्षणों से युक्त हो, परन्तु टेढ़ा-मेढ़ा विषम घाव हो, उसे क्षत कहते हैं।। १२।।

पिच्चितव्रण के लक्षण

प्रहारपीडिताभ्यां तु यदङ्गं पृथुताङ्गतम्।
सास्थि तत्पिच्चितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम्।। १३।।

जिस अङ्ग के ऊपर कुछ पत्थर, काष्ठादि पटक देने से या दबा देने से हाड़ सहित सूजन हो जाए और उससे मज्जा तथा रक्त निकलने लगे, उसे पिच्चितव्रण कहते हैं।। १३।।

घृष्टव्रण के लक्षण

घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचम्।
उपस्त्रावान्वितं तच्च घृष्टमित्यभिधीयते।। १४।।

घसीटने से या मारने से किसी अङ्ग का चमड़ा छिल जाता है और रुधिर बहने लगता है, उस व्रण को घृष्ट कहते हैं।। १४।।

सशल्यव्रण के लक्षण

श्यावं सशोथं पिडिकान्वितञ्च
मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनञ्च।
मृदूद्गतं बुद्बुदतुल्यमांसं
व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति।। १५।।

जो व्रण नीले रङ्ग का हो, ऊपर सूजन हो, किनारे-किनारे छोटे-छोटे फोड़े निकलते हों, उससे बार-बार रक्त बहता हो, ऊपर उसके नरम बना रहे और उसका मांस बुलबुले की तरह का हो, तो उसमें कण्टक (फाँस) आदि अवश्य रहता है। इससे उसे सशल्य कहते हैं।। १५।।

कोष्ठभेद के लक्षण

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्त्वा च परिहृत्य वा।
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान्।। १६।।

त्वचा को छेदकर, भीतर नसों को विदारण कर अथवा तोड़कर जो काँटा, फाँस आदि शल्य भीतर रह जाता है, वह ऊपर कहे हुए उपद्रवों को करता है। वह कोष्ठभेद कहलाता है।।१६।।

असाध्य कोष्ठभेद के लक्षण

तत्रान्तर्लोहितं पाण्डुशीतपादकराननम्।
शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं परिवर्जयेत्।। १७।।

भीतर रुधिर जम जाने से जिसका रङ्ग लाल हो और ऊपर का रङ्ग पीला हो गया हो, पाद, हाथ, मुख ठण्डे हो गये हों, ठण्डी ऊर्ध्व श्वासें आती हों, नेत्र लाल हों और पेट फूला चला आता हो, ऐसे कोठे के मनुष्य को छोड़ देना चाहिए।। १७।।

मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धि में चोट लगने के लक्षण

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो
विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च।
स्रस्ताङ्गता मूर्च्छनमूर्ध्ववात-
स्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः।। १८।।
मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्
सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव ।
दशार्धसंख्येष्वपि विक्षतेषु
सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम्।। १९।।

भ्रम, अनर्थ वचन, गिर पड़ना, अतिमोह, छटपटाना, ग्लानि, उष्णता, शरीर शिथिल हो जाना, मूर्च्छा, ऊपर को श्वास आना, चेहरा कुछ उदास हो जाना, वात के कारण पीड़ा, मांस के धोवन के रङ्ग का रक्त बहना और सब इन्द्रियार्थों का निवृत्त होना, जब पाँचों इन्द्रियों के सुकुमार स्थलों में घाव लगता है, तो सामान्यतः ये लक्षण होते हैं।। १८-१९।।

मर्मरहित शिराविद्ध के लक्षण

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं
रक्तं स्रवेत्तत्क्षतजश्च वायुः।
करोति रोगान्विविधान्यथोक्तान्
शिरासु भिन्नास्वथवा क्षतासु।। २०।।

जब नसें छिन्न हो जाती हैं अथवा विद्ध हो जाती हैं अथवा क्षतयुक्त हो जाती हैं तो बीरबहूटी नामक लाल-लाल कीड़े के तुल्य बन्द-बन्द रक्त बहुत चूने लगता है और व्रण का वायु कोप करके विविध भाँति के रोग करता है।। २०।।

स्नायुविद्ध के लक्षण

कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः
क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च।
चिराद्व्रणो रोहति यश्च चापि
तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत्।। २१।।

जिस पुरुष का शरीर कुबड़ा हो जाए, देह के सब अङ्ग टूटने लगें, कुछ कार्य करने की शक्ति न रहे, बड़ी पीड़ा हो और घाव बहुत दिनों में पूरा हो, उस पुरुष की नस में घाव लगा समझे।। २१।।

सन्धिविद्ध के लक्षण

शोथोभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च
बलक्षयः पर्वसु भेदशोथौ।
क्षतेषु सन्धिष्वचलाचलेषु
स्यात्सन्धिकर्मोपरमश्च लिङ्गम्।। २२।।

जिसकी देह में सूजन बढ़ती जाती हो, बड़ी पीड़ा होती हो, बल नष्ट हो गया हो, सब जोड़ों में पीड़ा हो, सूजन हो और शरीर में चल व अचल जितने जोड़ हैं, सब कार्य करने में असमर्थ हों, मानों सब टूट गऐ हैं। यह सन्धिजव्रण का लक्षण है।। २२।।

अस्थिविद्ध के लक्षण

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु
सर्वास्ववस्थासु च नैति शान्तिम्।
भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्र-
स्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत्।। २३।।

जिसके अङ्गों में रात्रिदिन घोर पीड़ा हुआ करे और किसी अवस्था में भी शान्ति न होती हो, ऐसे रोगी को दोषज्ञ और शास्त्रज्ञ वैद्य अस्थिविद्ध जाने।। २३।।

मर्मयुक्तशिराविद्ध के लक्षण

यथास्वमेतानि विभावयेच्च
लिङ्गानि मर्मस्वभिताडितेषु।
पाण्डुर्विवर्णस्स्पृशितं न वेत्ति
यो मांसमर्मस्वभिताडितः स्यात्।। २४।।

जब मर्मस्थलों में ऐसी चोट लगे कि नसें टूट जाएं तो भी पूर्व ही के लक्षण जाने। यही सामान्य विद्ध लक्षण भी कहलाता है। जिसके मांस के मर्मस्थान में कठिन चोट लग जाती है वह पाण्डुवर्ण हो जाता है, उसके देह का रङ्ग बिगड़ जाता है और छूने पर वह कुछ नहीं जानता।। २४।।

सब व्रणों के 16 उपद्रव

विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोऽपतानकः।
मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः।। २५।।
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासश्च वेपथुः।
षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणिनां व्रणचिन्तकैः।। २६।।

इत्यागन्तुकव्रणरोगनिदानं सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४७।।

विसर्प, पक्षाघात, नस रुक जाना, नसों का तन जाना, मोह, उन्मत्तता, व्रण में पीड़ा, ज्वर, तृष्णा, चौहड़ी का जकड़ना, खाँसी, ओकाई, अतीसार, हिचकी, श्वास, और काँपना, ये 16 उपद्रव व्रणचिन्तकों ने व्रण वालों के कहे हैं।। २५-२६।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे आगन्तुकनानाव्रणरोगनिदानं सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४७।।

अथ भग्नरोगनिदानम्

भग्नरोग का भेद और संख्या

भग्नं समासाद् द्विविधं वदन्ति
काण्डे च सन्धौ च हि तत्र सन्धौ।
उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितश्च
तिर्यक् च विक्षिप्तमधश्च षोढा।। १।।

दोहा— अड़तालिसवीं अध्याय महँ, भग्ननिदान विचार।
देखहिं सज्जन लाय चित, लहैं अनंद अपार।। १।।

सामान्यतः हड्डी का टूट जाना दो प्रकार का होता है। एक जोड़ पर से उखड़ जाना और दूसरा जोड़ से अलग कहीं टूट जाना। जोड़ पर से उखड़ जाना 6 प्रकार का होता है। उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यक्, विक्षिप्त और अधःक्षिप्त।। १।।

सन्धिभङ्ग के सामान्य लक्षण

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्रा
रुक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ।
सामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्ग-
मुत्पिष्टसन्धेश्श्वयथुः समन्तात्।। २।।

विशेषतो रात्रिभवा रुजा च
विश्लिष्टजे तौ च रुजा च नित्यम्।
विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रा-
स्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति।। ३।।
क्षिप्तेऽतिशूलं विषमत्वमस्थ्नोः
क्षिप्ते त्वधो रुग्विघटश्च सन्धेः।

फैलाने, सिकोड़ने, हिलाने में बड़ी पीड़ा होना और अपने अथवा किसी अन्य के अङ्गों से छुआया न जा सकना, सामान्य रीति से सन्धिभग्न के ये लक्षण होते हैं। जिसमें जोड़ के दोनों हाड़ आपस में रगड़ जाते हैं, उसे उत्पिष्ट सन्धिभग्न कहते हैं। इसमें सब ओर से सूजन हो आती है और रात्रि में विशेष पीड़ा होती है। हाड़ों के जोड़ में किसी प्रकार के हेर-फेर आ जाने को विश्लिष्ट सन्धिभग्न कहते हैं। इसमें चारों ओर से सूजन होती है और रात्रि में अधिक पीड़ा होती है। दिन में भी पीड़ा होती है। जिसमें हाड़ के जोड़ के दोनों नोक उलटे-पलटे हो जाएँ, उसे विवर्तित सन्धिभग्न कहते हैं। इसमें उस के पास दोनों ओर तीव्र पीड़ा होती है। जिसमें अपने स्थान से हटकर दो हाड़ों के नोक अगल-बगल हो जाते हैं, उसे तिर्यक् सन्धिभग्न कहते हैं। इसमें अतितीक्ष्ण पीड़ाएं होती हैं। जिसमें हाड़ किसी कारण से ऊपर की ओर उठ जाता है, उसे उत्क्षिप्त कहते हैं। इसमें अत्यन्त पीड़ा होती है क्योंकि दोनों हाड़ों का जोड़ विषम हो जाता है। जिसमें नीचे की ओर हाड़ टल जाता है, उसे अधःक्षिप्त सन्धिभग्न कहते हैं। इसमें भी पीड़ा वैसी ही होती है, परन्तु नीचे की ओर हड्डी टल आने के कारण कुछ वहाँ पर खाली हो जाता है। यही विशेषता है।। २-३।।

काण्डभग्न के भेद तथा लक्षण

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्ण-
विचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लितम्।
काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितञ्च
मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम्।। ४।।
छिन्नं द्विधा द्वादशधा हि काण्डे

स्त्रस्ताङ्गता शोथरुजातिवृद्धिः।
संपीड्यमाने भवतीह शब्दः
स्पर्शासहस्पन्दनतोदशूलाः।। ५।।
सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो
भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत्।
भग्नन्तु काण्डे बहुधा प्रयाति
समासतो नामभिरेव तुल्यम्।। ६।।

काण्डभग्न बारह प्रकार के होते हैं। कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, अस्थिछल्लित, काण्डभग्न, अतिपातित, मज्जागत, स्फुटित, वक्र और दो प्रकार का छिन्न। जिसमें हड्डी दोनों ओर टूटकर दबे और बीच में कुछ ऊँचा हो जाए, उसे कर्कटक कहते हैं। जिसमें दोनों ओर के टूटे हुए हाड़ घोड़े के कानों के तुल्य उठ आएँ, उसे अश्वकर्ण कहते हैं। जिसमें हड्डी चूर हो जाए और छूने से कड़कड़ाहट हो, उसे विचूर्णित कहते हैं। जिसमें हड्डी पिचक उठे, उसे पिच्चित कहते हैं। हड्डी के किसी अंश में जिसमें परत निकल जाती है, उसे अस्थिछल्लित कहते हैं। जिसमें हड्डी की नली टूट जाती है। उसे काण्डभग्न कहते हैं। जिसमें हड्डियाँ टूट जाती हैं, उसे अतिपात कहते हैं। जिसमें हड्डी टूटकर मज्जा बहने लगती है, उसे मज्जागत कहते हैं। जिसमें हड्डी टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाती है, उसे स्फुटित कहते हैं। जिसमें हड्डी मुड़कर टेढ़ी हो जाती है, उसे वक्र कहते हैं। छिन्न दो प्रकार के यों होते हैं। एक में दोनों ओर के टुकड़े चूर-चूर हो जाते हैं और दूसरे में एक ही ओर के टुकड़े चूर होते हैं। काण्डभग्न के सामान्य लक्षण ये हैं कि अङ्ग का ढीलापन, सूजन, अत्यन्त पीड़ा, दबाने पर हड्डी का कड़कड़ाना, छूना न सहा जाना, कुछ काँपना, चौंकना, शूल और किसी समय सुख न मिलना। काण्डभग्न और भी बहुत प्रकार के होते हैं। वे जिस-जिस स्थान में होते हैं और जैसा-जैसा उनका आकार होता है, उसी के तुल्य उनका नाम होता है।। ४-६।।

काण्डभग्न के कृच्छ्रसाध्य लक्षण

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च।
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति।। ७।।

जो पुरुष स्वल्प भोजन करता है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, जो वात

प्रकृति का है और ज्वरादि उपद्रवों से जो युक्त है, ऐसे पुरुषों की हड्डी टूट जाने पर बड़े कष्ट से साध्य होती है।। ७।।

काण्डभग्न के असाध्य लक्षण

भिन्नं कपालं कट्यान्तु सन्धिमुक्तं तथा च्युतम्।
जघनं प्रतिपिष्टञ्च वर्जयेत्तु विचक्षणः।। ८।।

जिसकी खोपड़ी फट गई है, कटि में जोड़ को छोड़ अन्यत्र कहीं टूट जाता है अथवा रीड़ अलग हट जाती है अथवा पेडू के हाड़ चूर्ण हो जाते हैं, ऐसे काण्डभग्न वाले को वैद्य छोड़ दे। वह असाध्य है।। ८।।

अन्य असाध्य के लक्षण

असंश्लिष्ट कपालञ्च ललाटे चूर्णितञ्च यत्।
भग्नं स्तने गुदे शङ्खे पृष्ठे मूर्ध्नि तु वर्जयेत्।। ९।।

जिस की खोपड़ी ऐसी चूर हो जाए कि वह फिर जुड़ने के योग्य न रहे अथवा स्तन, गुदा, मस्तक, पीठ और कनपटी की हड्डियाँ चूर-चूर हो जाएं, उस घायल कांडभग्न रोगी को वैद्य त्याग दे।। ९।।

असावधानी से असाध्यता

सम्यक्सन्धितमप्यस्थि दुर्निक्षेपनिबन्धनात्।
संक्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियान्तच्च वर्जयेत्।। १०।।

टूट जाने पर जो हाड़ अच्छे प्रकार बैठा दिया गया हो अथवा जोड़कर बाँध भी दिया गया हो, परन्तु ढीला बँधने से या किसी प्रकार खुल जाने से अपने स्थान से हट जाता है और इधर-उधर हिलने लगता है, इस कारण उसमें कुछ विकार हो जाता है, उसे भी वैद्य त्याग दे।। १०।।

अस्थिविशेष से भग्नविशेषता

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु।।
कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च।।११।।

इति भग्नरोगनिदानमष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४८।।

तरुण हाड़ चोट लगने से झुक जाते हैं। नाड़ी आदि फट जाती हैं। खोपड़ी, माथा आदि फटकर चूर-चूर हो जाते हैं। दाँत आदि के कुछ-कुछ भाग टूट जाते हैं। इनकी उचित चिकित्सा करें।। ११।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे सन्धिभग्नकाण्डभग्नरोग-
निदानमष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४८।।

अथ नाडीव्रणरोगनिदानम्

नाडीव्रण की संप्राप्ति

यः शोथमाममिति पक्वमुपेक्षतेऽज्ञो
यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः।। १।।
तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते च
नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी।

दोहा— ऊनचास अध्याय महँ, नाड़ीव्रण को भेद।
कह्यो सुकवि जेहि श्रवण करि, वैद्य न पावहिं खेद।। १।।

जो अल्पज्ञ वैद्य अच्छे प्रकार पके हुए शोथ को कच्चा जानकर उसकी उपेक्षा करता है, जोड़कर या औषध से बहाकर उसकी पीब नहीं निकालता, अथवा जिस व्रण में बहुत पीब देखकर घबराकर छोड़ देता है, वह पीब भीतर घुस जाती है और व्रण की जड़ की नस में छेद कर देती है तथा मांस और चर्म को गलाकर बड़ा भारी घाव कर देती है व उस नस से फिर सदा पीब बहा करती है। जब वह नाड़ी की रीति से अत्यन्त पीब बहाने लगती है, तो उसे नाड़ीव्रण (नासूर) कहते हैं।। १।।

दोषानुसार संख्या

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च।
सम्मूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या।। २।।

नाड़ीव्रण पाँच प्रकार के होते हैं। वात-पित्त और कफ से तीन, इन तीनों के मिलने से सन्निपात का चौथा और शल्य (काँट-फाँस आदि के गड़ जाने से) पाँचवाँ।। २।।

वातज नाड़ीव्रण के लक्षण

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु।

वातज नाड़ीव्रण का मुख कड़ा और सूक्ष्म होता है, उसमें शूल हुआ करता है और फेन सहित पीब बहा करती है। रात्रि में अधिक बहती है।

पित्तज नाड़ीव्रण के लक्षण

पित्ताच्च तृड्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता
पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहस्सु चापि।। ३।।

पित्तज नाड़ीव्रण में पिपासा लगती है, ज्वर होता है, दाह हुआ करता है और पीले रङ्ग की उष्ण पीब बहती है। दिन में अधिक बहती है।। ३।।

कफज नाड़ीव्रण के लक्षण

ज्ञेया कफाद् बहुघनार्जुनपिच्छिलास्रा
स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा।

कफज नाड़ीव्रण में बहुत गाढ़ी, उजली, तथा चिकनी पीब बहती है, खुजली उठती है, पीड़ा नहीं होती, रात्रि में अधिक पीब बहती है।

द्विदोषज और त्रिदोषज नाड़ीव्रण के लक्षण

दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन
तिस्रो गतीर्व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात्।। ४।।

जिसमें दो दोष हों, उसे द्विदोषज नाड़ीव्रण जाने। जिसमें वातादि तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हों, उसे त्रिदोषज (सन्निपातज) नाड़ीव्रण कहते हैं।। ४।।

सन्निपातज नाड़ीव्रण के लक्षण

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा
यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि।

तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपा-
द्घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम्।। ५।।

जिस नाड़ीव्रण में दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा और मुख सूखना, ये उपद्रव हों, उसको वात, पित्त और कफ के कोप से उत्पन्न जाने। यह ऐसा घोर प्राणनाशक होता है मानों कालरात्रि ही है।। ५।।

शल्यज नाड़ीव्रण के लक्षण

नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदीरितेषु
स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति।
सफेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं
स्रावं करोति सहसा सरुजञ्च नित्यम्।। ६।।

किसी प्रकार से जब किसी स्थान में काँटा आदि चुभकर अधिक नीचे धँस जाता है, दिखाई नहीं देता, वह बहुत शीघ्र मार्ग कर देता है। उसमें से फेन सहित उष्ण रुधिर और पीब बहने लगती है। इसमें दिन-रात्रि बराबर घाव बहता रहता है और पीड़ा होती रहती है।। ६।।

नाड़ीव्रण के साध्यासाध्य लक्षण

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्ये-
च्छेषाश्चतस्त्रः खलु यत्नसाध्याः।। ७।।

इति नाडीव्रणरोगनिदानमेकोनपञ्चाशोऽध्यायः।। ४८।।

सन्निपातज नाड़ीव्रण साध्य होता है। वातज, पित्तज, कफज और शल्यज, ये चारों यत्नसाध्य होते हैं।। ७।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे नाडीव्रणरोगनिदानमेकोनपञ्चाशोऽध्यायः।। ४९।।

अथ भगन्दररोगनिदानम्

भगन्दर का पूर्वरूप

गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडिकाऽऽर्तिकृत्।
भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः।। १।।

दोहा— पञ्चासविं अध्याय महँ, भेद भगन्दर जानु।
कह्यो सुकवि वह ग्रन्थ लखि, वाको गौरव मानु।। १।।

गुदा के दो अंगुल की दूरी पर बगल में एक छोटा-सा फोड़ा होता है, वह बहुत पीड़ा करता है, उसके फूट जाने पर भगन्दर रोग होता है। वह पाँच प्रकार का होता है।। १।।

वातज शतपोनक नामक भगन्दर के लक्षण

कषायरूक्षैरिति कोपितोऽनिल-
स्त्वपानदेशे पिडिकाङ्करोति याम्।
उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं
रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी।। २।।
तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां
व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत्।

कसैली तथा रूखी वस्तुओं के खाने से, वायु अतिकुपित होकर गुदा के निकट एक छोटी सी फुड़िया उत्पन्न करती है। उसकी उपेक्षा करने से वह पकती है और दारुण पीड़ा करती है। फूटने पर उससे लाल-लाल फेन बहने लगता है। फिर उसमें अनेक घाव हो जाते हैं। उनमें से मूत्र, मल और बीर्थ बहने लगता है। इसे शतपोनक भगन्दर कहते हैं।। २।।

पित्तज उष्ट्रशिरोधर भगन्दर के लक्षण

प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं
करोति रक्तां पिडिकां गुदे गताम्।
तदऽऽशुपाकाऽहिमपूतिवाहिनीं
भगन्दरञ्चोष्ट्रशिरोधरं वदेत्।। ३।।

पित्त को कुपित करने वाली उष्ण आदि वस्तुओं के खाने से अतिकुपित पित्त गुदा में लाल रङ्ग का एक फोड़ा उत्पन्न करता है। वह बहुत शीघ्र पक जाता है और फूट कर ठंडी दुर्गन्धयुक्त पीब बहाने लगता है, इसको उष्ट्रशिरोधर नामक भगन्दर कहते हैं।। ३।।

कफज परिस्रावी भगन्दर के लक्षण

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः।
श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः।। ४।।

कफज भगन्दर में खुजली उठती है, गाढ़ी पीब बहती है, कड़ा होता है, पीड़ा मन्द होती है और उजला होता है। इसको परिस्रावी भगन्दर कहते हैं।। ४।।

शम्बूकावर्त भगन्दर के लक्षण

बहुवर्णरुजास्रावा पिडिका गोस्तनोपमा।
शम्बूकावर्तवन्नाडी शम्बूकावर्तको मतः।। ५।।

जिसमें गौ के थन समान फुड़िया हो, वह अनेक रंग की हो, पीड़ा के साथ बहती रहे और उसका घेरा घोंघे के समान हो, उसको शम्बूकावर्त कहते हैं।। ५।।

उन्मार्गी भगन्दर के लक्षण

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्धते
ह्युपेक्षणात् स्युः कृमयो विदार्य ते।
प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखै-
र्व्रणैस्तदुन्मार्गि भगन्दरं वदेत्।। ६।।

काँटे आदि से गुदा में घाव लगने पर, उसकी उपेक्षा करने से वह घाव बढ़कर गुदा के भीतर तक पहुँच जाता है और उसमें छोटे-छोटे कीड़े पड़ जाते हैं। इससे घाव विदीर्ण हो जाता है। वे कृमि उसे झांझर करके उसमें अनेक छेद कर देते हैं। उसको उन्मार्गी भगन्दर कहते हैं।। ६।।

भगन्दर के साध्यासाध्य विचार

घाराः साधयितुंदुःखाः सर्व एव भगन्दराः।
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः।। ७।।

सब भगन्दर घोर होते हैं और उनको सिद्ध करने में दुःख होता है। पर सन्निपातज असाध्य होता है और क्षतज विशेष असाध्य होता है।। ७।।

भगन्दर के असाध्य लक्षण

वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च।
भगन्दरात्प्रस्रवन्तो नाशयन्ति तमातुरम्।। ८।।

इति भगन्दररोगनिदानं पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५०।।

जिस रोगी के भगन्दर से अधोवायु, मूत्र, मल, कीड़े और बीज गिरते हैं, ये सब उस रोगी को मार डालते हैं।। ८।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे भगन्दररोगनिदानं पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।

अथोपदंशरोगनिदानम्

उपदंश की संप्राप्ति

हस्ताभिघातान्नखदन्तघाता-
दधावनादुत्यतिसेवनाद्वा ।
योनिप्रदोषच्च भवन्ति शिश्ने
पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः।। १।।

दोहा— इक्यावन अध्याय महँ, कहि उपदंश निदान।
ग्रन्थकार करते भये जग उपकार महान।। १।।

लिङ्गेन्द्रिय में हाथ से, नख से, दाँतों की चोट लगने से, भोग कर न धोने से, अत्यन्त मैथुन करने से, योनि के दोष से, शिश्न इन्द्रिय में विविध प्रकार के उपचारों से, पाँच प्रकार के उपदंश होते हैं।। १।।

वातज उपदंश के लक्षण

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः
स्फोटैर्व्यवस्येत् पवनोपदंशम्।

जिसमें लिङ्ग पर काले रङ्ग के फोड़े हों, उनमें सुई आदि से कोंचने की सी पीड़ा हो और ऐसा जान पड़े कि मानों शिश्न फटा जाता है, उसे वातज उपदंश कहते हैं।

पित्तज उपदंश के लक्षण

पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः
पित्तेन रक्तात्पिशितावभासैः।। २।।

जिसमें पीले-पीले फोड़े हों, उनमें से पीब अधिक निकले, दाह हो और रक्त में मांस के योग से फोड़े से दिखाई दें, उसे पित्तज उपदंश कहते हैं।। १।।

कफज उपदंश के लक्षण

सकण्डुरैश्शोथयुतैर्मरुद्भि-
श्शुक्लैर्घनस्त्रावयुतैः कफेन।

जिसमें उजले-उजले फोड़े हों, उनमें सूजन और खुजली हो तथा पीब गाढ़ी निकले, उसे कफज उपदंश कहते हैं।

सन्निपातज उपदंश के लक्षण

नानाविधस्त्रावरुजोपपन्न-
मसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम्।। ३।।

जिसके फोड़ों में नाना प्रकार की पीब आदि निकले और अतिपीड़ा हो, उसे त्रिदोषज (सन्निपातज) उपदंश कहते हैं। यह असाध्य होता है।। ३।।

उपदंश के असाध्य लक्षण

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं
मुष्कावशेषं परिवर्जयेत्तु।
सञ्जातमात्रे न करोति मूढः
क्रियान्नरो यो विषये प्रसक्तः।
कालेन शोथकृमिदाहपाकैः
प्रशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन।। ४।।

जिस उपदंश में मांस फट गया हो, कीड़ों ने लिङ्ग को खा लिया हो, केवल अण्डकोश ही शेष रह गए हों, उसको त्याग देना चाहिए। जो विषयासक्त मनुष्य उपदंश होते ही, औषधादि से उसका उपाय नहीं करता है, तो उसको काल बीतने पर सूजन हो फूटकर कृमि पड़ जाते हैं। दाह उत्पन्न होता है। शिश्न पक कर सड़ गल जाता है। उससे वह मूढ़ रोगी मर जाता है।। ४।।

लिङ्गवर्ति के लक्षण

अङ्कुरैरिव सङ्घातैरुपर्युपरिसंस्थितैः।
क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा।। ५।।
कोशस्याभ्यन्तरे सन्धौ सर्वसन्धिगतापि वा।
लिङ्गवर्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे।। ६।।
सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा।

इत्युपदंशरोगनिदानमेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५१।।

उपदंश होने पर लिङ्ग के ऊपर मांस के अँकुर से निकल आते हैं, धीरे-धीरे वे मुर्गे की शिखा के तुल्य एकट्ठे होकर एक बत्ती के समान हो जाते हैं। अथवा यह बत्ती अण्डकोश के जोड़ पर, भीतर या अतिसुकुमार लिङ्ग के अग्रभाग पर हो जाती है। यह लिङ्गवर्ति कहलाती है। कोई-कोई उसे ही लिङ्गार्श कहते हैं। इसमें बड़ी पीड़ा होती है। यह मोर के पंख के समान चिकनी और चमकती है, इस की चिकित्सा बड़ी कठिनता से होती है क्योंकि यह सन्निपात से होती है।। ५-६।।

अति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे उपदंशरोगनिदानमेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५१।।

अथ शूकरोगनिदानम्

शूकरोग की उत्पत्ति और संख्या

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः।। १।।

दोहा— बावनवीं अध्याय महँ, शूकनिदान बताय।
कीन्ह जगत उपकार कवि, सुजन सुनहु मन लाय।। १।।

जो मूढ़बुद्धि मनुष्य प्रमाण से अधिक प्रिय लिङ्ग को विष, कृमि की पट्टी और अन्य औषधों के लेप से, मोटा और बड़ा करना चाहता है, उसको अठारह प्रकार के शूकज रोग उत्पन्न होते हैं।। १।।

सर्षपिका के लक्षण

गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भुग्नहेतुका।
पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका बुधैः।। २।।

लिङ्ग पर दुष्ट घड़ियाल आदि की नाभि का लेप करने से, पीली सरसों के प्रमाण की फुन्सियाँ शिश्न के ऊपर निकल आती हैं, वे कफ और वात के संग से होती हैं, उनको सर्षपिका कहते हैं।। २।।

अष्ठीलिका के लक्षण

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाऽष्ठीलिका भवेत्।

किसी विषैली वस्तु के लेप करने से, वायु कोप करके लुहार की निहाई के तुल्य लिङ्ग के ऊपर कठोर फुन्सियाँ उत्पन्न करता है। उसे अष्ठीलिका कहते हैं।

ग्रथित के लक्षण

शूकैर्यत्पूरित शश्वद् ग्रथितन्नाम तत्कफात्।। ३।।

बार-बार शूक लेप करने से कफ कोप करता है। इससे शिश्न पर गाँठ पड़ जाती है। उसे ग्रथित कहते हैं।। ३।।

कुम्भिका के लक्षण

कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभाऽशुभा।

रक्त-पित्त के दोष से लिङ्ग के ऊपर जामुन की गुठली के आकार की काली फुन्सी निकल आती है। उसे कुम्भिका कहते हैं।

अलजी के लक्षण

तुल्यजान्त्वलजीं विद्याद्यथाप्रोक्तां विचक्षणः।। ४।।

प्रमेह के लक्षणों में कथित जो अलजी आकार का जो लाल या काला फोड़ा उत्पन्न हो, उसे अलजी कहते हैं।। ४।।

मृदित के लक्षण

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः।

शूक की पीड़ा से जब पुरुष लिङ्ग को ज़ोर से दबा देते हैं तो वायु के कोप से शिश्न पर सूजन हो जाती है। उसे मृदित कहते हैं।

संमूढ पिडिका के लक्षण

पाणिभ्यां भृशसंमूढ़े संमूढपिडिका भवेत्।। ५।।

कलबलाने पर दोनों हाथों से लिङ्ग को ज़ोर से मींजने से शिश्न पर एक फफोला-सा हो आता है, उसे मूढपिडिका कहते हैं।। ५।।

अवमन्थ के लक्षण

दीर्घा बह्व्यश्च पिडिका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः।
सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षवान्।। ६।।

लम्बी-लम्बी बहुत-सी फुन्सियाँ कफ और रक्त से संयोग से लिङ्ग भर पर हों, जो बीच-बीच में फटी हों, तो उसे अवमन्थ रोग कहते हैं। इसमें पीड़ा होती है और रोम खड़े हो जाते हैं।। ६।।

पुष्करिका के लक्षण

पिडिकाभिश्चिता या च पित्तशोणितसम्भवा।
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका तु सा।। ७।।

पित्त-रक्त से उत्पन्न बहुत सी छोटी-छोटी फुन्सियों से घिरी हुई कमल की पङ्खुड़ी के तुल्य जो शिश्न पर फुड़ियाँ होती हैं, उन्हें पुष्करिणी कहते हैं।। ७।।

स्पर्शहानि के लक्षण

स्पर्शहानिश्च जनयेच्छोणितं शूकदूषितम्।

शूक लेप करने से रुधिर दूषित होकर स्पर्श को नष्ट करता है, तब छूने से लिङ्ग में किसी भाँति का स्पर्श जान नहीं पड़ता।

उत्तमा के लक्षण

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च सा।
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजा।। ८।।

शूक के बार-बार लेप करने से रक्त पित्त कुपित होकर लिङ्ग पर मूँग और उड़द के तुल्य लाल फुन्सी उत्पन्न करता है। इस व्याधि को उत्तमा कहते हैं। यह अजीर्ण से होती है।। ८।।

शतपोनक के लक्षण

छिद्रैरणुमुखैर्लिङ्गं चितं यस्य समन्ततः।
वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः।। ९।।

जब पुरुष का लिङ्ग छोटे-छोटे मुख वाले बहुत से छेदों से युक्त हो जाता है, तब वह शतपोनक कहलाता है। यह रोग वायु और रक्त से उत्पन्न होता है।।९।।

त्वक्पाक के लक्षण

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहवान्।। १०।।

वात और पित्त के कोप से शिश्न पर का चर्म पक जाता है। इससे शिश्न में दाह और सब अङ्गों में ज्वर होने लगता है। इस रोग को त्वक्पाक कहते हैं।। १०।।

शोणितार्बुद के लक्षण

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडिकाभिर्निपीडितम्।
यस्य बस्तौ रुजश्चोग्रा ज्ञेयन्तच्छोणितार्बुदम्।। ११।।

जिस मनुष्य के लिङ्ग में काले और लाल छोटे-छोटे इतने फोड़े होते हैं कि उससे लिङ्ग अति पीड़ित हो जाता है अथवा उन फोड़ों के कारण बस्ति में अधिक पीड़ा होती है, उस रोग को शोणितार्बुद कहते हैं।। ११।।

मांसार्बुद के लक्षण

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः।। १२।।
विद्यात्तम्मांसपाकन्तु सर्वदोषकृतम्भिषक्।

जब लिङ्ग का मांस सड़ कर गिर पड़ता है और सब प्रकार की पीड़ा होती है, तब वैद्य उसको सन्निपातज मांसपाक कहते हैं।। १२।।

शूकज विद्रधि के लक्षण

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमिति निर्दिशेत्।। १३।।

सन्निपातज विद्रधि रोग के सब लक्षण शूकज विद्रधि में होते हैं।। १३।।

तिलकालक के लक्षण

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि च।
पातितानि पचन्त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः।। १४।।
कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः।
सन्निपातसमुत्थांस्तु तान् विद्यात्तिलकालकान्।। १५।।

काले अथवा चितकबरे विषसहित शूक जब लिङ्ग में होते हैं तो शिश्न को ऐसा गला देते हैं कि उसका कुछ चिह्न ही नहीं शेष रह जाता। जिस मनुष्य का जब मांस काला होकर लिङ्ग के हाड़ से अलग गिर पड़ता है, उसको सन्निपात से उत्पन्न यह रोग जाने। इसका नाम तिलकालक है।। १४-१५।।

शूकदोष का असाध्य लक्षण

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः।
विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः।। १६।।

इति शूकदोषरोगनिदानं द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५२।।

मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक शूकदोष में ये सब नहीं सिद्ध होते, असाध्य होते हैं।। १६।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे शूकदोषरोगनिदानं द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५२।।

अथ कुष्ठरोगनिदानम्

कुष्ठरोग की संप्राप्ति का कारण तथा संख्या

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च।
भजतामागतां छर्दिं वेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम्।। १।।
व्यायाममतिसन्तापमतिभुक्तनिषेविणाम् ।
शीतोष्णलङ्घनाहारान्क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम्।। २।।
घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम्।
अजीर्णाध्याशिनां चैव पञ्चकर्मापचारिणाम्।। ३।।
नवान्नदधिमत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम् ।
माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ।। ४।।
व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा।
विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापकर्मप्रकुर्वताम्।। ५।।
वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च।
दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः।। ६।।
अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव तु।
कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैस्समागतैः।। ७।।
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः।

दोहा— तिरपनवीं अध्याय महँ, कुष्ठ निदान बताय।
कवि कीन्ह्यो जग हित सुजन, वाहि सुनहु हर्षाय।। १।।

परस्पर विरोधी अन्नपानादिक, जैसे कि मछली और दूध एक ही संग खाने पीने से, पतली, चिकनी, गरुई वस्तुओं के भी एक ही संग खाने से, वमन होने को हो तब उसको रोकने से और अन्य मूत्र, पुरीषादि के वेगों के रोकने से, बहुत भोजन करके तुरन्त ही दण्ड-मुद्गर आदि व्यायाम करने से, सूर्य और अग्नि के सन्ताप को सेवन करने से, शीतल, उष्ण, लङ्घन, आहारादिकों को क्रमरहित विषम समय में करने से, घाम, श्रम और भय से पीड़ित होकर तुरन्त शीतल जल

के पीने और स्नान करने से, अधकच्चे चर्वणादि नित्य चबाने और खाने पर बिना पचे दुबारा और खाने से तथा वमन, विरेक, जुलाब आदि पाँच कर्मों के अच्छी प्रकार से न होने से, नया अन्न, दही, मछली, लोन और खटाई एक ही संग खाने से, उड़द, मूली, पीठी, तिल, दूध और गुड़ एक ही संग खाने से, अन्न बिना पचे मैथुन करने से, नियम से प्रतिदिन दिन में सोने से, ब्राह्मण, माता, पिता, गुरु आदि श्रेष्ठजनों का अनादर करने से और पापकर्म करने से, पुरुष के वात, पित्त, कफ तीनों दुष्ट होकर त्वचा, रक्त, मांस और जल को दूषित कर कुष्ठरोग उत्पन्न करते हैं। इन कोढ़ों के होने के सात मुख्य कारण हैं। तीन वातादिक दोष और चार दूषित त्वचा, रक्त, मांस और जल, इससे सात महाकुष्ठ उत्पन्न होते हैं। ग्यारह प्रकार के और भी छोटे-छोटे कोढ़ होते हैं। सब मिलकर अठारह कोढ़ हुए। छः दोषों से सात प्रकार के कुष्ठ होते हैं। तीन वात-पित्त-कफ से, तीन द्वन्द्वज (दो-दो के मिलने से) और एक सभी के मिलने से (सन्निपातज से), वास्तव में सब कुष्ठ तीनों दोषों के मिलने से ही होते हैं। उनमें जिसका लक्षण अधिक मिले, उसी के अनुसार औषधादि करनी चाहिए।। १-७।।

कुष्ठ के पूर्वरूप

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः ।
दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोष्ठोन्नतिः श्रमः।। ८।।
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः।
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम्।। ९।।
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम्।

जिस अङ्ग पर कुष्ठरोग होने को होता है, वहाँ की त्वचा चिकनी अथवा खरखरी हो जाती है। वहाँ कभी-कभी पसीना होता है अथवा नहीं भी होता है। त्वचा का रङ्ग और प्रकार का हो जाता है। वहाँ की खाल जलने लगती है तथा उसमें खजुली उठती है अथवा शून्य हो जाती है। चुटकी काटने आदि से कुछ नहीं जान पड़ता। सूई आदि से कोंचने की-सी पीड़ा होती है। बिना कुछ परिश्रम किए ही थकावट जान पड़ती है। शरीर में उसी अवसर पर जो घाव होते हैं तो उनमें बहुत पीड़ा होती है। घाव शीघ्र ही हो जाते हैं पर बहुत दिनों तक रहते हैं। जो घाव रूखे भी हो जाते हैं तो थोड़े से ही व्यतिक्रम में फिर भर आते हैं और

पीड़ा करने लगते हैं। रोम खड़े हो जाते हैं। रुधिर काला हो जाता है। ये सब होने वाले कुष्ठ के लक्षण हैं।। ८-९।।

सात महाकुष्ठों के लक्षण

कपालकुष्ठ के लक्षण

कृष्णारुणंकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु।। १०।।
कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम्।

जिस कुष्ठ का रङ्ग काला-लाल मिला हुआ ताम्र के रंग का-सा हो और मिट्टी के खपरे के समान रूखा हो, जिसमें कड़ा और पतला चर्म हो जाए तथा सुई के कोंचने की-सी बहुत पीड़ा होती रहे, उसे कपालकुष्ठ कहते हैं। यह कुष्ठ विषम होता है। इसकी औषध कठिनता से होती है।। १०।।

उदुम्बर कुष्ठ के लक्षण

त्वग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम्।। ११।।
उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत्।

जिस कुष्ठ में त्वचा में दाह हो, ललाई रहे, खजुली उठे, उसके चारों ओर के रोम पीले पड़ जाएं और गूलर के फल के ऐसा रङ्ग हो जाए, उसे औदुम्बर-कुष्ठ कहते हैं।। ११।।

मण्डलकुष्ठ के लक्षण

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम्।। १२।।
कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते।

जिस कुष्ठ में चमड़े का रंग उजला अथवा लाल हो जाता है, कड़ापन होता है, गाढ़ा तथा चिकना मण्डलाकार उभर आता है अथवा जिसके मण्डल एक दूसरे से मिल जाते हैं, उसे मण्डलकुष्ठ कहते हैं।। १२।।

ऋक्षजिह्वकुष्ठ के लक्षण

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तःश्यावं सवेदनम्।। १३।।
यदृक्षजिह्वसंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते।

जिस कुष्ठ में चमड़ा कर्कश, ताम्रवर्ण और बीच-बीच में काला भी हो जाता है, पीड़ा होती है और जो ऋक्ष की जीभ के आकार का होता है, उसे ऋक्षजिह्व कुष्ठ कहते हैं।। १३।।

पुण्डरीककुष्ठ के लक्षण

सश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम्।। १४।।
सोत्सेधञ्च सरागञ्च पुण्डरीकं प्रचक्षते।

जिस कुष्ठ में चमड़ा उजलाई लिए लाल होता है, जो आकार में उजले कमल के दल के ऐसा होता है, खाल के ऊपर कुछ ऊँचाई और ललाई भी रहती है, उसे पुण्डरीककुष्ठ कहते हैं।। १४।।

सिध्मकुष्ठ के लक्षण

श्वेतं ताम्रन्तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति।। १५।।
प्रायश्चोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम्।

जिस कुष्ठ में उजला अथवा ताँबे के रङ्ग का चमड़ा हो जाता है, परन्तु पतला और थोड़ा होता है। खुजलाने से उसमें से कुछ धूलि-सी उड़ती है। वह बहुधा छाती पर होता है। इसका आकार उजली लौकी के फूल का-सा होता है। इसे सिध्म (सेहुआँ) कुष्ठ कहते हैं।। १५।।

काकणकुष्ठ के लक्षण

यत्काकणन्तिकावर्णं सपाकन्तीव्रवेदनम्।
त्रिदोषलिङ्गन्तत्कुष्ठङ्काकणन्नैव सिध्यति।। १६।।

जिस कुष्ठ का रंग घुघुची का-सा होता है व बीच-बीच में काला या लाल हो जाता है, जो पक जाता है और पीड़ा भी करता है, जिसमें तीनों दोषों के लक्षण होते हैं, उसे काकणकुष्ठ कहते हैं। यह असाध्य होता है।। १६।।

ग्यारह क्षुद्र कुष्ठों के लक्षण

गजचर्मकुष्ठ के लक्षण

अस्वेदनम्महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम्।
तदेव कुष्ठञ्चर्माख्यम्बहुलं हस्तिचर्मवत्।। १७।।

जिस कुष्ठ में पसीना नहीं आता, जो मोटे मांसल स्थानों में ही होता है, मछली के छिलके के तुल्य जिसके छिलके होते हैं और हाथी के चर्म के समान वहाँ का चर्म मोटा हो जाता है, इस रोग को गजचर्मकुष्ठ कहते हैं।। १७।।

किटिभकुष्ठ के लक्षण

श्यावङ्किणखरस्पर्शङ्किटिभं परुषं स्मृतम्।

जिस कुष्ठ में चमड़ा नीला हो जाता है, स्पर्श करने में घाव खरखरा जान पड़ता है और रूखा रहता है, उसे किटिभकुष्ठ कहते हैं।।

विपादिकाकुष्ठ के लक्षण

वैपादिकम्पाणिपादस्फुटनन्तीव्रवेदनम्।। १८।।

जिस कुष्ठ में हाथ-पैर फट जाते हैं और बड़ी पीड़ा होती है, उसे वैपादिक कुष्ठ (व्यवाई) कहते हैं।। १८।।

अलसककुष्ठ के लक्षण

कण्डूमद्भिस्सरागैश्च गण्डैरलसकञ्चितम्।

जिस कुष्ठ में ताम्रवर्ण की खजुलाती हुंई बहुत-सी फुन्सियाँ हो जाती हैं, उसे अलसककुष्ठ कहते हैं।

दद्रूकुष्ठ के लक्षण

सकण्डूरागपिडिकन्दद्रुमण्डलमुद्गतम्।। १९।।

जिस कुष्ठ में खजुलीसहित लाल-लाल गोल-गोल कुछ फुन्सियाँ चमड़े से ऊँची होती हैं, उसे दद्रूमण्डलकुष्ठ (दाद) कहते हैं।। १९।।

चर्मदलकुष्ठ के लक्षण

रक्तं सशूलं कण्डूमत्सस्फोटं दलयत्यपि।
तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शसहमुच्यते ।। २०।।

जिस कुष्ठ में चर्म लाल हो जाता है, पीड़ासहित खजुली होती है और चमड़ा फट जाता है, उसे छूते नहीं बनता, उसे चर्मदलकुष्ठ कहते हैं।। २०।।

पामा और कच्छु कुष्ठ के लक्षण

सूक्ष्मा बह्व्यः पिडिकाः साववत्यः

पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः।

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता

ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिचोश्च।। २१।।

जिस कुष्ठ में छोटी-छोटी बहुत-सी फुन्सियाँ खजुली और दाह से युक्त होती हैं और उनमें से कुछ पीब भी निकलती है, उसे पामा (खाज) कहते हैं। जब इसी रोग में बड़े दाहकारी बड़े-बड़े फोड़े हों और प्रायः दोनों हाथों में हों या नितम्बों में हों तो उसे कच्छुकुष्ठ कहते हैं।। २१।।

विस्फोटकुष्ठ के लक्षण

स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः।

जिस रोग में काले अथवा लाल फोड़े निकल आते हैं और फूट जाते हैं तथा चमड़ा बहुत पतला होता है, उसे विस्फोटक कहते हैं।।

रकसाकुष्ठ के लक्षण

कण्ड्वन्विता याः पिडिकाश्शरीरे

संस्रावहीना रकसोच्यते सा।। २२।।

जिस कुष्ठ में शरीर में जो खजुलीसहित फुन्सियाँ होती हैं पर उनमें से पीब नहीं निकलती, उस कुष्ठ को रकसा कहते हैं।। २२।।

शतारुकुष्ठ के लक्षण

रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम्।

जिस कुष्ठ में लाल और श्यामरङ्ग से मिले हुए, दाह पीड़ा युक्त बहुत से घाव हो जाते हैं, उसे शतारुकुष्ठ कहते हैं।

बिचर्चिका के लक्षण

सकण्डूः पिडिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका।। २३।।

जिस कुष्ठ में खुजलीसहित काली-काली फुन्सियाँ हों और उनमें से पीब बहुत निकले, उस रोग को विचर्चिका कहते हैं।। २३।।

कुष्ठ में वातादि दोषों के लक्षण

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम्।
पित्तात्प्रक्वथितं दाहरागस्रावान्वितं मतम्।। २४।।
कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम्।
द्विदलन्द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिङ्ग सान्निपातिकम्।। २५।।

वात के संयोग से जो कुष्ठ होता है, वह खरखरा, काला और लाल मिला हुआ, रूखा तथा पीड़ा युक्त होता है। पित्त के योग से होने वाले कुष्ठ का रङ्ग लाल तथा दाहयुक्त होता है और बहता रहता है। कफ के योग से उत्पन्न कुष्ठ का व्रण रसीला, कठोर, चिकना, खुजलाहट वाला, शीतल और गरुआ होता है। द्वन्द्वज कुष्ठ में जो जिन दो के योग से होता है, उसमें उन दोनों के लक्षण रहते हैं। सन्निपातज कुष्ठ में तीनों दोष होते हैं।। २४-२५।।

त्वग्गत कुष्ठ के लक्षण

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यन्तु जायते।
त्वग्दाहो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम्।। २६।।

कुष्ठ रोग जब त्वचा में रहता है तो अङ्ग में रुखाई आ जाती है, त्वचा में दाह होने लगती है, रोम खड़े हो जाते हैं, पसीना बहुत निकलता है, अङ्ग का रङ्ग बदल जाता है।। २६।।

रुधिरगत कुष्ठ के लक्षण

कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठेशोणितसंश्रये।

कुष्ठरोग जब रुधिर में प्रवेश करके रहता है तो खुजली अधिक होती है और बहुत पीब बहती है।

मांसगत कुष्ठ के लक्षण

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यम्पिडिकोद्गमः।। २७।।
तोदस्स्फोटः स्थिरत्वञ्च कुष्ठे मांससमाश्रिते।

मांस में रहने वाले कुष्ठ में बहुधा मुख सूखा रहता है, देह खरखरा हो जाता है, शरीर में छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकल आती हैं, सुई से कोंचने की-सी पीड़ा

हुआ करती है, बड़े-बड़े फोड़े हो जाते हैं और बहुत दिनों तक स्थिर बने रहते हैं।। २७।।

मेदागत कुष्ठ के लक्षण

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां सम्भेदः क्षतसर्पणम्।। २८।।
मेदस्स्थानगते लिङ्गम्प्रागुक्तानि तथैव च।

मेदा स्थान में कुष्ठ के पहुँचने और ठहरने से हाथ-पैर गल जाते हैं, इससे चलना-फिरना बन्द हो जाता है, देह सब फूट जाती है और सब शरीर में घाव फैलते जाते हैं। इस कुष्ठ में रस-रक्त-मांसगत कुष्ठों के लक्षण भी होते हैं।। २८।।

अस्थि-मज्जागत कुष्ठ के लक्षण

नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु कृमिसम्भवः।
स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते।। २९।।

अस्थि और मज्जा में रहने वाले कुष्ठ में नासिका गलकर गिर जाती है अथवा बैठकर पच्ची हो जाती है। नेत्र लाल हो जाते हैं। घावों में कृमि पड़ जाते हैं। गला बैठ जाता है। इससे भायँ-भायँ बोलने लगता है।। २९।।

शुक्रगत कुष्ठ के लक्षण

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः।
यदपत्यन्तयोर्जातज्ज्ञेयन्तदपि कुष्ठितम्।। ३०।।

स्त्री और पुरुष दोनों को कुष्ठ की अधिकता होने से पुरुष का बीज और स्त्री का (ऋतु-सम्बधी) रुधिर दुष्ट हो जाता है। इससे जो सन्तान (कन्या या पुत्र) उन दोनों से होते हैं, वे भी कुष्ठी होते हैं। उनका कुष्ठ असाध्य होता है।। ३०।।

साध्यासाध्य कुष्ठ के लक्षण

साध्यन्त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकञ्च यत्।
मेदसि द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यम्मज्जास्थिसंश्रयम्।। ३१।।

त्वचा, रक्त और मांस में स्थित कुष्ठ साध्य होता है। जिस कुष्ठ में वात-कफ की अधिकता होती है, वह भी साध्य होता है। जो मेद में होता है तथा वातादिक

दो-दो के योग से होता है, वह कुष्ठ साध्य होता है। जो मज्जा और अस्थि में कुष्ठ पहुँच जाता है, वह त्याज्य (छोड़ देने के योग्य) होता है।। ३१।।

असाध्य कुष्ठ के अरिष्ट

कृमिहृल्लासमन्दाग्निसंयुतं यत्त्रिदोषजम्।
प्रभिन्नम्प्रस्नुताङ्गञ्च रक्तनेत्रं हतस्वरम्।। ३२।।
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम्।

जिस कुष्ठ में कीड़े पड़े हों, जी मचलाता रहता हो अथवा मन्दाग्नि हो और तीनों दोषों के संयोग से उत्पन्न हो, यह भी असाध्य होता है। जो कोढ़ फूट जाता है और अङ्गों से रुधिर तथा पीब बहने लगती है, जिसके नेत्र लाल बने रहते हैं और जिसका शब्द हत हो जाता है अथवा जिसको वमन-विरेचन आदि पाँचों कर्मों से लाभ नहीं होता, ऐसा कुष्ठ, उस कोढ़ी को मार ही डालता है।। ३२।।

कुष्ठों में वातादि दोषों की प्रधानता

वातेन कुष्ठङ्कापालम्पित्तेनौदुम्बरङ्कफात्।
मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋक्षाख्यं वातपित्तजम्।। ३३।।
चर्मैककुष्ठङ्किटिभं सिध्मालसविपादिकः।
वातश्लेष्मोद्भवाश्श्लेष्मपित्ताद्द्रुशतारुषी ।। ३४।।
पुण्डरीकं सविस्फोटम्पामा चर्मदलन्तथा।
सर्वैस्स्यात्काकणम्पूर्वन्त्रिकन्दद्रु सकाकणम् ।। ३५।।
पुण्डरीकर्क्षजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु।

कपालकुष्ठ में वात प्रधान होता है। औदुम्बर में पित्त, तथा मण्डल और विचर्च्चिका में कफ प्रधान रहता है। ऋक्षजिह्व में वात-पित्त प्रधान रहता है। चर्मकुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलस और विपादिका में वात-कफ प्रधान रहते हैं। दद्रू और शतारु कफ-पित्त से होते हैं। पुण्डरीक, विस्फोटक, पामा और चर्मदल, इनमें भी कफ-पित्त ही प्रधान होते हैं। काकणकुष्ठ में वात-पित्त-कफ तीनों प्रधान होते हैं। कपाल, औदुम्बर, मण्डल, दद्रू, काकण, पुण्डरीक और ऋक्षजिह्व, ये सात महाकुष्ठ हैं।। ३३-३५।।

श्वित्र-किलास कुष्ठ के लक्षण

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रङ्किलासं वारुणम्भवेत्।
निर्दिष्टमपरिस्त्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम्।। ३६।।

श्वेतकुष्ठ और किलास का रङ्ग लाल होता है। ये दोनों फूटते, पकते और बहते नहीं। पीड़ा भी इनमें नहीं होती। ये तीनों दोषों और रक्त-मांस-मेद इन तीनों धातुओं के भी आश्रित रहते हैं।। ३६।।

दोषभेद से लक्षण-वर्णभेद

वाताद्रूक्षारुणम्पित्तात्ताम्रङ्कमलपत्रवत् ।
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतङ्घनं गुरु।। ३७।।
सकण्डुरं क्रमाद्रक्तमांसमेदस्सु वा दिशेत्।
वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रन्तच्चोत्तरोत्तरम्।। ३८।।

वायु के कारण कुष्ठ रूखा अथवा लाल होता है। पित्त से कमल की पंखुड़ी के तुल्य लाल रङ्ग का होता है। इसमें दाह होने के कारण देह भर के रोम गिर पड़ते हैं। कफ से श्वेत, घन और गुरु होता है और कुछ सहराता है। इसी क्रम से ये रक्त, मांस और मेद के आश्रित होते हैं। रक्त के आश्रित होने से तामाड़ रङ्ग है। मांस के आश्रित होने से लाल रङ्ग होता है। मेद के आश्रित होने से श्वेत रङ्ग का होता है। इनमें रक्ताश्रित से मांसाश्रित और मांसाश्रित से मेदाश्रित कष्टसाध्य होता है।। ३७-३८।।

श्वित्र के साध्यासाध्य के लक्षण

अशुक्लरोमाऽबहुलमसंश्लिष्टमथो नवम्।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा।। ३९।।

जिस श्वित्र (उजले दाग) पर के बाल काले बने हैं, उजले नहीं हो गये, उजलाई भी हलकी, दाग़ एक में मिले नहीं हैं और अभी नवीन हैं, बहुत दिनों के नहीं हुए हैं और दाग़ अग्नि का जला हुआ नहीं है, यह श्वित्र साध्य होता है। इसके विपरीत श्वित्र असाध्य होने के कारण त्याज्य होता है।। ३९।।

असाध्य कुष्ठ के लक्षण

गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम्।
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता।। ४०।।

गुदा और लिङ्गादि गुप्त स्थानों का, हाथों के ऊपर का, पैरों के तलवों का और ओठों पर का किलासकुष्ठ चाहे बहुत दिनों का न भी हो, नया ही हो, तो भी अपनी सिद्धि चाहने वाले वैद्य के लिए वर्जनीय है। इसकी औषधि न करें।। ४०।।

संसर्गज रोग

प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्।। ४१।।
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्।। ४२।।

इति कुष्ठरोगनिदानं त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५३।।

मैथुन करने से, अङ्गों के छूने अथवा एक में रगड़ने से, श्वास लगने से, एक संग एक ही थाली में भोजन करने से, एक शय्या पर सोने से, एक ही आसन पर साथ ही बैठने से, वस्त्र धारण करने से, माला पहनने से, कोढ़, ज्वर, सूखना, नेत्र रोग, महामारी, खाज, मिरगी आदि औपसर्गिक रोग एक मनुष्य से दूसरे पर संक्रमण करते हैं। अर्थात् इन रोगियों के सङ्ग मैथुनादि करने से, करने वाले को भी हो जाते हैं।। ४१-४२।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे कुष्ठरोगनिदानं त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५३।।

अथ शीतपित्तरोगनिदानम्

शीतपित्त की संप्राप्ति

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ।
पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पतः।। १।।

दोहा— चौबनवीं अध्याय महँ, शीतपित्त कहि दीन।
देखहु सुजन विचारसों, बुद्धि तुम्हारि प्रवीन।। १।।

अधिक शीत पवन के लग जाने से, अतिदुष्ट होकर कफ और वायु पित्त के सङ्ग मिलकर, रुधिर में प्रविष्ट हो जाते हैं और बाहर त्वचा में भी फैल जाते हैं। इसे शीतपित्त (पित्ती उछलना) कहते हैं।। १।।

शीतपित्त का पूर्वरूप

पिपासारुचिहृल्लासमोहःसादाङ्गगौरवम्।
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम्।। २।।

शीतपित्त होने के पूर्व पिपासा, अरुचि, मुख में पानी छूटना, मूर्च्छा, शरीर का टूटना, अङ्गों में भारीपन और नेत्रों में ललाई, ये सब लक्षण होते हैं।। २।।

शीतपित्त और उदर्द के लक्षण

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः सञ्जायते बहिः।
सकण्डूस्तोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ।। ३।।
उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे।
वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः।। ४।।

इसमें पीली बरैंयों के काटने के समान कुछ सूजन होती है, खुजलाहट भी होती है और सूई आदि कोंचने की-सी पीड़ा भी होती है, ओकाई आती है, ज्वर होता है और दाह बहुत होता है। इस रोग को उदर्द कहते हैं। कोई-कोई शीतपित्त कहते हैं। शीतपित्त में वात की प्रधानता होती है और उदर्द में कफ की अधिकता होती है।। ३-४।।

उदर्द के अन्य लक्षण

सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः।
शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्तितः।। ५।।

शीतलता से कुपित कफ देह पर ललझरे मण्डल उछालता है। वे बहुत खजुलाते हैं। उनके किनारे-किनारे ऊँचा और बीच में कुछ खाली रहता है। इसे उदर्द कहते हैं।। ५।।

कोठ उत्कोठ के लक्षण

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।
मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च।
उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते।। ६।।

इति शीतपित्तोदर्दकोठरोगनिदानं चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।

खुलकर अच्छे प्रकार वमन न होने से और पित्त-श्लेष्मा से बिगड़े हुए अन्न के रुकने से, खुजली सहित बहुत से लाल-लाल चकत्ते शरीर भर में पड़ जाते हैं। इसे उत्कोठ कहते हैं। यदि यही बार-बार उछलता और मिटता रहे, तो इसे कोठ कहते हैं।। ६।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे शीतपित्तोदर्दकोठरोगनिदानं-
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५८।।

अथाम्लपित्तरोगनिदानम्

अम्लपित्त की संप्राप्ति

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्त-
प्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम्।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा य-
त्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः।। १।।

दोहा— पचपनवीं अध्याय महँ, अम्लपित्त को भेद।
देखि ताहि सज्जन भिषक, लहैं न श्रम नहिं खेद।। १।।

परस्पर विरुद्ध पदार्थ दूध, मछली आदि के एक सङ्ग भोजनादि करने से, दुष्ट तथा अम्ल, बासी आदि अन्न खाने से, बहुत गर्मी करने वाले और पित्त को कुंपित करने वाले अन्न-पान के सेवन करने से, अपने हेतुओं से इकट्ठा हुआ पित्त नष्ट हो जाता है। इसी को पण्डित लोग अम्लपित्त कहते हैं।। १।।

अधोगत अम्लपित्त के लक्षण

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि
प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम्।
हृल्लासकोठानलसादहर्ष-
स्वेदाङ्गपीतत्वकरङ्कदाचित् ।। ३।।

जब अम्लपित्त नीचे की ओर जाता है, तो तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम और मोह होते हैं और अनेक प्रकार के कुतर्क होते हैं। जी मचलाता है, कोठे में गड़बड़ होती है, अग्नि मन्द हो जाती है, रोमाञ्च होता है, पसीना बहुत होता है, शरीर पीला हो जाता है, तब पित्त काला और लाल होकर मल के संग नीचे गिरता है।। ३।।

ऊर्ध्वगत अम्लपित्त के लक्षण

वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्ण-
मारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्।
मांसोदकाभन्त्वतिपिच्छिलाच्छं
श्लेष्मानुजातं विविधं रसेन।। ४।।

जब ऊर्ध्वगत अम्लपित्त होता है, तो हरा, पीला, नीला, काला, ताम्रवर्ण, रुधिर के रङ्ग का, अत्यन्त खट्टा, मांस के धोवन के पानी के रङ्ग का, फेन के सदृश, कफयुक्त, लोनछा तथा कसैला आदि विविध प्रकार का वान्त होता है।। ४।।

आहार करने पर अवस्था विशेष

भुक्ते विदग्धेऽप्यथवाऽप्यभुक्ते
करोति तिक्ताम्लवमिङ्कदाचित्।
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठ-
हृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजञ्च।। ५।।
करचरणदाहमौष्ण्यं महती-
मरुचिं ज्वरञ्च कफपित्तम्।
जनयति कण्डूमण्डलपिडिका-
शतनिचितगात्ररोगचयम् ।। ६।।

कभी भोजन करने के बाद और अन्न पचने के पूर्व, कभी बिना भोजन किए ही वमन हो जाता है। वह वमन तीता, खट्टा मिला हुआ होता है। ऐसी ही डकार आती है। कण्ठ, हृदय और कोखा में दाह होता है। शिर में पीड़ा होती है। कफ-पित्तज अम्लपित्त रोग में हाथ-पैरों में दाह, शरीर टूटना, बड़ी भारी अरुचि, ज्वर, कफ, पित्त और खुजली का होना, ददरे पड़ जाना आदि उपद्रव होते हैं। बहुत सी छोटी-छोटी फुन्सियाँ शरीर में हो जाती हैं।। ५-६।।

अम्लपित्त का साध्यासाध्य विचार

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित्।। ७।।

यह अम्लपित्त रोग जब नया होता है तो यत्न-साध्य होता है। जब बहुत दिनों का हो जाता है, तो भी औषध करने के योग्य रहता है। चिरकाल से उत्पन्न यही किसी पथ्य करने वाले बलवान् पुरुष का कभी-कभी कष्टसाध्य होता है।। ७।।

अम्लपित्त में दोषसंसर्ग

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत्।
दोषलिङ्गेन मतिमान् भिषङ्मोहकरं हि तत्।। ८।।

वायुयुक्त अम्लपित्त, वायु-कफयुक्त अम्लपित्त और कफयुक्त अम्लपित्त, इन तीनों प्रकारों के अम्लपित्तों की परीक्षा वातादि दोषों के लक्षणों के अनुसार बुद्धिमान् वैद्य करे क्योंकि यह रोग वैद्यों को भ्रमकारक होता है। अधोगत अम्लपित्त में अतीसार का भ्रम हो जाता है, और ऊर्ध्वगत अम्लपित्त में वमन का भ्रम होता है।। ८।।

वातयुक्त अम्लपित्त के लक्षण

कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि।
तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षाण्यनिलयुते ।। ९।।

वायुयुक्त अम्लपित्त में, काँपना, अनर्थ बकना, मूर्च्छा, शरीर का चिपचिपाना, सुस्त रहना, शूल उठना, नेत्रों के आगे अन्धकार हो जाना, चित्त घबराना, मोह होना और रोमाञ्च होना, ये लक्षण होते हैं।। ९।।

कफयुक्त अम्लपित्त के लक्षण

कफनिष्ठीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः।
दहनबलसादकण्डूनिद्राश्चिह्नञ्च कफानुगते।। १०।।

कफयुक्त अम्लपित्त में, कफ का थूकना, शरीर में गुरुता, अङ्गों में जड़ता, अरुचि, शीतलता, शरीर में सुस्ती, वमन होना, मुख में चटचटाहट, अग्नि की मन्दता, खुजली और नींद अधिक आना, ये सब लक्षण होते हैं।। १०।।

वात-कफयुक्त अम्लपित्त के लक्षण

उभयमिदमेव चिह्नम्मारुतकफसम्भवे भवत्यम्ले।। ११।।

वात-कफयुक्त अम्लपित्त में ऊपर वाले दोनों के सब लक्षण होते हैं।। ११।।

कफ-पित्तयुक्त अम्लपित्त के लक्षण

भ्रमो मूर्च्छारुचिच्छर्दिरालस्यञ्च शिरोरुजः।
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम्।। १२।।

इत्यम्लपित्तरोगनिदानं पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।

कफ-पित्तयुक्त अम्लपित्त में भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वान्त, आलस्य, शिर में पीड़ा, मुख में पानी छूटना और मुख मीठा रहना, ये सब लक्षण होते हैं।। १२।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादेऽम्लपित्तरोगनिदानं
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५५।।

अथ विसर्परोगनिदानम्

विसर्प की संख्यानिरुक्ति

लवणाम्लकटूष्णादिसेवनाद्दोषकोपतः ।
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात्।। १।।

दोहा— छप्पनवीं अध्याय महँ, कहा विसर्प निदान।
देखहिं सुजन लगाय चित्त, कविकृत अर्थ प्रमान।। १।।

खारी, खट्टी, कड़वी और उष्ण वस्तुओं के अधिक सेवन करने से

वातादिक कुपित होकर विसर्परोग को उत्पन्न करते हैं। वह सात प्रकार का है। सब ओर शीघ्र ही फैल जाने से इस रोग का नाम विसर्प हुआ है।। १।।

विसर्प के सात भेद

पृथक्त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पा द्वन्द्वजास्त्रयः।
वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः।। २।।
चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः।
आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः।। ३।।
अग्निकर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः।
बुद्ध्या निपुणया साध्यो भिषजा यत्नतः क्वचित्।। ४।।

उन सातों में वात-पित्त-कफ से अलग-अलग तीन, इन तीनों के मिलने से एक, दो-दो के मिलने से तीन द्वन्द्वज। पहला वातिक, दूसरा पैत्तिक, तीसरा कफज, चौथा सान्निपातिक, ये चार विसर्परोग हुए। तीनों द्वन्द्वजों के नाम ये हैं। पहला आग्नेय, यह वात और पित्त से होता है। दूसरा ग्रन्थिनामा, यह कफ और वात दोनों के योग से उत्पन्न होता है। तीसरा अग्निकर्दमिक, यह बड़ा घोर होकर पित्त-कफ दोनों के योग से होता है। इसे निपुणबुद्धि कोई वैद्य बड़े यत्न से कहीं सिद्ध कर सकता है। प्रायः यह असाध्य ही होता है।। २-४।।

विसर्प के दोष और दूष्य भेद

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यन्दोषास्त्रयो मलाः।
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः।। ५।।

रक्त, लसीकात्वक् (खाल पर का लाल पानी), मांस और रस, ये चार दूष्य, और वात, पित्त और कफ,ये तीनों दोष, सब विसर्प रोगों की उत्पत्ति में इन्हीं सात धातुओं को कारण समझना चाहिए।। ५।।

वातज विसर्प के लक्षण

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः।
शोथस्फुरणनिस्तोदो भेदायासार्तिहर्षवान्।। ६।।

उनमें वातज विसर्प रोग में, वातज्वर के समान व्यथा होती है और शोथ होता है। अङ्ग फरकते हैं। कोंचना-सा विदित होता है। फट या फूट जाने की-सी पीड़ा होती है। रोमाञ्च होता है। यह विसर्प लम्बा होता है।। ६।।

पैत्तिक विसर्प के लक्षण

पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः।

पित्तज विसर्प बहुत शीघ्र फैल जाता है और पित्तज्वर के सब चिह्न इसमें होते हैं। इसका रङ्ग लाल होता है।

कफज विसर्प के लक्षण

कफात् कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक्।

कफज विसर्प में खुजलाहट बहुत होती है, वह चिकना होता है, और कफ ज्वर के समान पीड़ा होती है।

सन्निपातज विसर्प के लक्षण

सन्निपातसमुत्थस्तु सर्वरूपसमन्वितः।। ७।।

सन्निपातज विसर्प में वात-पित्त-कफ, तीनों के सब लक्षण होते हैं।। ७।।

वात-पित्तज विसर्प के लक्षण

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः।
अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्वृतः ।। ८।।
करोति सर्वमङ्गञ्च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत्।
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः।। ९।।
शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाऽशूपचीयते।
अग्निदग्धनिभैः स्फोटैः शीघ्रं गत्वा द्रुतं स च।। १०।।
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः।
व्यथतेऽङ्गं हरेत्संज्ञां निद्राञ्च श्वासमीरयेत्।। ११।।
हिक्कां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना।
क्वचित्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु।। १२।।

चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहप्रमोहवान्
दुष्प्रबोधोऽमश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते।। १३।।

वात-पित्तज अग्निविसर्परोग में ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतीसार, पिपासा, भ्रम, हड़फूटन, अग्नि की मन्दता, नेत्रों के आगे अँधेरा हो जाना और अरुचि, ये सब होते हैं। इस हेतु से सब अङ्ग तपते हुए अङ्गारों के समान जलने लगते हैं। जिस-जिस अङ्ग में विसर्प होता है, वह-वह अङ्ग अङ्गारों के तुल्य काले, नीले, और लाल चकत्तों के साथ सूज जाता है और तुरन्त अग्नि के जलने से उत्पन्न फफोलों के समान फफोलों से युक्त हो जाता है। वह विसर्प शीघ्र ही जाकर अपने निकट के किसी सुकुमार स्थान पर पहँच जाता है और अधिक पीड़ा करने लगता है। क्योंकि वात अधिक बलवान् होता है, इससे अङ्ग को व्यथित करता है। संज्ञा और निद्रा को हर लेता है। श्वास को अधिक बढ़ाता है। हिचकी को बढ़ाता है। ऐसी अवस्था में उस मनुष्य को यह ज्ञान नहीं रहता कि मैं भूमि पर पड़ा हूँ या शय्या पर या अन्य किसी आसन पर, वह अत्यन्त अचेत हो जाता है, और इधर-उधर लोटता रहता है। मन-देह दोनों अचेत हो जाते हैं, इससे मरण के तुल्य घोर निद्रा आ जाती है। यह रोग वात-पित्तज अग्निविसर्प कहलाता है।। ८-१३।।

वात-श्लैष्मिक ग्रन्थिविसर्प के लक्षण

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम्।
रक्तं च वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम्।। १४।।
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम्।
ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम्।। १५।।
श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्काप्रविभ्रमैः ।
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ।
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः।। १६।।

अपने आप जब कफ कुपित होकर वायु को रोकता है तो वह पवन उस कफ को बहुत प्रकार से भेदन करके और बढ़े हुए रक्त को भी भेदन करके चर्म, मोटी-पतली नसें, और मांस में जाकर, उनको दूषित करके बड़ी, छोटी, गोल, मोटी, और खरखरी गाँठियों की माला को उत्पन्न करता है। इस माला कीगाठियाँ

लाल रङ्ग की, तीव्र पीड़ा करने वाली और ज्वर करने वाली होती हैं। श्वास, खाँसी, अतीसार, शोष, हिचकी, विभ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्च्छा, अङ्ग-भङ्ग और अग्नि की मन्दता भी ग्रन्थिमाला में होती है। कफ-वायु के कोप से उत्पन्न यही ग्रन्थिविसर्प रोग कहलाता है।। १४-१६।।

पित्त-श्लैष्मिक कर्दमविसर्प के लक्षण

कफपित्तज्ज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा।
अङ्गावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ।। १७।।
मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम्।
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स विसर्पति।। १८।।
प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक्।
पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ।। १९।।
मेचकाभः सितस्स्निग्धो मलिनश्शोथवान् गुरुः।
गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नो वदीर्यति।। २०।।
पङ्कवच्छीर्णमांसश्च स्फुटत्स्नायुशिरागणः।
शवगन्धिश्च वीसर्पं कर्दमाख्यमुशन्ति तम्।। २१।।

कफ और पित्तज कर्दम नाम विसर्प में ज्वर, देह का तनना, निद्रा, तन्द्रा, शिर की पीड़ा, अङ्गों का टूटना, अङ्ग फटकना, अनर्थ बकना, अरुचि, भ्रम होना, मूर्च्छा, अग्नि का मन्द होना, हड़फूटन, पिपासा, इन्द्रियों की गुरुता, आम पड़ना, मलवाही स्रोतों का लिया हुआ-सा रहना होता है। बहुधा यह विसर्प रोग अमाशय से उत्पन्न होकर सब ओर फैलता है। परन्तु सब ओर पीड़ा बहुत नहीं करता। उसके ऊपर पीली, लाल और पाण्डु रङ्ग की फुन्सियाँ होती हैं। विसर्प सफेद, चिकना, काला, श्यामल, मैला, सूजन सहित, गरुआई लिए भारी, परिपाक से युक्त, अधिक उष्णता वाला होता है। झलझलाहट हो जाती है। दबाने से कुछ काल तक शीतलता जान पड़ती है, फिर पीछे फुन्सियाँ और फलके फूट जाते हैं अथवा उसका मांस कीचड़ के तुल्य गल जाता है। फिर सब मोटी, पतली, बड़ी, छोटी नसें मांस गलने के कारण खुल जाती हैं। तब मरे-सड़े हुए जन्तु की-सी दुर्गन्ध आने लगती है। इसको कर्दमविसर्प कहते हैं।। १७-२१।।

क्षतज विसर्प के लक्षण

बाह्यहेतोः क्षतात् क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन्।
विसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलत्थसदृशैश्चितम्।। २२।।
स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम्।। २३।।

बाहर के किसी कारण से क्षत हो जाने से वायु क्रुद्ध होकर, रक्त और पित्त को उभारकर विसर्प रोग को उत्पन्न करता है। उसके ऊपर कुलथी के तुल्य फुन्सियाँ होती हैं। उन फुन्सियों के कारण सूजन हो आती है और पीड़ा, ज्वर, दाह तथा रुधिर काला हो जाता है।। २२-२३।।

विसर्प के उपद्रव

ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः।
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः।। २४।।

ज्वर, दस्त आना, वमन होना, त्वचा और मांस का गलना, शिथिलता, अरुचि, अन्न का परिपाक न होना, ये सब विसर्पों के उपद्रव हैं।। २४।।

विसर्प के साध्यासाध्य लक्षण

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः
सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति।
पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः
कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव।। २५।।

इति विसर्परोगनिदानं षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।

वातज, पित्तज और कफज, ये विसर्प साध्य होते हैं। सन्निपातज और क्षतज विसर्प साध्य नहीं होते। जिस पित्तज विसर्प में देह अञ्जन के तुल्य काला हो जाता है, वह असाध्य होता है। हृदय आदि सुकुमार स्थानों में होने वाले सब विसर्प कष्टसाध्य होते हैं।। २५।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे विसर्परोगनिदानं षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५६।।

अथ विस्फोटकरोगनिदानम्

विस्फोटक की संप्राप्ति

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्ष-
क्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ।
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण
कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु।। १।।
त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च।
घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वाङ्ग्वरपुरस्सरान्।। २।।

दोहा— सत्तावनवीं अध्याय महँ, विस्फोटक को भेद।
कह्यो सुकवि जेहि जानिकै, वैद्य सकहि तेहि छेद।। १।।

कड़वा, खट्टा, तीखा, उष्ण, दाहक, रूखा, खारी, बिना अन्न पचे फिर खाना, बहुत धूप में घूमना, और उष्णकाल आदि ऋतु के दोष, इन कारणों से वातादिक दोष कोप कर त्वचा में स्थिर होकर वे रक्त, मांस और हाड़ों को दूषित करके घोर विस्फोटकों को उत्पन्न करते हैं। उन सब विस्फोटकों के निकलने के पहले ज्वर अवश्य आता है। इन फोड़ों को लोग 'शीतला' कहते हैं।। १-२।।

विस्फोटक के स्वरूप

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः।
क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः।। ३।।

रक्त-पित्त से उत्पन्न विस्फोटक ज्वरसहित होते हैं। ये अग्नि में जल जाने वाले फफोलों के आकार के होते हैं। देह में कहीं-कहीं होते हैं अथवा देह भर में निकल आते हैं। ये विस्फोटक कहलाते हैं।। ३।।

वातज विस्फोटक के लक्षण

शिरोरुक्शूलभूयिष्ठं ज्वरस्तृट्पर्वभेदनम्।
सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम्।। ४।।

वातज विस्फोटक के ये लक्षण हैं। शिर में पीड़ा होती है। शूल बहुत उठती है। ज्वर होता है। पिपासा बहुत लगती है। सब जोड़ों में पीड़ा होती है। कुछ कालापन लिए देह के रङ्ग के तुल्य फोड़े होते हैं।। ४।।

पित्तज विस्फोटक के लक्षण

ज्वरदाहरुजास्त्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ।
पीतलोहितवर्णञ्च पित्तविस्फोटलक्षणम्।। ५।।

पित्तज विस्फोटक के फोड़े, ज्वर, दाह, पीड़ा, बहना, पकना और तृष्णा युक्त होते हैं। और पीले-लाल मिले हुए रङ्ग के होते हैं।। ५।।

कफज विस्फोटक के लक्षण

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः।
अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः।। ६।।

कफज विस्फोटक में, वमन, अरुचि और अङ्गों में जड़ता आ जाती है, खुजली अधिक उठती है, फोड़ों में कड़ापन रहता है। वे पाण्डु रङ्ग के होते हैं, पीड़ा कुछ भी नहीं होती तथा बहुत दिनों में पकते हैं।। ६।।

कफ-पित्तज विस्फोटक के लक्षण

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः।

कफ-पित्तज में खुजली होती है, दाह, ज्वर और वमन होता है।

वात-पित्तज विस्फोटक के लक्षण

वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम्।। ७।।

जो वात-पित्तज होते हैं उनमें बड़ी भारी पीड़ा होती है।। ७।।

कफ-वातज विस्फोटक के लक्षण

कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातजम्।

कफ-वातज विस्फोटकों में खुजली, मन्दता और भारीपन होता है।

सन्निपातज विस्फोटक के लक्षण

मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान्।। ८।।
दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजाज्वराः ।
प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा स त्वसाध्यस्त्रिदोषजः।। ९।।

सन्निपातज विस्फोटक के फोड़ों के बीच में खाली हो जाता है और किनारे-किनारे ऊँचा होता है। कड़ापन रहता है। पकते कम हैं। दाह, ललाई,

पिपासा, मोह, वमन, मूर्च्छा, ज्वर, पीड़ा, अनर्थ बकना, काँपना, झपकी ये लक्षण होते हैं। वह असाध्य होता है क्योंकि तीनों दोषों से उत्पन्न होने से सान्निपातिक होता है।। ८-९।।

रक्तज विस्फोटक के लक्षण

रक्ता रक्तसमुत्थाना गुञ्जाफलनिभास्तथा।
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन तु हेतुना।
न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि।। १०।।

रक्तज विस्फोटक का रङ्ग लाल होता है, जैसे कि घुँघची का रङ्ग होता है। यह रक्त अथवा पित्त के दुष्ट होने से होता है। इसमें सैंकड़ों सिद्ध औषधियाँ करें पर यह रोग सिद्ध नहीं होता, असाध्य ही होता है।। १०।।

साध्यासाध्य के लक्षण

एकदोषोत्थितस्साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः।
सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः।। ११।।

इति विस्फोटकरोगनिदानं सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।

एक दोष से उत्पन्न विस्फोटक साध्य होते हैं। दो दोषों से उत्पन्न कष्टसाध्य होते हैं। सब दोषों से उत्पन्न बड़ा घोर होता है। इससे असाध्य होता है। इसमें बहुत उपद्रव होते हैं। हिचकी, श्वास, अरुचि, पिपासा, अङ्गों का टूटना, हृदय में पीड़ा, विसर्प, ज्वर और जी मचलाना, ये सब विस्फोटकों के उपद्रव हैं।। ११।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे विस्फोटकरोगनिदानं सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५७।।

अथ मसूरिकारोगनिदानम्

मसूरिका की संप्राप्ति

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः।
दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टैः पवनोदकैः।। १।।

क्रुद्धग्रहेक्षणाच्चापि देहे दोषाः समुद्धताः।
जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन सङ्गताः।। २।।
मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकास्स्युर्मसूरिकाः।। ३।।

दोहा— अट्ठावन अध्याय महँ, रोग मसुरिका जोय।
भेद शीतला को कह्यो, सुकवि राखिये गोय।। १।।

कड़वा, खट्टा, नोनछा, खारी आदि विरुद्ध पदार्थों के एक ही संग खाने से, दुष्ट मटर या पत्रशाकों के खाने से, दुष्ट वायु-जल के सेवन से, और क्रुद्ध ग्रहों की दृष्टि से भी देह में क्रुद्ध वात-पित्त-कफ दुष्टरक्त में मिलकर शरीर में मसुरी के तरह की फुन्सियों को उत्पन्न करते हैं। बस मसुरी के आकार की होने से इस रोग की फुन्सियों को मसुरिका कहते हैं। इन्हीं को लोग मसूरिका, देवी, छोटी शीतला तथा छोटी माता कहते हैं।। १-३।।

मसूरिका का पूर्वरूप

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरुचिर्भ्रमः।
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररागस्तथैव च।। ४।।

मसूरिका होने के प्रथम ज्वर आता है, खजुली होती है, अङ्ग टूटते हैं, अरुचि होती है, भ्रम होता है, खाल सूज आती है, देह का रङ्ग बदल जाता है और नेत्र लाल हो जाते हैं।। ५।।

वातज मसूरिका के लक्षण

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः।
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसम्भवाः।। ५।।
सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिः क्लमः।
शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता।। ६।।

वातज मसूरिका, काली अथवा लाल होती हैं। रूखी और तीव्र पीड़ा से युक्त होकर कड़ी होती है, इससे देर में पकती है। इस रोग वाले की सब सन्धियों में और सब ग्रन्थियों में हड़फूटन होती है, खाँसी आती है, कम्प होता है, सुस्ती रहती है, ग्लानि होती है, तालु, ओष्ठ और जीभ सूख जाती है, तृषा और अरुचि होती है।। ५-६।।

पित्तज मसूरिका के लक्षण

रक्ताः पीताः सिताः स्फोटास्तृष्णादाहरुजान्विताः।
मृदवोऽचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः।। ७।।
विड्भेदश्च विपाकश्च तृष्णादाहारुचिस्तथा।
मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः।। ८।।

पित्तज मसूरिका में लाल, पीले और उजले फोड़े होते हैं। तृष्णा, दाह और पीड़ा होती है। फोड़े कोमल होते हैं और शीघ्र ही पक जाते हैं। इस रोग में मल पतला उतरता है, अन्न नहीं पचता है, तृष्णा लगती है, दाह होता और अरुचि होती है, मुख और नेत्र पक जाते हैं। अतिदारुण तीव्र ज्वर होता है।। ७-८।।

रक्तज मसूरिका के लक्षण

रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः।

रक्तज मसूरिका में पित्तज मसूरिका वाले सब विकार होते हैं।।

कफज मसूरिका के लक्षण

कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम्।
हृल्लासः सारुचिर्निद्रा तन्द्रालस्यसमन्विताः।। ९।।
श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा मन्दवेदनाः।
मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः।। १०।।

कफज मसूरिका में, मुख से कफ अधिक गिरता है। देह में चटचटाहट, शिर में पीड़ा, अङ्ग भारी, जी मचलाना, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य होते हैं। मसूरिका उजली, चिकनी, बहुत भारी, खुजलाहट वाली और थोड़ी पीड़ा वाली होती है। ये बहुत दिनों में पकती है।। ९-१०।।

सन्निपातज मसूरिका के लक्षण

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः।
चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजः।। ११।।

सन्निपातज मसूरिका, नीली, चिपटी, बड़ी-बड़ी, बीच में खाली, किनारे-किनारे

ऊँची, बड़ी पीड़ा वाली, बहुत दिनों में पकने वाली, दुर्गन्धयुक्त पीब बहाने वाली और बहुत-सी होती है।। ११।।

चर्मपिडिकाओं के लक्षण

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्राप्रलापाऽरतिसंयुताः ।
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः।। १२।।

इनमें रोगी का गला रुँध जाता है, अरुचि होती है, अनर्थ बकता है, तन्द्रा होती है, और किसी चीज़ में मन नहीं लगता है। इन चर्मपिडिकाओं की औषध बड़े दुःख से हो सकती है।। १२।।

रोमान्तिका के लक्षण

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः।
कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः।। १३।।

कफ-पित्तज मसूरिका रोमों के छेद तुल्य बहुत छोटी लाल-लाल होती हैं। इनके होने पर खाँसी आती है, अरुचि हो जाती है, उनको रोमान्ति कहते हैं। इनके होने के पूर्व ज्वर होता है।। १३।।

रसगत मसूरिका के लक्षण

तोयबुद्बुदसङ्काशा रसगास्तु मसूरिकाः।
स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च।। १४।।

रस में प्राप्त मसूरिका पानी के बुल्ले के प्रमाण की होती है। उनके फूटने पर उनमें से जल बहता है। थोड़े दोष से उत्पन्न होने के कारण ये साध्य होती हैं।। १४।।

रक्तगत मसूरिका के लक्षण

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः।
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च।। १५।।

रक्त से उत्पन्न मसूरिका लाल होती हैं और शीघ्र पक जाती हैं। इनकी खाल बहुत पतली होती है। ये साध्य होती हैं। बहुत दुष्ट नहीं होतीं। फूटने पर इनमें से रुधिर बहता है।। १५।।

मांसगत मसूरिका के लक्षण

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः।
गात्रशूलोऽरतिकण्डूमूर्च्छादाहतृषान्विताः ।। १६।।

मांसगत मसूरिका बहुत कड़ी होती हैं और चिकनी होती हैं, परन्तु पकती बहुत दिनों में हैं। इनकी त्वचा बहुत सूक्ष्म होती है। इनके होने पर अङ्गों में पीड़ा होती है। चैन नहीं पड़ता है। खुजली उठती है। मूर्च्छा, दाह और तृषा होती है।। १६।।

मेदगत मसूरिका के लक्षण

मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः।
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः।। १७।।
सम्मोहारतिसन्तापाः कश्चित्ताभ्यो विनिस्तरेत्।। १८।।

मेदगत मसूरिका गोल, कोमल और कुछ ऊपर उठी हुई होती हैं। इनमें बड़ा घोर ज्वर होता है। ये चिकनी और मोटी-मोटी होती हैं। पीड़ा बहुत ही होती है। सम्मोह, अप्रीति और बहुत संताप होता है। इनसे कोई बचता है तो बचता है, नहीं तो मर ही जाता है।। १७-१८।।

मज्जागत मसूरिका के लक्षण

क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः।
मज्जोत्था भृशःसम्मोहवेदनारतिसंयुताः।। १९।।
छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च।
भ्रमरेणेव विद्धानि भवन्त्यस्थीनि सर्वतः।। २०।।

मज्जागत मसूरिका बहुत छोटी-छोटी होती हैं। इनका रङ्ग देह के रङ्ग के समान होता है। रूखी होती हैं। चिपटी रहती हैं। कहीं-कहीं ऊँची भी रहती हैं। इनमें सम्मोह, पीड़ा और अप्रीति होती है। ये सुकुमार स्थानों को काटती हैं तथा प्राणों को शीघ्र हरती हैं। इनके होने पर देह भर के हाड़ ऐसे पिराते हैं जैसे भँवरों के काटने के समान पीड़ा होती है।। १९-२०।।

शुक्रगत मसूरिका के लक्षण

पक्वाभाः पिडिकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः।
स्तैमित्यारतिसम्मोहदाहोन्मादसमन्विताः ।। २१।।
शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि।
निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न तु जीवितम्।। २२।।
दोषमिश्राश्च सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः।

शुक्रगत फुन्सियाँ पकी-सी चिकनी होती हैं। इनमें बहुत पीड़ा होती है। शरीर शिथिल हो जाता है। गीलापन और अस्वस्थता रहती है। मोह, दाह और उन्माद होते हैं। केवल लक्षण बता दिए हैं पर रोगी का जीना इस रोग में नहीं दिखाई देता है। दोषों के लक्षणों से इन सातों मसूरिकाओं को सब दोषों से मिश्रित जानना चाहिए।। २१-२२।।

साध्य मसूरिका

त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा।। २३।।
श्लेश्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः।
एता विनापि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम्।। २४।।

त्वचागत, रक्तज, पित्तज, कफज और कफ-पित्तज, ये मसूरिका सुखसाध य होती हैं। ये बिना औषधादि करने पर भी अपने आप शान्त हो जाती हैं।। १४।।

कृच्छ्रसाध्य मसूरिका

वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः।।
कृच्छ्रसाध्या मतास्तास्तु यत्नादेता उपाचरेत्।। २५।।

वातज, वात-पित्तज और वात-कफज, ये कष्टसाध्य होती हैं। इसलिए यत्न से इनकी औषध करनी चाहिए।। २५।।

असाध्य मसूरिका के लक्षण

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्।
प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः।। २६।।

लौहजालनिभाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः।
आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः।। २७।।
कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः।
प्रलापश्चारतिर्दाहस्तृष्णामूर्च्छातिघूर्णिता ।। २८।।
मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा।
कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम्।। २९।।
मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत्।
स भृशन्त्यजति प्राणांस्तृष्णार्तो वायुदूषितः।। ३०।।

सन्निपात से उत्पन्न मसूरिका असाध्य होती हैं। उनके लक्षण कहते हैं— कोई-काई मसूरिका मूँगा के तुल्य, कोई-कोई जामुन के फलों के तुल्य, कोई-कोई लौह के जाल के समान और कोई-कोई अलसी के फल के तुल्य होती हैं। दोषों के भेदों से नाना प्रकार के इनके रङ्ग होते हैं। खाँसी, हिचकी, प्रमेह, अतिदारुण तीव्रज्वर, अनर्थ बकना, अप्रीति, मूर्च्छा, तृषा, दाह, घुमनी, मुख से रक्त गिरना, नासिका और नेत्रों से भी रक्त का चूना, कण्ठ में घुरघुर शब्द करके बड़े कष्ट से श्वास लेना, ये उपद्रव होते हैं। जो मसूरिका से व्याकुल होता है, वह नासिका से ही श्वास ले सकता है, मुख से नहीं। तृष्णा बहुत लगती है। वायु से दूषित ऐसा रोगी प्राणों को त्याग ही देता है।। २६-३०।।

मसूरिका के उपद्रव

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके।
तथांऽसफलके चापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः।। ३१।।

इति मसूरिकारोगनिदानमष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।

मसूरिका के पीछे रोगी की जङ्घा, कलाई और कंधे पर सूजन होती है, वह अतिदारुण होती है। इससे बड़े दुःख से चिकित्सा करने के योग्य होती है।। ३१।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे मसूरिकारोगनिदानमष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।। ५८।।

अथ क्षुद्ररोगनिदानम्

अजगल्लिका के लक्षण

स्निग्धाः सवर्णा ग्रथिता नीरुजो मुद्गसन्निभाः।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिकाः।। १।।

दोहा— उनसठवीं अध्याय महँ, क्षुद्रकरोग निदान।
भाख्यो विविध प्रकार कवि, विविधनाम परमान।। १।।

बालकों को, कफ-वात से उत्पन्न, चिकनी, उन्हीं के रङ्ग की, गुथी हुई, पीड़ा रहित, मूँग भर-भर की फुन्सियां होती हैं। उन्हें अजगल्लिका कहते हैं।। १।।

यवप्रख्या से लक्षण

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता।
पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सा मता।। २।।

कफ और वात से उत्पन्न, यव के आकार की, बहुत कठिन, गाँठ सरीखी, मांस के आश्रित फुन्सियों को यवप्रख्या कहते हैं।। २।।

अन्धालजी के लक्षण

घनामवक्त्रां पिडिकामुन्नतां परिमण्डलाम्।
अन्धालजीमल्पपूयान्तां विद्यात्कफवातजाम्।। ३।।

घनी, बिना मुख की, ऊँची, और गोल-गोल फुटकियाँ कफ और वात से होती हैं। इनमें पीब बहुत ही कम निकलती है, उनको अन्धालज़ी कहते हैं।। ३।।

विवृता से लक्षण

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम्।
परिमण्डलाम्पित्तकृतां विवृतान्नामतो विदुः।। ४।।

मुँह खुली, बड़े दाह वाली, पके गूलर भर की, गोल-गोल जो फुड़ियाँ पित्त से होती हैं, उनको विवृता कहते हैं।। ४।।

कच्छपिका के लक्षण

ग्रथिताः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः।
कफानिलाभ्याम्पिडिका ज्ञेयाः कच्छपिका बुधैः।। ५।।

गुथी हुई पाँच-छः, दारुण, कछुए की पीठ के समान ऊँची, कफ और वात से जो फुड़ियाँ होती हैं, उनको पण्डित लोग कच्छपिका कहते हैं।। ५।।

वल्मीकपिडिका के लक्षण

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे
सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः।
ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां
जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम्।। ६।।
मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भि-
र्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः।
वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं
निष्प्रत्यनीकञ्चिरजं विशेषात्।। ७।।

गला, कंधा, काँख, हाथ, पाँव, जोड़ों पर, गले के जोड़ पर, तीनों दोषों से जो ग्रन्थि वामी के आकार की होती है, उसका उपाय न करने से क्रम से बढ़ जाती है। उसमें अनेक मुख हो जाते हैं, उनसे पीब या पानी बहता है, कोंचने की-सी पीड़ा होती है, वे आगे को ऊँची होकर विसर्प रोग की तरह फैलती जाती है। इस विकार को वैद्य लोग वल्मीक कहते हैं। औषध न करने से जब यह रोग प्राचीन हो जाता है तो फिर नहीं छूटता।। ६-७।।

इन्द्रविद्धा के लक्षण

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडिकाभिः समाचिताम्।
इन्द्रविद्धान्तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक्।। ८।।

वात और पित्त से उत्पन्न, कमल की कली की तरह, मध्य में और किनारे-किनारे अन्य फुन्सियों से घिरी हुई जो फुन्सी होती है, उसे इन्द्रविद्धा कहते हैं।। ८।।

गर्दभिका के लक्षण

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडिकाचितम्।
रुजाकरीङ्गर्दभिकान्तां विद्याद्वातपित्तजाम्।। ९।।

वात और पित्त से उत्पन्न, गोल, ऊँचा और लाल जो चकत्ता पड़ता है, (जिसके चारों ओर छोटी-छोटी पिरकियाँ होती हैं)ए जो पीड़ा करता है, उसको वैद्य लोग गर्दभिका कहते हैं।। ९।।

पाषाणगर्दभ के लक्षण

वातश्लेष्मसमुद्भूतश्श्वयथुर्हनुसन्धिजः।
स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः।। १०।।

वात और कफ से उत्पन्न, चौहड़ी की सन्धि पर जो स्थिर शोथ होता है पीड़ा उसमें थोड़ी होती है, और वह चिकना होता है, उसे पाषाणगर्दभ नामक रोग जाने।। १०।।

पनसिका के लक्षण

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडिकामुग्रवेदनाम्।
स्थिरां पनसिकान्तान्तु विद्याद्वातकफोत्थिताम्।। ११।।

वात और कफ से उत्पन्न उग्र पीड़ा वाली जो फुन्सी कान के भीतर होती है, उसको पनसिका कहते हैं।। ११।।

जालगर्दभ के लक्षण

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान्।
दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः।। १२।।

जो पित्त से उत्पन्न होकर विसर्परोग के तुल्य इधर-उधर फैलता रहता है, जिसमें शोथ थोड़ा ही होता है और पकता नहीं, दाह और ज्वर भी करता है, उसे जालगर्दभ रोग कहते हैं।। १२।।

इरविल्लिका के लक्षण

पिडिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्।
सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम्।। १३।।

वात, पित्त और कफ, तीनों से बड़ी पीड़ा करने वाली, गोल, सब दोषों के चिह्नों से युक्त, शिर में जो पिडिका होती है, जिसमें ज्वर भी होता है, उसे इरिवेल्लिका कहते हैं।। १३।।

कक्षा नाम पिडिका के लक्षण

बाहुपार्श्वांसकक्षेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम्।
पित्तकोपसमुद्भूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत्।। १४।।

बाहु, काँख, काँधे और पसलियों में बड़ी पीड़ा करने वाली, पित्त के कोप से उत्पन्न, जो काले रङ्ग की फुड़िया होती है, उसे कक्षा (कँखौरी) कहते हैं।। १४।।

गन्धनाम्नी पिडिका के लक्षण

एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिडिकां स्फोटसन्निभाम्।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते।। १५।।

जो कक्षा के तुल्य एक फुन्सी अन्य फोड़ों की-सी, त्वचा पर पित्त से उत्पन्न हुई हो, तो उसे गन्धनाम्नी (गँधौली) कहते हैं।। १५।।

अग्निरोहिणी के लक्षण

कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणाः।
अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः।। १६।।
सप्ताहाद् द्वादशाहाद्वा पक्षाद्वा हन्ति मानवम्।
तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम्।। १७।।

कँखौरी के आस-पास जो सन्निपात से फोड़े उत्पन्न होते हैं, वे मांस को गला देते हैं, भीतर दाह और ज्वर करते हैं, और प्रज्वलित अग्नि के तुल्य उष्ण होते हैं। वे सात दिन में या बारह दिन में, अथवा पन्द्रह दिन में मनुष्य को मार डालते हैं। उन फोड़ों को अग्निरोहिणी कहते हैं। यह सान्निपातिक स्फोटक समूह असाध्य होता है।। १६-१७।।

चिप्य और कुनख के लक्षण

नखमांसमधिष्ठाय पित्तं वायुश्च देहिनाम्।
कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत्।
तदेवाल्पतरैर्दोषैः कुनखम्परुषं वदेत्।। १८।।

वात और पित्त, प्राणियों के नखों और मांस में प्राप्त होकर दाह और पाक करते हैं। इस व्याधि को चिप्प कहते हैं, इसी में यदि कुछ थोड़े ही दोष हों तो इसी को कुनख कहते हैं।। १८।।

अनुशयी के लक्षण

गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम्।
पादस्यानुशयीन्तान्तु विद्यादन्तरूप्रपाकिनीम्।। १९।।

पैर के ऊपर पैर के चर्म के ही रङ्ग की छोटी-सी गहरी फुड़िया होती है। वह भीतर ही पक जाती है। उसे अनुशयी कहते हैं।। १९।।

विदारिका के लक्षण

विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षावङ्क्षणसन्धिषु।
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा।। २०।।

बिलारीकन्द के समान गोल, काँख में, अथवा जाँघों के पट्ठों में, अथवा किसी जोड़ पर, लाल रङ्ग की, वातादि तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त, जो फुड़िया होती है, उसे विदारिका कहते हैं।। २०।।

शर्करा के लक्षण

प्राप्य मांसं शिराः स्नायूः श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः।
ग्रन्थिङ्करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम्।। २१।।
स्त्रवत्यास्त्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः।
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः।। २२।।

कफ, मेद और वात, मांस और छोटी बड़ी नसों में पहुँचकर गाँठ को उत्पन्न करते हैं। वह जब फूटता है तो मधु, घृत और वसा के ऐसी पीब बहती है। इससे वायु अधिक बढ़ता है, और मांस को सुखाकर सूक्ष्म-सूक्ष्म रेतों को उत्पन्न करता है। उनको शर्करा कहते हैं।। २१-२२।।

शर्करार्बुद के लक्षण

दुर्गन्धि क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णन्ततः शिराः।
स्त्रवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्करार्बुदम्।। २३।।

शर्करा होने के पीछे शिरा, उसमें से दुर्गन्ध, पतला, नाना प्रकार के रङ्गों से युक्त रुधिर को चुआती है। इस रोग को शर्करार्बुद कहते हैं।। २३।।

दारी (व्यवाईं) के लक्षण

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः।
पादयोः कुरुते दारीं सरुजान्तलसंश्रिताम्।। २४।।

बहुत चलने वाले मनुष्य के पैरों को अत्यन्त रूखे करके वायु दोनों पैरों के अणुओं को विदीर्ण कर देता है। उसे दारी (व्यवाईं) कहते हैं। इसमें पीड़ा भी बड़ी होती है।। २४।।

कदर के लक्षण

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः।
ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरं हि तत्।। २५।।

सिटकी आदि की कचक लगने से, अथवा काँटे आदि से घाव हो जाने से, बेर की तरह गाँठ चमड़े पर पड़ जाती है। उसे कदर (गुखुरु) कहते हैं।। २५।।

अलस के लक्षण

क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ।
दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विनिर्दिशेत्।। २६।।

पैर की अँगुलियों के गाभों में, खराब सड़े कीचड़ के लगने से चमड़ा सड़ जाता है, और उसमें खजुली, दाह और पीड़ा होने लगती है। इस रोग को अलस कहते हैं।। २६।।

इन्द्रलुप्त के लक्षण

रोमकूपानुगम्पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम्।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः।। २७।।
रुणद्धि रोमकूपांश्च ततोऽन्येषामसम्भवः।
तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुह्येति च विभाष्यते।। २८।।

वायु के साथ पित्त कुपित हो रोमों के गढ़ों में बैठकर रोमों को गिरा देता है। फिर कफ और रुधिर, रोमों के गढ़ों को रूँध लेते हैं। इससे फिर और रोम नहीं जगते हैं। इस रोग को इन्द्रलुप्त, खालित्य (चांईचूंआं) और रुह्या कहते हैं।। २७-२८।।

दारुणक के लक्षण

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपच्यते।
कफवातप्रकोपेन विद्याद्दारुणकन्तु तत्।। २९।।
अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्ध्नि तु।
कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम्।। ३०।।

वायु और कफ के कोप से बालों के जमने की भूमि दारुण खुजलीयुक्त और रूखी होकर पक जाती है। इस रोग को दारुणक कहते हैं। कफ-रुधिर और कृमियों के कोप से मनुष्यों के शिर पर बहुत मुख की, बहुत कलकलाती हुई रूसी जम जाती है, उसे अरूंषिका (रूसी) कहते हैं।। २४-३०।।

पलित के लक्षण

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
पित्तञ्च केशान्पचति पलितन्तेन जायते।। ३१।।

क्रोध, शोक और श्रम करने से, पित्त और शरीर की उष्मा शिर पर चली जाती है। इसलिए बालों को पका देती है। इस रोग को पलित कहते हैं।। ३१।।

मुखदूषिका के लक्षण

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः।
जायन्ते पिडिका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः।। ३२।।

सेमर के काँटे के तुल्य, कफ और वायु के कोप से उत्पन्न, युवापुरुषों के मुख पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ होती हैं। उनको मुखदूषिका (मुँहासा) कहते हैं।। ३२।।

पद्मिनीकण्टक के लक्षण

कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलम्पाण्डुकण्डुरम्।
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम्।। ३३।।

कफ और वात से उत्पन्न, कमल के काँटों के तुल्य, किनारे-किनारे काँटों से युक्त गोल मण्डल होता है, इसका रङ्ग पीला होता है। कुछ खुजलाहट भी रहती है। इस रोग को पद्मिनीकण्टक कहते हैं।। ३३।।

जन्तुमणि के लक्षण

सममुत्सन्नमरुजं मण्डलङ्कफरक्तजम्।
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जन्तुमणिस्तु सः।। ३४।।

कफ और रक्त से उत्पन्न, सम, ऊपर को कुछ उठा हुआ, पीड़ारहित मण्डल, जन्म के साथ ही, मनुष्यमात्र के किसी न किसी अङ्ग पर होता है। उसे लक्ष्म, लक्षण, लक्ष्य और जन्तुमणि कहते हैं।। ३४।।

माषक के लक्षण

अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन्गात्रे प्रदृश्यते।
माषवत्कृष्णमुत्सन्नं वातान्माषकमादिशेत्।। ३५।।

पीड़ारहित, स्थिर, जहाँ होता है वहीं रहता है, जिस किसी अङ्ग पर माष (उड़द) के समान दिखाई देता है, बहुधा काला होता है और ऊपर को उठा हुआ होता है। यह वायु के दोष से होता है। इसको माष (मसा) कहते हैं।। ३५।।

तिलकालक के लक्षण

नीलानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च।
वातपित्तकफोत्सेकान्तान्विद्यात्तिलकालकान्।। ३६।।

वात-पित्त-कफों के कोप से काले-काले तिलों के समान, सम और पीड़ारहित जो दाने शरीर पर होते हैं उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं।। ३६।।

न्यच्छ के लक्षण

महद्वा यदि वा स्वल्पं श्यावं वा यदि वा सितम्।
नीरुजम्मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते।। ३७।।

बड़ा या अति छोटा, काला या उजला, पीड़ारहित जो मण्डल किसी अङ्ग में होता है, उसे न्यच्छ कहते हैं।। ३७।।

व्यङ्ग के लक्षण

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः।
मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजेत्ततः।
नीरुजं तनुकं श्यावम्मुखे व्यङ्गन्तमादिशेत्।। ३८।।

पित्तयुक्त वायु, क्रोध और श्रम से कुपित हो, मुख में आकर एकाएकी मुख के ऊपर श्यामता लिए पीड़ारहित मण्डल या चकत्ता कर देता है। वह बहुत पतला होता है, छूने से नहीं जान पड़ता। उसे व्यङ्ग (झाँई) कहते हैं।। ३८।।

नीलिका के लक्षण

कृष्णमेवङ्गुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः।। ३९।।

इसी प्रकार का मण्डल मुख में, या अन्य किसी अङ्ग में हो तो उसे नीलिका कहते हैं।। ३९।।

परिवर्तिका के लक्षण

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः।
मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन्।। ४०।।
तदा वातोपसृष्टत्वात्तच्चर्म परिवर्तते।
मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते।। ४१।।
सवेदनं सदाहञ्च पाकञ्च व्रजति क्वचित्।
परिवर्तिकान्तु तां विद्यात्सरुजां वातसम्भवाम्।। ४२।।
सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता।। ४३।।

मर्दन से, रगड़ने से, अथवा किसी प्रकार की चोट लग जाने से, सब कहीं घूमता हुआ पवन, लिङ्ग के चर्म में पहुँचता है। तब वायु के कुपित होने से लिङ्ग की खाल कुछ घूम जाती है। इससे लिङ्ग के अग्रभाग के नीचे की खाल में गाँठ लटकने लगती है। उसमें पीड़ा और दाह होता है। कभी-कभी पक भी जाती है। तब अधिक पीड़ा होती है। यह रोग वात से होता है। परिवर्तिका इसका नाम है। जिसमें पीड़ा नहीं होती, खुजली होती है और कड़ी होती है, वह कफ से होती है।। ४०-४३।।

अवपाटिका के लक्षण

अल्पीयःखां यदा हर्षाब्दलाद्गच्छेत् स्त्रियन्नरः।
हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते बलात्।। ४४।।
मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगविघाततः।
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम्।। ४५।।

जब कोई पुरुष नवीन स्त्री के संग बड़े हर्ष से, बल के साथ मैथुन करने लगता है, उस खींचाखाँची से, अथवा किसी कारण कड़े हाथ का धक्का लग जाने से, अथवा ज़ोर से उसके चमड़े को उघारने से, अथवा मर्दन करने से, अथवा रगड़ने से, अथवा शुक्र के वेग को रोकने से, लिङ्ग के ऊपर का चर्म फट जाता है। उस रोग को अवपाटिका कहते हैं।। ४४-४५।।

निरुद्धप्रकश के लक्षण

वातोपसृष्टे मेद्रे तु चर्म संश्रयते मणिम्।
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्त्रोतो रुणद्ध च।। ४६।।
निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम्।
मूत्रम्प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च।। ४७।।
निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसम्भवम्।

वायु के रोग से लिङ्ग का चर्म सूज जाता है और शिश्न के अग्रभाग पर बढ़ जाता है। इससे लिङ्ग का अग्रभाग (मणि) बन्द हो जाता है, और वह मूत्र के मार्ग को रोकता है। मूत्रमार्ग के रुक जाने से मूत्र की धार मन्द हो जाती है, पर पीड़ा नहीं होती। थोड़ा-थोड़ा मूत्र उतरता है और मणि का मुख खोलने से नहीं खुलता। खाल खींचकर मणि को खोलते समय पीड़ा होती है। यह रोग वात से उत्पन्न होता है। निरुद्धप्रकश इसका नाम है।। ४६-४७।।

सन्निरुद्धगुद के लक्षण

वेगसन्धारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः।
संरुणद्धि महत्स्त्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च।। ४८।।
मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति।
सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेतं विद्यात्सुदारुणम्।। ४९।।

गुदा में रहने वाला अपान वायु मल के रोकने पर कुपित होकर गुदा के छिद्र को रोक छोटा कर देता है। मार्ग छोटा हो जाने के कारण बड़े कष्ट से मल बाहर निकलता है। इस महादारुणरोग का नाम सन्निरुद्धगुद है।। ४८-४९।।

अहिपूतन के लक्षण

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्।
खिन्ने वा प्लाव्यमाने वा कण्डू रक्तकफोद्भवा।। ५०।।
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते।
एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम्।। ५१।।

जब बालक की गुदा मल-मूत्र करने पर धोई नहीं जाती अथवा लड़का धूप में अधिक फिरता है, अथवा बहुत शीत जल से नहाता है, तो रक्त और कफ के कोप से उसकी गुदा में खजुली उठती है। खुजलाने से शीघ्र फोड़ा होता है। वह फूटकर बहने लगता है। सब इकट्ठा होकर और घोर हो जाता है। उसका अहिपूतन नाम है।। ५०-५१।।

वृषणकच्छू के लक्षण

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः।
यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात्कण्डूं सञ्जनयेत्तदा।। ५२।।
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते।
प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम्।। ५३।।

जो मनुष्य स्नान के समय अच्छी प्रकार मैल मलकर नहीं धोते, उनके अण्डकोषों में मल जम जाता है। वह गरमी के कारण पसीना होने से खुजलाने लगता है। खुजलाने से शीघ्र ही वहाँ पर फोड़ा हो जाता है और फूटकर बहने लगता है। इस रोग को वृषणकच्छू करते हैं। यह कफ-रक्त के कोप से होता है।। ५२-५३।।

गुदभ्रन्श के लक्षण

प्रवाहिकातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः।
रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रन्शमादिशेत्।। ५४।।

रूखी और दुर्बल देह वाले पुरुष को जोर से काँखकर दिशा फिरने से अथवा अतीसार रोग होने से गुदा बाहर को निकल आती है। इस रोग को गुदभ्रन्श कहते हैं।। ५४।।

शूकरदंष्ट्र के लक्षण

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः।
कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः।। ५५।।

इति क्षुद्ररोगनिदानमेकोनषष्टितमोऽध्यायः।।

जो रोग दाहसहित हो तथा उसके किनारे लाल हों, त्वचा पक गई हो, पीड़ा बड़ी करता हो, खुजलाहट हो व ज्वर भी उसके कारण से आता हो, उसे शूकरदंष्ट्ररोग कहते हैं।। ५५।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे क्षुद्ररोगनिदानमेकोनषष्टितमोऽध्यायः।। ५९।।

अथ मुखरोगनिदानम्

मुखरोग की संख्या

दन्तेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दश पञ्च च।
कण्ठे त्रयस्सर्वसरा एकषष्टिचतुःपरे।। १।।

दोहा— सठवीं महँ मुख रोग को, भाष्यो सकल निदान।
सुकवि लखत अल्पज्ञजन, होते वैद्य महान।। १।।

दाँतों में आठ रोग, ओठों में आठ, दाँतों की जड़ों में पन्द्रह, तालू में नव, जीभ में पाँच, कण्ठरोधक सत्रह और सर्वसर तीन। गले से ऊपर के भाग में सब मिलकर पैंसठ रोग होते हैं।। १।।

मुखरोग की संप्राप्ति

आनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात्।
मुखमध्ये गदान् कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः।। २।।

जलचारी अथवा जल के किनारे रहने वाले जन्तुओं का मांस, दुग्ध, दधि और उड़द की वस्तु आदि एक ही सङ्ग खाने से, कफ की अधिकता से दोष क्रुद्ध होकर मुख के भीतर रोगों को उत्पन्न करते हैं।। २।।

मुखरोगान्तर्गतमोष्ठरोगनिदानम्

वातज ओष्ठरोग के लक्षण

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुजान्वितौ।
दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः।। ३।।

वायु के कोप से दोनों ओष्ठ कर्कश, कड़े, तने हुए, काले और तीव्र पीड़ा से युक्त हो जाते हैं। इससे उनमें पीड़ा होकर वे फट जाते हैं।। ३।।

पित्तज ओष्ठरोग के लक्षण

चीयेते पिडिकाभिश्च सरुजाभिः समन्ततः।
सदाहपाकपिडिकौ पीताभासौ च पित्ततः।। ४।।

पित्त के दोष से, ओठों पर चारों ओर पीड़ा सहित फुटके पड़ जाते हैं। उनमें दाह होता है और उनका रङ्ग पीला होता है।। ४।।

कफज ओष्ठरोग के लक्षण

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ।
भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू।। ५।।

कफ के दोष से, दोनों ओठों पर ओठ ही के रङ्ग के फुटके पड़ जाते हैं। उनमें कुछ पीड़ा नहीं होती। दोनों ओठ चिकने, शीत और गुरु हो जाते हैं।। ५।।

सन्निपातज ओष्ठरोग के लक्षण

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च।
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडिकान्वितौ।। ६।।

जब ओष्ठों में अनेक फुटके पड़ें, वे कभी काले हो जाएं, कभी पीले, और कभी उजले, तो उनको सन्निपात से उत्पन्न जाने।। ६।।

रक्तज ओष्ठरोग के लक्षण

खर्जूरीफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ।
रक्तौपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ।। ७।।

रुधिर की खराबी से ओष्ठ खजूरफलों के रङ्ग के फुटकों से युक्त हो पीड़ित होते हैं, रुधिर टपकने लगता है तथा रुधिर के रङ्ग के हो जाते हैं।। ७।।

दुष्टमांसज ओष्ठरोग के लक्षण

मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ।
जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात्।। ८।।

मांस दुष्ट हो जाने से दोनों ओष्ठ भारी, मोटे और मांसपिण्ड के समान ऊँचे हो जाते हैं। और दोनों ओठों के, अथवा एक ही मांसपिण्ड में कीड़े पड़ जाते हैं।। ८।।

मेदविकार से उत्पन्न ओष्ठरोग के लक्षण

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ गुरू।
अच्छं स्फटिकसङ्काशमास्रावं स्रवतो भृशम्।। ९।।
तयोर्व्रणो न संरोहेन्मृदुत्वं नैव गच्छति।

मेद में विकार होने के कारण दोनों ओठों पर घृत और माँड़ के तुल्य पपड़ी पड़ जाती है। इससे ओठ खुजलाते और भारी हो जाते हैं। उनसे फिटकरी के तुल्य उजला रस बहने लगता है। ओठों का घाव नहीं पूरता, न उसमें कोमलता आती है।। ९।।

अभिघातज ओष्ठरोग के लक्षण

ओष्ठौ पर्येवदीर्यते पीड्येते चाभिघाततः।
ग्रथितौ च तदा यातौ कण्डूक्लेदसमन्वितौ।। १०।।

ओष्ठों में किसी प्रकार की चोट लगने से वे फट जाते हैं, और पीड़ा होने लगती है। उनमें गाँठ पड़ जाती है, खजुली उत्पन्न होती है, और कुछ ललझर पानी बहने लगता है।। १०।।

मुखरोगान्तर्गतं दन्तवेष्ठ (मसूढ़ा) रोगनिदानम्

शीताद नामक रोग के लक्षण

शोणितन्दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च।। ११।।
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम्।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसम्भवः।। १२।।

जिसके मसूढ़ों से अकस्मात् रुधिर बहता है, उसके दाँतों के मांस, दुर्गन्धयुक्त, काले, कोमल, टीसते और फट जाते हैं। फिर परस्पर मिलकर पक उठते हैं। यह रोग कफ और रुधिर के कोप से होता है। इसका नाम शीताद है।। ११-१२।।

दन्तपुप्पुटरोग के लक्षण

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान्।
दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः।। १३।।

जिसके दो अथवा तीन दाँतों के मसूढ़ों में बड़ी सूजन हो आती है, उसको कफ और रक्त के कोप से दन्तपुप्पुट नामक रोग होता है।

दन्तवेष्टरोग के लक्षण

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः।। १४।।

दुष्ट रुधिर होने के कारण दाँतों की जड़ से पीब और रुधिर बहकर दाँत हिलने लगते हैं। इस रोग को दन्तवेष्ट कहते हैं।। १४।।

शौषिररोग के लक्षण

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफरक्तजः।
लालास्त्रावी स विज्ञेयः शौषिरो नाम नामतः।। १५।।

कफ और रक्त के विकार से दाँतों की जड़ों में पीड़ायुक्त सूजन होकर लार बहने लगती है। इस रोग को शौषिर कहते हैं।। १५।।

महाशौषिररोग के लक्षण

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते।
यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महाशौषिरसञ्ज्ञकः।। १६।।

जिसमें मसूढ़ों के सब दाँत हिलने लगते हैं और तालु भी फट जाता है, वह रोग वातादिक तीनों के कोप से होता है। महाशौषिर उसका नाम है।। १६।।

परिदर रोग के लक्षण

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन् ष्ठीवति चाप्यसृक्।
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः।। १७।।

जिस रोग में थूकने पर रुधिर बहता है, और दाँतों का मांस गलता है, उसे परिदर कहते हैं। यह रोग पित्त, रक्त और कफ से उत्पन्न होता है।। १७।।

उपकुशरोग के लक्षण

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यान्दन्ताश्चलन्ति च।
अवक्कृताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनाः।। १८।।
आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखे पूतिश्च जायते।
यस्मिन्नपकुशै नाम पित्तरक्तकृतो गदः।। १९।।

जिस रोग में मसूढ़ों में दाह हो, वे पक जाएं, इस कारण दाँत हिलने लगें, बोलने में कष्ट को, रुधिर सभी से बहता रहे, थोड़ी-थोड़ी पीड़ा होती रहे, रक्त बह जाने के पीछे फिर मसूढ़े सूज जाएं, और मुख में दुर्गन्ध आने लगे, उसे उपकुश कहते हैं। यह रोग पित्त और रक्त से उत्पन्न होता है।। १८-१९।।

वैदर्भरोग के लक्षण

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान्।
भवन्ति चञ्चला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः।। २०।।

जिसमें मसूढ़ों के परस्पर रगड़ जाने से सूजन हो आती है और दाँत हिलने लगते हैं, इसका वैदर्भ नाम है। यह रोग लाठी आदि की चोट लगने से होता है।। २०।।

खल्लीवर्धन रोग के लक्षण

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः।
खल्लीवर्धनसञ्ज्ञोऽसौ जाते रुक् च प्रशाम्यति।। २१।।

वायु के योग से दाँत पर दूसरा दाँत जम आता है। उसमें बड़ी पीड़ा होती है। जब जम आता है तो पीड़ा बन्द हो जाती है। इस रोग को खल्लीवर्धन कहते हैं।। २१।।

अधिमांसक रोग निदान

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाशोथो महारुजः।
लालास्त्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः।। २२।।
दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः।। २३।।

चौहड़ी के पीछे वाले दाँत के पीछे बहुत-सा मांस सूज आता है। उसमें बड़ी पीड़ा होती है और लार चूती रहती है। इस रोग को अधिमांसक कहते हैं। यह कफाधिक्य से होता है। नाड़ीव्रण के निदान में वात, पित्त, कफ, सन्निपात, आगन्तुक नाम से प्रसिद्ध पाँच नाड़ीव्रण के समान दाँतों की जड़ों में भी नाड़ीव्रण होते हैं।। २२-२३।।

मुखरोगान्तर्गतं दन्तरोगनिदानम्

करालरोग के लक्षण

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः।
करालान्विकटान्दन्तान्करालो न स सिध्यति।। २४।।

दाँतों की जड़ों में रहने वाला वायु धीरे-धीरे दाँतों को टेढ़े-मेढ़े कराल कर देता है। इसी से इस नाम से प्रसिद्ध रोग हो जाता है। यह कराल नामक रोग असाध्य होता है।। २४।।

दालनरोग के लक्षण

दीर्यमाणेष्विव रुजा भृशं दन्तेषु जायते।
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः।। २५।।

जिसमें दाँतों में फटे जाने की-सी पीड़ा होती है, उस रोग का दालन नाम है। यह वायु के निमित्त से होता है।। २५।।

कृमिदन्त रोग के लक्षण

कृष्णच्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः।
अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः।। २६।।

जिस रोग से दाँत में काला छेद हो जाता है, दाँत हिलने लगता है, उसमें से कुछ बहता भी रहता है, सूज आता है, और बिना कारण बड़ी पीड़ा होने लगती है, यह रोग वात से होता है। कृमिदन्त इसका नाम है।। २६।।

भञ्जनकरोग के लक्षण

वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते।
कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसञ्ज्ञितः।। २७।।

जिसमें मनुष्य का मुख टेढ़ा हो जाता है और दाँत टूट जाते हैं, कफ-वात से होने वाला यह रोग भञ्जनक कहलाता है।। २७।।

दन्तहर्ष रोग के लक्षण

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः।
पित्तमारुतदोषेण दन्तहर्षः स नामतः।। २८।।

जिस रोग में दाँत शीत, रूखे, खट्टे और वायु को नहीं सह सकते, उस रोग का दन्तहर्ष नाम है। पित्त-वात के कोप से वह होता है।। २८।।

दन्तशर्करा रोग के लक्षण

मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोषितः।
शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा।। २९।।

जिस रोग में दाँतों का मैल पित्त-वात से सूखकर बालू की तरह खिसखिसाने लगता है, उस रोग को दन्तशर्करा कहते हैं।। २९।।

कपालिकारोग के लक्षण

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तानां सैव शर्करा।
कपालिकेति विज्ञेया सदा दन्तविनाशिनी।। ३०।।

दाँत में ऐसा मैल जम जाए कि उसकी खिसखिसाहट से मानो सिर ही फटा जाता है, इस दन्तनाशक रोग को कपालिका रोग कहते हैं।। ३०।।

श्यावदन्तक रोग के लक्षण

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः।
श्यावतां नीलतां वाऽपि गतः स श्यावदन्तकः।। ३१।।

जिसमें दाँत रक्त मिले हुए पित्त से जलकर सबका सब काला अथवा नीला हो जाए, वह रोग श्यावदन्तक कहलाता है।। ३१।।

हनुमोक्ष के लक्षण

वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसन्धिविसंहतः।
हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः।। ३२।।

वात से अथवा अन्य-अन्य किसी कारण से जिसमें दाढ़ी का जोड़ अपने स्थान से उखड़ जाए, उस रोग को हनुमोक्ष कहते हैं। उसके अर्दित रोग के-से लक्षण होते हैं।। ३२।।

वातज जिह्वारोग के लक्षण

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता
भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा।

इसमें वात से जीभ फट जाती है, उसको किसी वस्तु का स्वाद नहीं जान पड़ता, वह शाक के पत्ते के तुल्य खरखरी हो जाती है, यह जिह्वा का एक रोग है।

पित्तज जिह्वारोग के लक्षण

पित्तेन पीता परिदह्यते च
दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च।

इस रोग में पित्त के योग से जीभ पीली हो जाती है, वह जलने लगती है, और लम्बे तथा लाल काँटे भी जीभ के ऊपर हो जाते हैं।

कफज जिह्वारोग के लक्षण

कफेन गुर्वी बहुलाचिता च
मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः।। ३३।।

इस रोग में कफ से जिह्वा युक्त होकर गुरु और बड़ी हो जाती है, नीरस हो जाती है, और सेमर के काँटों के तुल्य उस पर ऊँचे-ऊँचे मांस के काँटे हो जाते हैं।। ३३।।

अलासनामक जिह्वारोग के लक्षण

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः
सोऽलाससञ्ज्ञः कफरक्तमूर्तिः।
जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो
मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम्।। ३४।।

जीभ के नीचे जो बहुत शोथ हो जाता है और जो कफ-रक्त की मूर्ति ही होता है, उसे अलास कहते हैं। यह रोग बढ़ जाने पर जीभ को जकड़ देता है। इसमें जीभ की जड़ विशेष करके पक जाती है।। ३४।।

उपजिह्वानामक जिह्वारोग के लक्षण

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः स जिह्वा-
मुन्नम्य जातः कफरक्तमूर्तिः।
लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः
सा तूपजिह्वा पठिता भिषग्भिः।। ३५।।

जीभ के अग्रभाग में जो सूजन हो आती है, वह जीभ को उठाकर किनारे ऊँचे और बीच में खाली कर देती है। यह रोग कफ और रक्त से उत्पन्न होता है, इसमें लार बहुत बहती है, खुजली उठती रहती है, शोथ होता है। वैद्य लोग इस रोग को उपजिह्वा कहते हैं।। ३५।।

मुखरोगान्तर्गतं तालुरोगनिदानम्

कण्ठशुण्ठी रोग के लक्षण

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलो प्रवृद्धो
दीर्घः शोथो ध्मातबस्तिप्रकाशः।
तृष्णाकासश्वासकृत्संवदन्ति
व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्ठीति नाम्ना।। ३६।।

कफ और रक्त से तालु की जड़ से उत्पन्न बड़ा लम्बा-चौड़ा शोथ फूलकर पेड़ के तुल्य ऊँचा हो जाता है। उसके होने से पिपासा, श्वास, और खाँसी, ये उत्पन्न होती हैं। इस रोग को वैद्य कण्ठशुण्ठी कहते हैं।। ३६।।

तुण्डिकेरीरोग के लक्षण

शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी
प्रागुक्ताभ्यान्तुण्डिकेरी मता तु।

कफ-रक्त से तालु की जड़ में जो शोथ हो और उसमें शूल-दाह हो और वह पक उठे, तो उसे तुण्डिकेरी रोग कहते हैं।

अध्रुवरोग के लक्षण

शोथः स्तब्धो लोहितस्तालुदेशे
रक्ताङ्गे यस्सोऽध्रुवो रुग्ज्वरश्च।। ३७।।

जो शोथ तालुस्थान में लाल और ऊपर को तना हुआ होता है, वह कोंचता रहता है, और उसमें पीड़ा तथा ज्वर भी होते हैं। इस रोग को अध्रुव कहते हैं।। ३७।।

कच्छपरोग के लक्षण

कूर्मोन्नतोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा
रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा वा।

कफ से उत्पन्न कछुए की पीठ के समान जो रोग ऊपर को उठा हुआ झटपट तालु में हो आता है, वह कच्छपरोग कहलाता है।

अर्बुदरोग के लक्षण

पद्माकारन्तालुमध्ये तु शोथं
विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम्।। ३८।।

रक्त से उत्पन्न कमल के आकार का जो तालु के मध्य में शोथ होता है, उसे अर्बुद कहते हैं। जैसे रक्तार्बुद के निदान में कह आए हैं, वैसे ही इसके लक्षण जाने।। ३८।।

मांससंघातरोग के लक्षण

दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजञ्च
ताल्वन्तस्थं मांससङ्घातमाहुः।

कफ से दुष्ट होकर मांस पीड़ारहित तालु के मध्य में अङ्कुर-सा उठ आता है, उसे मांससंघात वात कहते हैं।

पुप्पुटरोग के लक्षण

नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्स्या-
न्मेदोयुक्तः पुप्पुटस्तालुदेशे।। ३९।।

तालुदेश में कफ और मेद से जो मांस का अङ्कुर बेर भर का अचल हो और उसमें पीड़ा न होती हो, तो उसे पुप्पुट रोग कहते हैं।। ३९।।

तालुशोष के लक्षण

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालुः
श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलोत्थः।

वायु से तालु अत्यन्त सूजकर उग्र श्वास उत्पन्न करता है और सूख जाता है, उसे तालुशोष रोग कहते हैं।

तालुपाक के लक्षण

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोर-
न्तालुन्येवन्तालुपाकं वदन्ति।। ४०।।

इसी प्रकार यदि पित्त तालु में अत्यन्त शोष करे और वह पक उठे तो उस रोग को तालुपाक कहते हैं।। ४०।।

मुखरोगान्तर्गतं गलरोगनिदानम्

रोहिणीरोग की सामान्य संप्राप्ति

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ
प्रदूष्य मांसञ्च तथैव शोणितम्।

गलोपसंरोधकरैस्तथाऽङ्कुरैः
निहन्त्यसून् व्याधिरयन्तु रोहिणी।। ४१।।

कण्ठ में वायु, पित्त और कफ प्राप्त होकर मांस और रुधिर को दूषित कर गला रोकने वाले अङ्कुरों को उत्पन्न करते हैं, इसे रोहिणी कहते हैं। प्राणी को यह रोहिणी नामक रोग मार डालता है।। ४२।।

वातज रोहिणीरोग के लक्षण

जिह्वासमन्ताद् भृशवेदनास्तु
मांसाङ्कुराः कण्ठनिबन्धनाः स्युः।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा
वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ।। ४२।।

रोहिणीरोग जब केवल वात से उत्पन्न हो और जीभ की सब ओर अत्यन्त पीड़ा करने वाले और कण्ठ को रोकने वाले मांस के अङ्कुरों को उत्पन्न करे, तो वातात्मक उपद्रवों से युक्त, यह वातकृता रोहिणी कहलाती है।। ४२।।

पित्तज रोहिणीरोग के लक्षण

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका
तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजा स्यात्।

जो रोहिणी झट हो आती है, झट दाह करने लगती है, पक भी झटपट जाती है, और तीव्रज्वर उत्पन्न करती है, उसे पित्तजा रोहिणी कहते हैं।

कफज रोहिणीरोग के लक्षण

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका
स्थिराङ्कुरा या कफसम्भवा सा।। ४३।।

कफजा रोहिणी छिद्रों को रोक लेती है, और पकती कम है। अङ्कुर इसके स्थिर होते हैं।। ४३।।

सन्निपातज रोहिणीरोग के लक्षण

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या
त्रिदोषलिङ्गात्रितयोत्थिता सा।

सन्निपातजा रोहिणी में बहुत गुरु पाक होता है। कोई इसके वीर्य को निवारण नहीं कर सकता। वात-पित्त-कफ तीनों से उत्पन्न होने से, तीनों के चिह्न इसमें होते हैं। यह प्राणनाशक होती है।

रक्तज रोहिणीरोग के लक्षण

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा
साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु।। ४४।।

रोहिणीरोग जब रुधिर से उत्पन्न होता है, उसमें बहुत फोड़े होते हैं और अन्य सब लक्षण पित्त के होते हैं, तब यह रोग साध्य कहा जाता है।। ४४।।

कण्ठशालूकरोग के लक्षण

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो
ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्य-
स्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति।। ४५।।

जो रोग कफ से उत्पन्न हो, जिसमें बेर की गुठली भर की गाँठ गले में हो, काँटे की नोक के समान नुकीले अङ्कुर उसके ऊपर हों और गाँठ स्थिर तथा खरखरी हो, तो यह रोग तीक्ष्ण शस्त्र से चीरने के योग्य होता है। इसको वैद्य लोग कण्ठशालूक कहते हैं।। ४५।।

अधिजिह्वरोग के लक्षण

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु
जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात्।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष
विवर्जयेच्चागतपाकमेनम् ।। ४६।।

जीभ के ऊपर जीभ की फुनगी की तरह का शोथ कफ से और रक्त से होता है। इस रोग का नाम अधिजिह्व है। जब यह पक जाए तो इसे छोड़ देना चाहिए।। ४६।।

वलयरोग के लक्षण

बलास एवायतमुन्नतं च
ग्रन्थिं करोत्यन्नगतिं निवार्य।
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं
विवर्जनीयं वलयं वदन्ति।। ४७।।

अन्न की गति को रोककर-कफ ही लम्बी, चौड़ी, ऊँची गाँठ को उत्पन्न करता है। यह सर्वथा किसी के रोकने से रुकता नहीं। इससे इसे त्याग देना चाहिए। इस रोग को वलय कहते हैं।। ४७।।

बलासरोग के लक्षण

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ
श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम्।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहु-
र्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम्।। ४८।।

कफ और वात दोनों जब बढ़ जाते हैं, तो गले में शोथ उत्पन्न करते हैं। उस शोथ में पीड़ा और श्वास होता है। सुकुमार स्थान को यह काटता है, इस से बड़ा दुस्तररोग होता है। निपुण लोग इसे बलासरोग कहते हैं।। ४८।।

एकवृन्दरोग के लक्षण

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः
कण्ड्वान्वितोऽपाकमृदुर्गुरुश्च।
नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ
व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ।। ४९।।

कफ और रक्त से उत्पन्न गोल, ऊँचा, मुख के भीतर शोथ, दाह तथा खुजली युक्त कोमल और गुरु होता है, पकता नहीं है। इसका नाम एकवृन्दरोग है।। ४९।।

वृन्दरोग के लक्षण

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं
तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति।

तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपा-

द्विद्यात्सतोदम्पवनात्मकञ्च।। ५०।।

गले में ऊँचा, गोल, अतिदाहयुक्त और तीव्र ज्वरकारी जो रोग होता है, उसे वृन्द कहते हैं। यह पित्त और रक्त के कोप से होता है। वात के दोष से होने वाले में सूई से कोंचने की-सी पीड़ा होती है।। ५०।।

शतघ्नीरोग के लक्षण

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या

चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः।

अनेकरुक्प्राणहरी त्रिदोषा-

ज्ज्ञेया शतघ्नी तु शतघ्निरूपा।। ५१।।

सन्निपात से उत्पन्न, कण्ठ में कुछ लम्बी और कड़ी सूजन होती है। वह गले को रोक लेती है। इसके ऊपर चारों ओर मांस के अङ्कुर होते हैं। यह अनेक प्रकार की पीड़ाओं को करती है। यहाँ तक कि प्राण को हर लेती है। इसका शतघ्नी नाम है। जैसे शतघ्नी (तोप) सैकड़ों को मार डालती है, ऐसे ही यह भी सैकड़ों प्राणियों के प्राण लेती है।। ५१।।

गिलायुरोग के लक्षण

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः

स्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः।

संलक्ष्यते सक्तमिवाशनञ्च

स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः।। ५२।।

गले में एक गाँठ आमले की गुठली के तुल्य, स्थिर और थोड़ी पीड़ा वाली कफ-रक्त से उत्पन्न होती है। इससे भोजन करने में कष्ट होता है। यह अच्छे तीक्ष्ण शस्त्र से चीरने के योग्य होती है। इसका गिलायु (गिल्टी) नाम है।। ५२।।

गलविद्रधिरोग के लक्षण

सर्वङ्गलं व्याप्य समुत्थितो यः

शोथो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः।

स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु
तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य।। ५३।।

जो शोथ सब गले भर में व्याप्त होकर उठता है, जिसमें वात-पित्त-कफ तीनों के लक्षणों की पीड़ा नाना प्रकार की होती है, यह तीनों दोषों के योग से होता भी है। इसका नाम गलविद्रधि है। जैसे सब दोषों से उत्पन्न विद्रधिरोग का निदान कह आए हैं, वैसे ही सब लक्षण गलविद्रधि में भी होते हैं।। ५३।।

गलौघरोग के लक्षण

शोथो महानन्नजलावरोधी
तीव्रज्वरो . वायुगतेर्निहन्ता।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन
गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ।। ५४।।

रुधिरयुक्त कफ से उत्पन्न, जो बड़ा भारी शोथ गले में होता है, अन्न और जल को भीतर नहीं जाने देता, तीव्र ज्वर करता है, और वायु की गति को भी रोककर भीतर से न बाहर आने देता है, और न बाहर से भीतर जाने देता है। इस रोग को गलौघ कहते हैं।। ५४।।

स्वरघ्नरोग के लक्षण

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्त-
म्भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु
ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः।। ५५।।

वायु के द्वारों (भीतर शब्द आने-जाने के मार्गों) में जब कफ लपट जाता है, तब यह रोग वायु के फिर भीतर न जाने-आने से स्वर को भङ्ग कर देता है। उस कफ के खींचने के लिए जब मनुष्य जोर से खाँसता-खखारता है, तो नेत्रों के आगे अँधेरा-सा हो जाता है। उस श्वास का धक्का लगने से कफ सूख जाता है। कफ की गाँठें जो गले में लपटी होती हैं, वे गिरती नहीं। वात से उत्पन्न इस रोग को स्वरघ्न कहते हैं।। ५५।।

मांसतानरोग के लक्षण

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो
गलोपरोधं कुरुते क्रमेण।
स मांसतानः कथितोऽवलम्बी
प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः।। ५६।।

गले में जो शोथ कहीं होकर धीरे-धीरे सर्वत्र गले में फैल जाता है, वह बड़े कष्ट से युक्त होता है, गले भर को रोक लेता है, उसका मांसतान नाम है। वह प्राणों का नाशक होता है। यह सन्निपात से होता है।। ५६।।

विदारीरोग के लक्षण

सदाहतोदं श्वयथुं सुतीव्र-
मन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम्।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारी-
म्पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते।। ५७।।

गले के भीतर दाह तथा कोंचसहित अतितीव्र शोथ होता है। फूटने पर उसके मांस में दुर्गन्ध आती है। यह पित्त से होता है। मुख में बहुधा उसी ओर होता है जिस करवट से प्राणी सोता है। इस रोग का विदारी नाम है।। ५७।।

वातिक सर्वसररोग के लक्षण

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ता-
द्यस्याचितं सर्वसरः स वातात्।

वात से उत्पन्न, चुनचुनी सहित फुन्सियों से युक्त, मुख के ऊपर जो सर्वसर नामक रोग होता है, उसमें मुख भर पर छोटे-छोटे फुटके होते हैं।

पैत्तिक सर्वसररोग के लक्षण

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतै-
र्यस्याचितश्चापि स पित्तकोपात्।। ५८।।

जिसमें मुख पर दाहसहित छोटे-छोटे, लाल-लाल और पीले-पीले फुटके होते हैं, वह पित्त के कोप का सर्वसर रोग है।। ५८।।

कफात्मक सर्वसररोग के लक्षण

अवेदनैः कण्डुयुतैस्सवर्णै-
र्यस्याचितश्चापि स वै कफेन।। ५९।।

जिसमें पीड़ारहित और खजुलीयुक्त, शरीर के चमड़े के रङ्ग के फुटके मुख भर पर होते हैं, वह कफज सर्वसररोग होता है।। ५९।।

मुखरोगों में असाध्य

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्यास्स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः।
दन्तमूलेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिङ्गगतिशौषिरौ।। ६०।।
दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः।
जिह्वातले बलासस्तु तालव्येष्वर्बुदन्तथा।। ६१।।
स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासश्च विदारिका।
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले।। ६२।।
असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु।
तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत्।। ६३।।

इति मुखरोगनिदानं षष्टितमोऽध्यायः।। ६०।।

ओष्ठज रोगों में, मांसज, रक्तज और त्रिदोषज रोग वर्ज्य कहे हैं। दन्तमूल के रोगों में, सन्निपात नाड़ी और शौषिर वर्ज्य हैं। दन्तरोगों में, श्याव, दालन और भञ्जन असाध्य होते हैं। जिह्वा के नीचे के रोगों में, अलास असाध्य होता है। तालुरोगों में अर्बुद असाध्य है। गलरोगों में, स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारिका, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी, ये असाध्य हैं। ये उन्नीस रोग असाध्य हैं। वैद्य को चाहिए रोगी को जवाब देकर इनकी औषध करे।। ६०-६३।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे मुखरोगनिदानं षष्टितमोऽध्यायः।। ६०।।

अथ कर्णरोगनिदानम्

कर्णशूल की संप्राप्ति व लक्षण

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथाचरन्
समन्ततश्शूलमतीव कर्णयोः।
करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः
स कर्णशूलः कथितो दुराचरः।। १।।

दोहा—इकसठवीं अध्याय महँ, कर्णरोग को भेद।
देखहिं सज्जन लाय चित, लहहिं न श्रम अरु खेद।।

वायु दोनों कानों के भीतर प्रवेश कर कफ, पित्त और रक्त में मिलकर इधर-उधर घूमता है और कानों में अत्यन्त शूल करता है। इस दुराचर (दुःसाध्य) रोग को कर्णशूल कहते हैं। यह दोषानुसार उत्पन्न होता है।। १।।

कर्णनाद के लक्षण

कर्णस्रोतःस्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान्।
भेरीशङ्खमृदङ्गानां कर्णनादः स उच्यते।। २।।

जब वात कानों के छेदों में भर जाता है, तो नगाड़ा, मृदङ्ग, शङ्ख के-से विविध प्रकार के शब्द सुनाई देते हैं। इस रोग को कर्णनाद कहते हैं।। २।।

बाधिर्य के लक्षण

यदा शब्दवहं स्रोतो वायुरावृत्य तिष्ठति।
शुद्धःश्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यन्तेन जायते।। ३।।

जब वायु शब्द पहुँचाने वाली नस में प्रवेश करके उसे आच्छादित करके ठहर जाता है, वह चाहे अकेला वायु हो चाहे कफसहित वायु हो, तो उससे बाधिर्यरोग (बहिरापन) होता है।। ३।।

कर्णक्ष्वेड के लक्षण

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम्।
करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते।। ४।।

जब वायु पित्तादिकों से युक्त होकर कानों में बाँसुरी के शब्द के तुल्य शब्द करता है, तब इससे अनेक प्रकार के और भी वर्णात्मक शब्द सुनाई देते हैं। उस रोग को कर्णक्ष्वेड कहते हैं।। ४।।

कर्णसंस्राव के लक्षण

शिरोभिघातादथवा निमज्जतो
जले प्रपाकादऽथवाऽपि विद्रधेः।
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः
स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः।। ५।।

शिर में चोट लग जाने से अथवा जल में डुबकी मारकर स्नान करने से अथवा अन्य किसी कारण कान पक जाने से, अथवा कान में फोड़ा होने से, वात पीड़ित कान से पीब बहने लगती है। इस रोग को कर्णसंस्राव कहते हैं।। ५।।

कर्णकण्डू और कर्णगूथ के लक्षण

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकण्डूङ्करोति च।
पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा जायते कर्णगूथकः।। ६।।

कफयुक्त वात कान में खजुली उत्पन्न करता है। इस रोग को कर्णकण्डू कहते हैं। पित्त की उष्णता से जब कफ सूख जाता है, तब उससे कान के अन्त में मैल लपट जाता है। इस रोग को कर्णगूथ (खूँट) कहते हैं।। ६।।

कर्णप्रतिनाह के लक्षण

स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो
विलायितो घ्राणमुखम्प्रपद्यते।
तदा स कर्णप्रतिनाहसञ्ज्ञितो
भवेद्विकारश्शिरसोऽर्धभेदकृत्।। ७।।

जब कर्णगूथ (खूँट) पतला और गीला हो जाता है, तब नाक में अथवा मुख में आ जाता है। इस विकार को कर्णप्रतिनाह कहते हैं। यह आधे शिर में पीड़ा उत्पन्न करता है, इससे आधाशीशी हो जाती है।। ७।।

कृमिकर्ण के लक्षण

यदा हि मूर्च्छन्त्यथवात्र जन्तवः
सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मक्षिकाः।
तद्व्यञ्जनत्वाच्छ्रवणे निरुच्यते
भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः।। ८।।

जब कान के भीतर कीड़े पड़ जाते हैं अथवा मक्खी जाकर अपने बच्चे वहाँ उत्पन्न करती हैं। उसी से कीड़े उत्पन्न होकर कृमियों का-सा लक्षण करते हैं। प्राचीन वैद्यों ने इसे कृमिकर्ण नामक रोग कहा है।। ८।।

कान में पतङ्गादि प्रवेश के लक्षण

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्त्रोतः प्रविश्य हि।
अरतिं व्याकुलत्वञ्च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम्।। ९।।
कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फुरफुरायते।
कीटे चरति रुक्तीव्रा निष्पन्दे मन्दवेदना।। १०।।

छोटे पतङ्गे अथवा कनखजूर जब कहीं कान के भीतर पैठकर पीड़ा, व्याकुलता और अत्यन्त वेदना करते हैं, तो कान में सुई आदि से कोंचने की-सी पीड़ा होने लगती है। कान फुरफुराने लगता है। जब कीड़ा उसके भीतर चलने लगता है अथवा काटने लगता है, तो तीव्र पीड़ा होती है। जब नहीं चलता और न काटता है, तब पीड़ा थोड़ी हो जाती है।। ९-१०।।

कर्णविद्रधि के लक्षण

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधि-
र्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः।
सरक्तपीतारुणमस्त्रमास्त्रवे-
त्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान्।। ११।।

ज़ोर से खुजलाने से, अथवा कुछ चोट लग जाने से, कान में फोड़ा हो जाता है। अथवा उसमें वातादिकों के दोष से दूसरी बार पक जाता है, तब उसमें से काला, पीला और लाल रुधिर बहने लगता है। कोंचने की-सी पीड़ा होती है,

धुआँ निकलने लगता है, दाह और उष्णता होती है। इस रोग को कर्णविद्रधि कहते हैं।। ११।।

कर्णपाक के लक्षण

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत्।
कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात्।। १२।।

पित्त से, अथवा कर्णविद्रधि के फोड़े से, अथवा कान में पानी भर जाने से, कान सड़कर चिलकने लगता है। इस रोग को कर्णपाक कहते हैं।। १२।।

पूतिकर्ण के लक्षण

पूयं स्त्रवति वा पूतिं स ज्ञेयः पूतिकर्णकः।

जब कान से दुर्गन्धयुक्त पीब बहती है, तब उसे पूतिकर्णरोग कहते हैं।

कर्णशोथ अर्बुद और अर्श

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः।। १३।।

कर्णशोथ, कर्णार्बुद, कर्णार्श-कान सूजना, कान में गुल्थी और कान में से बवासीर के समान रुधिर बहना। इन तीनों रोगों के लक्षण जैसे पहले कह आए हैं वैसे जाने।। १३।।

वातज कर्णरोग

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः
स्त्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात्।

वातज कर्णरोग में कुछ संसनाहट और शब्द विदित होता है। पीड़ा बहुत होती है। कान का मल सूख जाता है। पतला-पतला थोड़ा-सा बहता है। सुनाई नहीं पड़ता।

पित्तज कर्णरोग

शोथस्सरागो दरणं विदाहः
सपूतिपीतश्रवणं च पित्तात्।। १४।।

पित्तज कर्णरोग में कान में सूजन, ललाई, चीरने की-सी पीड़ा और दाह उठता है तथा पीली-पीली दुर्गन्ध सहित पीब बहती है।। १४।।

कफज कर्णरोग

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोधशुक्ल-
स्निग्धास्त्रुतिः श्लेष्मभवेऽतिरुक्च।

कफज कर्णरोग में कुछ का कुछ सुनाई देता है। खजुली, कड़ा शोथ, उजली चिकनी पीब बहना और बड़ी पीड़ा होती है।

सन्निपातज कर्णरोग

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपाता-
त्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः।। १५।।

सन्निपातज कर्णरोग में वातज, पित्तज, कफज आदि सब दोषों के लक्षण होते हैं। परन्तु जिस दोष की अधिकता होती है, उसी के लक्षण के अनुसार बहते हैं।। १५।।

परिपोटक के लक्षण

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसा वा विवर्धते।
कर्णशोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान्।। १६।।
कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः।

सुकुमारता से कान का छेद जब छोड़ दिया जाता है, उसमें सींक आदि नहीं डाली जाती, फिर जब एकाएकी बढ़ाना चाहते हैं तो कान में सूजन हो आती है, और कान के ऊपरी भाग में काली-काली और लाल-लाल फुन्सियाँ निकल आती हैं। वात से निकली उनको परिपोटक कहते हैं।। १६।।

उत्पात के लक्षण

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्घर्षणादपि ।। १७।।
शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः।
रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः।। १८।।

भारी आभूषण धारण करने से, पीटने से, अथवा घिसने-रगड़ने से कान की कोंचियाँ सूज आती हैं। वह सूजन ताम्र रङ्ग की होती है। उसमें दाह, पकना और पीड़ा होती है। रक्तपित्त के योग से जो सूजन होती है, वह लाल होती है। इस रोग को उत्पात रोग कहते हैं।। १७-१८।।

उन्मन्थ के लक्षण

कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति।
कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम्।। १९।।
उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः।

जबरदस्ती कान के छेद को बढ़ाने से कान की कोंचियों का कुपित वायु कफ से युक्त होकर शोथ कर देता है। वह शोथ कड़ा होता है पर पीड़ा नहीं करता। खजुली होती रहती है। इस कफ वातज रोग को उन्मन्थ कहते हैं।। १९।।

दुःखवर्धन के लक्षण

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः।
शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्धनः।। २०।।

नस पर जब टेढ़ा-मेढ़ा कान छेद दिया जाता है तो उसमें खजुली, दाह, पीड़ा और सूजन होती है। वह पक भी उठता है। यह रोग सन्निपात से होता है। दुःखवर्धन इसका नाम है।। २०।।

परिलेही के लक्षण

कफासृक्कृमिसम्भूतस्स विसर्पन्नितस्ततः।
लिहेत्सशष्कुलीं पालीं परिलेहीति स स्मृतः।। २१।।

इति कर्णरोगनिदानमेकषष्टितमोऽध्यायः।। ६१।।

कफ और रक्त के योग से टेढ़े-मेढ़े छिदे हुए कान की कोचियों में छोटा-सा कीड़ा उत्पन्न हो जाता है। वह इधर-उधर चलता-फिरता रहता है। उसके चलने से सूजन पक जाती है। फिर वह कीड़ा कान भर चाट डालता है। इस रोग को परिलेही कहते हैं।। २१।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे कर्णरोगनिदानमेकषष्टितमोऽध्यायः।। ६१।।

अथ नासारोगनिदानम्

पीनस के लक्षण

आनह्यते यस्य विशुष्यते च
प्रक्लिद्यते धूप्यति चैव नासा।
नो वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तु-
र्जुष्टं व्यवस्येत्तम पीनसेन।
तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं
ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ।। १।।

दोहा— बासठवीं अध्याय महँ, रोग नासिका केर।
भाषे माधव ताहि लखि, समझत लगै न देर।। १।।

जिसकी नाक सिकुड़ कर सूख जाए, उसमें से पानी-सा बहता रहे, वह जलती रहे, और गन्ध के रसों को न जाने, उस पुरुष को पीनस रोग से युक्त जाने। इस विकार को वातकफ से उत्पन्न कहना चाहिए। इसके और श्लेष्मा के लक्षण कुछ-कुछ समान होते हैं।। १।।

पूतिनस्य के लक्षण

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले
समूर्च्छितो यस्य समीरणस्तु।
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां
तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम्।। २।।

गले और तालु में पित्त-रक्तादि दोषों से दूषित होकर दुष्ट वायु मुख और नाक से दुर्गन्ध को निकालता है। इस रोग को पूतिनस्य कहते हैं।। २।।

नासिकापाक के लक्षण

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्या-
द्यस्मिन् विकारे बलवांश्च पाकः।

तन्नासिकापाकमिति व्यवस्ये-
द्विक्लेदकोथावथवाऽपि यत्र।। ३।।

पित्त नासिका में टिककर घाव कर देता है। इस विकार में बलवान् पाक होता है। इस रोग को नासिकापाक रोग कहते हैं। इसमें पीब-सी नाक से बहती है।। ३।।

पूयरक्त के लक्षण

दोषैर्विदग्धैरथवाऽपि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः।
नासा स्त्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तम्पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम्।। ४।।

तीनों दोषों के दुष्ट हो जाने से, अथवा प्राणी के ललाट में चोट लगने से, नाक से रक्त मिली पीब बहने लगती है। उस रोग को पूयरक्त कहते हैं।। ४।।

क्षवथु के लक्षण

घ्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टे यस्यानिलो नासिकया निरेति।
कफानुयातो बहुशः सशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः।। ५।।

घ्राण इन्द्रिय के सुकुमार स्थान दोनों भौंहों के बीच का दुष्ट वायु नाक में होकर बाहर आता है। उसके पीछे कफ भी अवश्य थोड़ा बहुत गिरता है और बड़ा भारी शब्द होता है। इस साधारण रोग को क्षवथु (छींक) कहते हैं।। ५।।

आगन्तुक क्षवथु के लक्षण

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा।
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति।। ६।।

किसी तीक्ष्ण पदार्थ मिर्च आदि की झार से अथवा किसी ऐसे ही पदार्थ के बहुत सूँघने से, अथवा सूर्य की ओर देखने से, अथवा नासिका में सूत की बत्ती आदि डालने से, अथवा तरुण हाड़ों के सुकुमार स्थान को किसी वस्तु से खरखराने से भी क्षवथु (छींक) आती है।। ६।।

भ्रंशथुरोग के लक्षण

प्रभ्रश्यते नासिकया हि यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु।
प्राक्सञ्चितो मूर्धनि सूर्यतप्तस्तम्भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति।। ७।।

सूर्य से अत्यन्त तपाये हुए माथे वाले पुरुष की नासिका से, पहले का सञ्चित गाढ़ा और लुनछा कफ गिरता है। उसे भ्रंशथु नामक रोग कहते हैं।। ७।।

दीप्तरोग के लक्षण

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः।
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तन्दीप्तमुदाहरन्ति।। ८।।

जिसमें नासिका के अत्यन्त सन्तप्त होने पर उससे धुआँ-सा वायु निकले, और फिर उस प्राणी की नाक उसको जल गई सी जान पड़े, उस रोग को दीप्त कहते हैं।। ८।।

प्रतिनाह के लक्षण

उच्छ्वासमार्गन्तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम्।। ९।।

वातसहित कफ जब श्वास लेने के मार्ग को रोक ले, तो उस रोग को प्रतीनाह कहते हैं।। ९।।

नासास्राव के लक्षण

घ्राणाद्धनः पीतसितस्तनुर्वा
दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम्।। १०।।

जिस रोग में नासिका से गाढ़ा, पीला, उजला अथवा पतला कफ गिरे, उसको नासास्राव कहते हैं।। १०।।

नासाशोष के लक्षण

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन
गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च।
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जन्तु-
र्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः।। ११।।

जब नासिका की सूंघने वाली नस को पवन अत्यन्त सन्तप्त कर सुखा देता है, तब प्राणी बड़े कष्ट से ऊँचे अथवा नीचे मुख करके श्वास लेता है। यह रोग नासापरिशोष कहलाता है।। ११।।

कच्चे पीनस के लक्षण

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनु स्वरः ।
क्षामः ष्ठीवत्यथाऽभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम्।। १२।।

सिर का भारी रहना, अरुचि, नाक से पतला पानी बहना, स्वर स्पष्ट न निकलना और बार-बार नासिका से पानी बहना, ये सब कच्चे पीनसरोग के लक्षण हैं। १२।।

पके पीनस के लक्षण

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा ज्जनश्चाप्सु निमज्जति।
स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्वपीनसलक्षणम्।। १३।।

कच्चे पीनस के लक्षण से युक्त जब श्लेष्मा गाढ़ा होकर बाहर न निकले, जल में डूब जाए, और स्वर और अक्षर का शुद्ध स्पष्ट उच्चारण हो, वह पके हुए पीनस का लक्षण है।। १३।।

प्रतिश्यायरोग की संप्राप्ति

सन्धारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः।
प्रजागरस्वप्ननवाम्बुशीतावश्यायकैर्मैथुनबाष्पसेकैः ।। १४।।
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेच्च।

मल-मूत्र के वेग के रोकने से, अजीर्ण से, नासिका में धूलि जाने से, अधिक चिल्लाकर बोलने से, क्रोध करने से, ऋतुओं की बदला-बदली से, शिर में बहुत धूप लगने से, रात्रि में बहुत जागने से, दिन में सोने से, नया पानी पीने से, शीतल जल में अधिक स्नान करने से, मैथुन करने से, धुआँ लगने से, अधिक सोने से और कफ दोष के शिर में इकट्ठे होने से, वायु कुपित होकर, प्रतिश्यायरोग को उत्पन्न करता है।। १४।।

प्रतिश्याय की संप्राप्ति के अन्य लक्षण

चयङ्गता मूर्धनि मारुतादयः
पृथक्समस्ताश्च तथैव शोणितम्।

प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपणै-
स्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि।। १५।।

शिर में वात, पित्त, कफ और रक्त, ये सब इकट्ठे अथवा अलग-अलग कोप करके प्रतिश्याय रोग को करते हैं।। १५।।

प्रतिश्याय का पूर्वरूप

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता
स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा
नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः।। १६।।

छींक आना, सिर भारी होना, देह भारी होना, देह का टूटना, रोम खड़े होना इत्यादि बहुत से उपद्रव, प्रतिश्याय होने के पूर्व होते हैं।। १६।।

वातज प्रतिश्याय के लक्षण

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्त्रावप्रसेकिनी।
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा।। १७।।
भवेत् स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके।

वातज प्रतिश्याय में, नासिका में मल भरा रहता है, बहुत सहराने पर कुछ पतला-सा पानी बहता है, गला, तालु और ओष्ठ सूख जाते हैं, दोनों कनपटियों में काँटे से कोंचने लगते हैं, बोल कुछ खरखरा-सा हो जाता है और गला बैठ जाता है।। १७।।

पैत्तिक प्रतिश्याय के लक्षण

उष्णः सपीतकः स्त्रावो घ्राणात्स्त्रवति पैत्तिके।। १८।।
कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः।
सधूममग्निं सहसा वमतीव च नासया।। १९।।

पित्तज प्रतिश्याय में, उष्ण और पीला कफ नासिका से गिरता है। मनुष्य कुछ दुर्बल और पीला हो जाता है, उसका उष्णता के कारण शरीर कुछ जलता

रहता है ऐसा जान पड़ता है कि मानो धुआँसहित अग्नि नासिका से उगलना चाहता है।। १८-१९।।

कफज़ प्रतिश्याय के लक्षण

घ्राणात्कफः कफकृते शुक्लश्शीतः स्रवेद्बहु।
शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद् गुरुशिरा नरः।। २०।।
गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरभिपीडितः।

कफज प्रतिश्याय में नासिका से उजला, ठंडा बहुत-सा कफ गिरता है। इससे वह रोगी उजला-सा दिखाई देता है। नेत्रों के नीचे फरफराने लगता है। शिर भारी बना रहता है। कण्ठ, तालु और शिर खुजलाहट से पीड़ित होता है।। २०।।

सान्निपातिक प्रतिश्याय के लक्षण

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्माद्विनिवर्तते।
सम्पक्वो वाऽप्यपक्वो वा स सर्वप्रभवः स्मृतः।। २१।।

जो प्रतिश्याय हो-हो कर अपने आप बार-बार निवृत्त हो जाए, चाहे पक्का हो अथवा कच्चा हो, उस प्रतिश्याय को वात-पित्त-कफ तीनों से उत्पन्न समझे।। २१।।

दुष्टप्रतिश्याय के लक्षण

प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति।
पुनरानह्यते चाऽपि पुनर्विव्रियते तथा।। २२।।
निश्वासश्चातिदुर्गन्धो नरो गन्धं न वेत्ति च।
एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात् कृच्छ्रसाधनम्।। २३।।

जिस प्रतिश्याय में, बार-बार नासिका से कफ बहे। बार-बार नासिका सूख जाए। बार-बार नासिका में कफ जकड़ जाए। बार-बार खुल जाए। श्वास में दुर्गन्ध आए, परन्तु उसको कुछ भी दुर्गन्ध न जान पड़े। इस प्रकार के दुष्टप्रतिश्याय को कष्टसाध्य समझें।। २२-२३।।

रक्तप्रतिश्याय के लक्षण

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते।
ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः।
दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो गन्धानपि न वेत्ति सः।। २४।।

रक्तज प्रतिश्याय में नासिका से रक्त बहने लगता है। प्राणी के नेत्र लाल हो जाते हैं। छाती पिराने लगती है। उससे अत्यन्त पीड़ित होता है। उसके सब श्वास दुर्गन्धियुक्त ही आते हैं, परन्तु वह गन्ध को नहीं जानता।। २४।।

असाध्य प्रतिश्याय

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः।
दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति हि।। २५।।

जितने प्रतिश्याय हैं, वे औषधादि न करने वाले रोगी के काल पाकर दुष्ट होकर असाध्य हो जाते हैं।। २५।।

कृमिप्रतिश्याय के लक्षण

मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथऽणवः।
कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनास्य लक्षणम्।। २६।।
बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान्।
शोथाग्निसादकासांश्च क्रुद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः।। २७।।

बहुत काल के प्रतिश्याय में, उजले-उजले छोटे तथा चिकने कीड़े पड़ जाते हैं। जो कृमिज शिर का रोग है उसी के तुल्य इसके भी लक्षण होते हैं। प्रतिश्याय ही कीड़े पड़ जाने से पीनस रोग हो जाता है। जब कीड़े बहुत बढ़ जाते हैं और क्रुद्ध हो जाते हैं तो मनुष्य को बहिरा, अन्धा, न सूँघने वाला, नेत्र में नाना प्रकार के घोर रोग वाला, देह शोथ वाला, मन्दाग्नि वाला और खाँसी आदि रोग वाला कर देते हैं।। २६-२७।।

नासारोग की संख्या

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम्।
चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः।। २८।।

इति नासारोगनिदानं द्विषष्टितमोऽध्यायः।। ६२।।

सात प्रकार के अर्बुदरोग, चार प्रकार के शोथ रोग, चार प्रकार के बवासीर रोग, चार प्रकार के रक्त-पित्त, ये पहले कह आए हैं। इन रोगों को नासिका के रोगों में भी जानना चाहिए।। २८।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे नासिकारोगनिदानं द्विषष्टितमोध्यायः:।। ६२।।

अथ नेत्ररोगनिदानम्

नेत्ररोगों की संप्राप्ति के कारण

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च।
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात्।। १।।
द्रवान्नपानादतिसेवनाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च।
प्रसक्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोऽभिघातादतिमद्यपानात् ।। २।।
तथा ऋतूनाञ्च विपर्ययेण क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च।
बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः।। ३।।

दोहा— तिरसठवीं अध्याय महँ, नेत्ररोग समझाय।
विविध भाँति कविराज ने, जग हित किया उपाय।। १।।

धूप से अतिसन्तप्त होकर मनुष्य के देर तक अतिशीतल जल में रहने से, दूर के पदार्थ को देखने से, दिन में सोने से, रात्रि में अधिक जागने से, नेत्रों में पसीना भरने से, धूल पड़ने से, अधिक धुआँ लगने से, वमन को रोकने से, अधिक वान्त होने से, पिघले हुए पतले अन्न खाने और पीने से, मल-मूत्र और अधोवायु के वेग को रोकने से, बहुत रोने और अधिक शोक-कोप करने से, शिर में चोट लगने से, अत्यन्त मदिरा पीने से, ऋतुओं की उलटा-पलटी से, क्लेशों का धक्का लगने से, अतिमैथुन करने से, आँसुओं को रोकने से, और सूक्ष्म वस्तु तथा छोटे अक्षर आदि को देखने से, वात-पित्त-कफ आदि दोष, नेत्र में विकारों को उत्पन्न करते हैं।। १-३।।

अभिष्यन्द के चार भेद

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः।*
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः।। ४।।

वात, पित्त, कफ और रक्त, इन चारों से बहुधा चार प्रकार के नेत्र उठ आते है। यही घोर रोग सब रोगों को उत्पन्न करता है।। ५।।

---

* नेत्ररोग सब छिहत्तर होते हैं। १० वात से, १० पित्त से, १३ कफ से, १६ रक्त से, २५ सन्निपात से, 2 और बाहर से।

वाताभिष्यन्द के लक्षण

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसङ्घऽर्षपारुष्यशिरोभितापाः ।
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति।। ५।।

वात से नेत्र आने में सुई के कोंचने की-सी पीड़ा होती है, नेत्र में भारीपन होता है, रोम खड़े हो-हो जाते हैं, कँकरौरी-सी गड़ती है, रुखाई हो जाती है, शिर में पीड़ा होती है, नेत्र सूखे रहते हैं और उनसे ठंडे आँसू गिरते हैं।। ५।।

पित्ताभिष्यन्द के लक्षण

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दो धूमायनं वाष्पसमुच्छ्रयश्च।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति।। ६।।

पित्त से जब नेत्र आता है, तो नेत्र में दाह होती है, वह पक जाती है, उसमें शीतल वस्तु लगवाने से आनन्द जान पड़ता है। नेत्रों से धुआँ-सा निकलता है। नेत्र में सूजन नहीं होती। गरम आँसू बहते हैं। नेत्र पीले हो जाते हैं।। ६।।

कफाभिष्यन्द के लक्षण

उष्णाभिनन्दो गुरुताऽक्षिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च।
स्रावो बहुःपिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति।। ७।।

कफ से नेत्र आने में, उष्ण वस्तु के लगाने से आनन्द जान पड़ता है। नेत्रों में भारीपन रहता है। आँखें सूज आती हैं। खुजली होती है। चटचटाहट होती है। नेत्र बहुत ठण्डे रहते हैं। चिकना पानी बहुत बहता है।। ७।।

रक्ताभिष्यन्द के लक्षण

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च
नाल्यः समन्तादतिलोहिताश्च।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि
रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति।। ८।।

रक्त के दोष से नेत्र आने में, ललझर आँसू गिरते हैं। नेत्र लाल रहते हैं। बरौनियाँ भी (सब ओर से) लाल ही हो जाती हैं। पित्त से आए हुए नेत्र में जो-जो लक्षण कह आए हैं, वे सब इस रक्तज में भी होते हैं।। ८।।

अभिष्यन्द से अधिमन्थ

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः।। ९।।

इस प्रकार आँख आने पर, औषधादि न करने वाले मनुष्यों को तीव्र पीड़ा वाले उतने ही अधिमन्थ रोग होते हैं।। ९।।

अधिमन्थों के लक्षण

उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा।
शिरसोऽर्धञ्च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः।। १०।।
हन्याद् दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्रा-
दोधीमन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात्।
षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्या-
न्मिथ्याचारात्पैत्तिकस्सद्य एव।। ११।।

अधिमन्थ का लक्षण यह है कि, मानो कोई नेत्र को उखाड़े ही लेता है, उसमें कोई सलाई आदि डालकर मथता है और आधा शिर पिराता है। इसके लक्षण वात से उठे हुए नेत्रों के से होते हैं। कफ के कोप से जब आँख में अधिमन्थरोग होता है तो वह सात दिन में नेत्र को फोड़ता है। रक्तज अधिमन्थ पाँच दिन में, वातज अधिमन्थ छः दिन में और पित्तज तुरन्त फोड़ता है। परन्तु ये सब उपद्रव मिथ्याचार से ही (उलटा उपाय करने से ही) होते हैं।। १०-११।।

कच्चे नेत्र के लक्षण

उदीर्णवेदनं नेत्रं रोगोद्रेकसमन्वितम्।
घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः।। १२।।

जब तक नेत्र में पीड़ा और ललाई अधिक हो, करकराता हो, कोंचने की-सी पीड़ा हो और आँसू बहते हों, तब तक जानना चाहिए कि अभी नेत्र के दोष पके नहीं हैं, कच्चे हैं।। १२।।

पके नेत्र के लक्षण

मन्दवेदनता कण्डूस्संरम्भाश्रुप्रशान्तता।
प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोस्सम्पक्वन्दोषमादिशेत्।। १३।।

जब नेत्र में पीड़ा कम हो जाए, वह खुजलाने लगे, सूजन थोड़ी हो चले, आँसुओं का बहना कम होने लगे और ललाई छँटकर स्वच्छता आने लगे, तब जानना चाहिए कि अब दोष परिपक्व हो गया है।। १३।।

सशोथ नेत्रपाक के लक्षण

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः।
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोथजः।
शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथजे।। १४।।

जब नेत्र में खुजली होने लगे, और सूजे हुए नेत्र से आँसू बहने लगें, आँख पकी हुई गूलर के तुल्य लाल हों, और बड़े ज़ोर से नेत्र पक आएं, तो उसको नेत्रपाकरोग कहते हैं। यह शोथ से होता है। जिस नेत्रपाक में शोथ नहीं होता, अन्य सब चिह्न होते हैं, उसको अशोथज नेत्रपाक जाने।। १४।।

हताधिमन्थ के लक्षण

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो
वातात्मकः सादयति प्रसह्य।
रुजाभिरुग्राभिश्साध्य एव
हताधिमन्थः खलु नेत्ररोगः।। १५।।

जब वातज अधिमन्थरोग की औषधादि नहीं की जाती, तब यह नेत्रों को दुःखित कर उग्र पीड़ा करता है और असाध्य हो जाता है। उस रोग को हताधिमन्थ कहते हैं।। १५।।

वातपर्यय नेत्ररोग के लक्षण

वारं वारं च्च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः।
रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः।। १६।।

जब बार-बार भौंहों में और नेत्रों में, वायु लोटता-पलटता है, तो विविध प्रकार की कठिन पीड़ाएं होती हैं। वह रोग वातपर्यय कहलाता है।।१६।।

शुष्काक्षिपाक के लक्षण

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म
सन्दह्यते वाविलदर्शनं यत्।
सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च
शुष्काक्षिपाकोपहतन्तदक्षि ।। १७।।

जो नेत्र खुलता नहीं, उसकी पलक दारुण होकर रूखी हो जाती है, और जलने लगती है, बड़ी कठिनता से कुछ ढबैले रङ्ग का दीख पड़ता है, जिसके खोलने में बड़ी कठिनता पड़ती है, यह नेत्र, शुष्काक्षिपाकरोग से आक्रान्त है, यह जाने।। १७।।

अन्यतोवात के लक्षण

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो
मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा।
कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च
तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ।। १८।।

जिसकी पलक, कान, मस्तक, चौहड़ी, गर्दन की नस, इन स्थानों में, अथवा अन्य ही किसी स्थान में वायु रहे और भौहँ और नेत्र में पीड़ा करे, तो उस रोग को अन्यतोवात कहते हैं।। १८।।

अम्लाध्युषित नेत्ररोग के लक्षण

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते।
सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः।। १९।।

जब नेत्र बीच में कुछ काला हो, और अन्यत्र सब लाल हो जाए, सब नेत्र पक उठे, दाह, शोथ, और आँसू बहें, तो उसे अम्लाध्युषित रोग कहते हैं। यह रोग खटाई अधिक खाने से होता है।। १९।।

शिरोत्पात के लक्षण

अवेदना वाऽपि सवेदना वा
यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः।

मुहुर्विरज्यन्ति च यास्स तादृ-
ग्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः।। २०।।

पीड़ासहित अथवा पीड़ारहित, जिसकी बरौनियाँ लाल हो जाएं, फिर कभी-कभी बहुत ही लाल हो जाएं, ऐसे रोग को शिरोत्पात कहते हैं। यह रक्त से होता है।। २०।।

शिराहर्ष के लक्षण

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु
जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः।
ताम्राश्रुमस्त्रं स्त्रवति प्रगाढं
तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुञ्च।। २१।।

जब कोई मोह में पड़कर इस शिरोत्पातरोग की औषधादि नहीं करता, तो फिर उसी के स्थान पर शिराहर्ष नामक रोग हो जाता है। इसमें नेत्र से ऐसे गाढ़े लाल आँसू गिरते हैं कि उसे फिर कुछ दिखाई नहीं देता।। २१।।

सव्रणशुक्ररोग के लक्षण

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे
सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै।
स्त्रावं स्त्रवेदुष्णमतीव यच्च
तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति।। २२।।

नेत्र के काले भाग में, लाल रङ्ग की फूली पड़ जाती है, और उसी काले भाग में डूबी रहती है, अथवा उसी काले भाग में सुई के छेद के समान छेद हो जाता है और उससे उष्ण बहुत से आँसू गिरते हैं, उसको सव्रणशुक्ररोग कहते हैं।। २२।।

सव्रणशुक्र के साध्यासाध्य लक्षण

दृष्टेस्समीपे न भवेत्तु यच्च
न चावगाढं न च संस्त्रवेद्धि।
अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं
तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव।। २३।।

यह शुक्ररोग (फूली का रोग) यदि तिल के समीप न हो, बहुत गाढ़ा न हो, बहता न हो, पीड़ा न होती हो, और उसमें महीन छेद न हों, तो वह फूली औषध करने से कदाचित् सिद्ध हो जाती है, उसकी औषध करनी चाहिए।। २३।।

शुक्र के साध्य लक्षण

स्यन्दात्मकं कृष्णगतं सचोषं
शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम्।
वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाश-
मथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति।। २४।।

आँख आने पर जो फूली नेत्र के काले भाग में हो, अपने स्थान पर से कुछ चलती रहे, उसका रंग शङ्ख, चन्द्रमा अथवा कुन्द के फूल के तुल्य उजला हो, बिना जल के मेघ के तुल्य उजली दिखाई दे और छोटी-सी हो, तो इस रोग को सुखसाध्य कहते हैं।। २४।।

कृष्छ्र और असाध्य शुक्र के लक्षण

गम्भीरजातं बहुलञ्च शुक्रं
चिरोत्थितञ्चापि वदन्ति कृच्छ्रम्।
विच्छिन्नमध्यं पिशिताश्रितं वा
चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च।। २५।।
द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च
चिरोत्थितञ्चापि विवर्जनीयम्।
उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे
यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभञ्च शुक्रम्।। २६।।
तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचि-
दन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम्।

शुक्र रोग जब बहुत गहरे में, दूसरे या तीसरे पर्त में हो, बड़ा हो, और बहुत दिनों का हो, तो कष्टसाध्य हो जाता है। वही अव्रणशुक्र अथवा फूली जब बढ़े हुए मांस से घिर जाती है, उसका बीच कुछ खाली हो जाता है, वह जलती रहती

है, देखने वाली नस में छिदी होती है, देखने नहीं देती, दूसरी खाल में हो, भीतर में लाल हो और बहुत दिनों की हो गई हो, तो असाध्य होने के कारण त्याज्य है। जिस फूली वाले को गरम आँसू गिरते हों, नेत्र में फुन्सी हो और फूली मूँग भर की हो, तो उसे भी कोई-कोई असाध्य ही कहते हैं। तीतर के पंख के रङ्ग की फूली भी असाध्य होती है।। २४-२६।।

अक्षिपाकात्यय के लक्षण

श्वेतःसमाक्रामति सर्वतो हि
दोषेण यस्यासितमण्डलन्तु।
तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकं
सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः।। २७।।

जिसमें नेत्र के काले भाग भर पर दोष से सफेदी दौड़ जाए, कहीं काला दिखाई ही न पड़े, उसको अक्षिपाकात्यय नाम अक्षिपाक कहते हैं। यह सन्निपात से होता है। यह वर्जित है।। २७।।

अजकाजात के लक्षण

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान
सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः।
विगृह्य कृत्स्नं प्रचयोऽभ्युपैति
तच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत्।। २८।।

यदि नेत्र में बकरी की लेंड़ी के समान का रोग ललाई लिए हो, लाल चिकने आँसू नेत्र से गिरते हों और काले भाग भर को मूँदकर वह रोग ऊँचा हो गया हो, तो उस रोग को अजकाजात कहते हैं।। २८।।

प्रथमपटल के दोषों का स्वभाव

प्रथमे पटले दोषा यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थिताः।
अव्यक्तानि स रूपाणि कदाचिदथ पश्यति।। २९।।

जिसके पहले पर्दे में वातादि दोष होकर दृष्टि को रोकते हैं, उसे विविध प्रकार के रूप दिखाई देते हैं। वायु के दोष में नीला-काला, पित्त के दोष में पीला,

कफ के दोष में उजला, रक्त के दोष में सब लाल ही लाल दिखाई देता है। सन्निपात के दोष में अनेक रङ्ग दिखाई देते हैं।। २९।।

द्वितीय पटल के दोषों का स्वभाव

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते।
मक्षिकामशकान् केशाञ्जालकानिव पश्यति।। ३०।।
मण्डलानि पताकांश्च मरीचीन् कुण्डलानि च।
परिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रन्तमांसि च।। ३१।।
दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः।
समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात्।। ३२।।
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति।

जब रोग नेत्र के दूसरे पर्दे में होता है, तो दृष्टि अत्यन्त खराब हो जाती है, रोगी को मक्खी, मसे, केश, मकड़ी के जाला से दिखाई पड़ते हैं। मण्डल, पताका, किरण, कुण्डल और विविध प्रकार के चञ्चल पदार्थ, वर्षा, बादल और अन्धकार-सा देखता है, दूर के पदार्थों को समीप मानता है और समीप वालों को दूर। दृष्टिभ्रम से ऐसा दिखाई देता है। बहुत यत्न करें तो भी सुई में डोरा नहीं डाल सकता।। ३०-३२।।

तृतीय पटल के दोषों का स्वभाव

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते।। ३३।।
महान्त्यपि च रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः।
कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानि च पश्यति।। ३४।।
यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि।
अधःस्थिते समीपस्थन्दूरस्थं चोपरिस्थिते।। ३५।।
पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थन्नैव पश्यति।
समन्ततः स्थिते दोषे सङ्कुलानीव पश्यति।। ३६।।
दृष्टिमध्यगते दोषे महद्ध्रस्वञ्च पश्यति।
द्विधा स्थिते द्विधा पश्येद् बहुधा चानवस्थिते।। ३७।।
दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वै मन्यते द्विधा।। ३८।।

जिस रोगी के नेत्र के तीसरे पर्दे में रोग होता है, वह ऊपर के पदार्थों को तो देखता है, पर नीचे वालों को नहीं देखता। बड़े-बड़े रूप वाले पदार्थ भी उसे बादल से घिरे हुए दिखाई देते हैं। सब को वह रोगी कान, नाक, नेत्र से रहित ही देखता है। जिस बलवान् दोष से उसकी दृष्टि रंग जाती है, उसी के अनुसार वह देखता है। जब दोष दृष्टि के नीचे की ओर होता है, तो समीप की वस्तु नहीं दिखाई देती। ऊपर की ओर हो तो दूर की वस्तु को नहीं देखता। जो दोष पार्श्व (बगल) में होता है, तो रोगी पार्श्व की वस्तु को नहीं देखता। जो सब ओर दोष स्थित होता है, तो उसे मण्डलाकार ही दिखाई देता है। जब दृष्टि के बीचोंबीच में दोष होता है, तो बड़ा पदार्थ छोटा दिखाई देता है। जब दो ठिकाने दृष्टि में दोष होता है, तो एक पदार्थ के दो रूप दिखाई देते हैं। जो दोष एकत्र न रहे, चलता-फिरता रहे, तो एक पदार्थ बहुत प्रकार के दिखाई देते हैं। जो दोष दृष्टि में टेढ़ा रहता है, तो रोगी एक पदार्थ को दो खण्ड देखता है।। ३३-३८।।

चतुर्थपटल के दोषों का स्वभाव

तिमिराख्यः स विज्ञेयश्चतुर्थंपटलं गतः।
रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशमतः परम्।। ३९।।
अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः।। ४०।।
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति।
स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिका काचसंज्ञितः।। ४१।।

जब तिमिरनामक रोग नेत्र के चौथे पर्दे में हो जाता है तो सब ओर से दृष्टि को रोक लेता है, तब वह लिङ्गनाशरोग हो जाता है। यह लिङ्गनाश नामक महारोग अन्धकार रूप होकर यदि बहुत बढ़ न गया हो तो चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और बिजली, ये पदार्थ आकाश में बहुत निर्मल और तेज वाले प्रकाशित दिखाई देते हैं। वही लिङ्गनाश रोग जब बहुत दिनों का हो जाता है तो नीलिका और काच कहलाता है।। ३९-४१।।

वातज लिङ्गनाश के लक्षण

तत्र वाते च रूपाणि भ्रमन्तीव पश्यति।
आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः।। ४२।।

वातज लिङ्गनाश वाले रोगी को सब रूप घूमते, मटमैले, कुछ लाल और टेढ़े से दिखाई देते हैं।। ४२।।

पित्तज लिङ्गनाश के लक्षण

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गणान्।
नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलञ्च पश्यति।। ४३।।

जिसके नेत्र में पित्त के दोष से लिङ्गनाश रोग होता है, वह सूर्य, जुगुनू, इन्द्रधनुष, बिजली, और नाचते हुए मोर को और सब पदार्थ नीले ही देखता है।। ४३।।

कफज लिङ्गनाश के लक्षण

कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च।
सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः।। ४४।।

जिसके नेत्रों में कफ के दोष से लिङ्गनाश रोग होता है, वह मनुष्य चिकने, उजले, जल में डूबे हुए से और जड़तायुक्त रूपों को देखता है।। ४४।।

रक्तज लिङ्गनाश के लक्षण

पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च।
असितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः।। ४५।।

जिसके नेत्र में रक्त के दोष से लिङ्गनाश रोग होता है, वह मनुष्य लाल-लाल विविध प्रकार के काले पदार्थों को, उजलाई लिए हुए काले पीले रूप में देखता है।। ४५।।

सन्निपातज लिङ्गनाश के लक्षण

सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति।
बहुधा वा द्विधा वापि सर्वाण्येव समन्ततः।। ४६।।
हीनाधिकाङ्गान्यथवा ज्योतींष्यपि च पश्यति।

जिसके नेत्र में सन्निपात के दोष से लिङ्गनाश विकार होता है, वह मनुष्य चित्र-विचित्र उछलते हुए एक ही पदार्थ के बहुत से रूप, अथवा एक के दो

अपने चारों ओर देखता है, उसे कोई रूप हीनाङ्ग, कोई अधिकाङ्ग और नाना प्रकार के प्रकाशित पदार्थ दिखाई देते हैं।। ४६।।

परिम्लायि के लक्षण

पित्तं कुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा।। ४७।।
पीता दिशस्तु खद्योतान् भास्करं चापि पश्यति।
विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च।। ४८।।

रक्त के तेज में मिलकर पित्त परिम्लायि नामक तिमिर को उत्पन्न करता है। तब रोगी सब दिशा, सूर्य, और जुगनू को पीले तथा प्रकाशित देखता है। उसे वृक्ष सब तेजों से और जुगनुओं से युक्त दिखाई देते हैं।। ४७-४८।।

दोषभेद से लिङ्गनाश के भेद

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिङ्गनाशमतः परम्।
रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो
म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात्।
कफात्सितश्शोणितजस्तु रक्तः
समस्तदोषप्रभवो विचित्रः।। ४९।।

रङ्गों के भेद से लिङ्गनाश रोग छः प्रकार के होते हैं। वातज लिङ्गनाश रोग लाल रङ्ग का होता है। उसमें सब लाल ही लाल दिखाई देता है। पित्तज का रङ्ग मैला और नीला होता है। उसमें ये ही रङ्ग दिखाई देते हैं। कफज का रङ्ग उजला होता है। उसमें उजला ही दिखाई देता है। रक्तज अतिलाल होता है। इसमें लाल ही दिखाई देता है। सन्निपातज लिङ्गनाशरोग का विचित्र रङ्ग होता है। उसमें सब पदार्थ विचित्र रङ्ग के दिखाई देते हैं।। ४९।।

वातादिहेतु से नेत्रमण्डलरोग के विशेष लक्षण

अरुणं मण्डलं दृष्ट्यां स्थूलकाचारुणप्रभम्।
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलञ्च मण्डलम्।। ५०।।
दोषक्षयात् स्वयं तत्र कदाचित्स्यात्तु दर्शनम्।
अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलम्परुषन्तथा।। ५१।।

पित्ततो मण्डलं नीलं कांस्याभम्पीतमेव च।
श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम्।। ५२।।
चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः।
मृद्यमाने च नयने मण्डलन्तद्विसर्पति।। ५३।।
प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम्।
दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे।। ५४।।
यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि।
षड्लिङ्गनाशाः षडिमे च रोगा
दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव च स्युः।। ५५।।

परिम्लायि रोग में दृष्टि के आगे मोटे काँच की सलाई के समान लाल रङ्ग का मण्डल दिखाई देता है, अथवा मटमैला और नीला मण्डल दिखाई देता है। दोष के क्षय हो जाने से जो दोष अधिक रह जाता है, वही रङ्ग दिखाई देने लगता है। वात के दोष से चञ्चल, कड़ा और लाल मण्डल दिखाई पड़ता है। पित्त के दोष से कुछ काला, काँसे के रङ्ग का और पीला रङ्ग दिखाई देता है। कफ के दोष से बहुत चिकना, शङ्ख, कुन्द और चन्द्रमा के रङ्ग का उजला रङ्ग दिखाई देता है। उसी लिङ्गनाशरोग में, कमल के पत्ते पर स्थित चञ्चल जल के बूँद का-सा शुक्ल रङ्ग दिखाई देता है। नेत्रों के मींजने पर वह मण्डल इधर-उधर फैलने और दौड़ने लगता है। रक्त के दोष से मूँगा और लाल कमल के पत्ते के रङ्ग का मण्डल दिखाता है। त्रिदोषज में चित्र-विचित्र दृष्टि का रङ्ग हो जाता है। अपने-अपने दोष के रङ्ग के चिह्न सभी में होते हैं। प्रथम कहे हुए छः लिङ्गनाश रोग और दृष्टि के आश्रित ये छः लिङ्गनाश, सब मिलकर बारह होते हैं।। ५०-५५।।

पित्तविदग्ध दृष्टि के लक्षण

पित्तेन दुष्टेन विदग्धदृष्टिः
पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः।
पीतानि रूपाणि च तेन पश्ये-
त्स मानवः पित्तविदग्धदृष्टिः।। ५६।।

प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे
दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते च।
रात्रौ सशीतानुगृहीतदृष्टिः
पित्ताल्पभावादपि वानुपश्येत्।। ५७।।

जिस रोगी की दृष्टि दुष्ट पित्त के बढ़ने से पीली हो जाती है, वह सब रूपों को पीले ही देखता है। उस रोगी को पित्तविदग्धदृष्टि कहते हैं। जब नेत्र के तीसरे पर्दे में दोष पहुँच जाता है तो रोगी दिन में नहीं देखता, रात्रि में देखता है। रात्रि को दृष्टि में शीतलता आ जाती है और पित्त की अल्पता हो जाती है।। ५६-५७।।

श्लेष्मविदग्धदृष्टि के लक्षण

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टि-
स्तान्येव शुक्लानि च मन्यते तु।
त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो
नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य।। ५८।।
दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः
पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात्।

जब मनुष्य श्लेष्मविदग्धदृष्टि होता है तो सब रूपों को शुक्लवर्ण देखता है। जिस रोगी के तीनों पटलों में कफ व्याप्त हो जाता है, वह रात्रि में नहीं देखता। इस रोगी को रात्र्यन्ध कहते हैं और रोग को रतौंधी कहते हैं। दिन में सूर्य के प्रकाश की सहायता से देखता है। दिन में उष्णता के कारण कफ की अल्पता हो जाती है।। ५८।।

धूमदर्शि के लक्षण

शोकज्वरायासशिरोऽभितापै-
रभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः।। ५९।।
सधूमकान्पश्यति सर्वभावान्
स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः।

शोक, ज्वर, अतिपरिश्रम और शिर में अत्यन्त धूप लगने से, जिस मनुष्य

की दृष्टि अत्यन्त हत हो जाती है, वह सब पदार्थों को धूमिल रङ्ग के देखने लगता है। यह नर धूमदर्शी (धूमिल देखने वाला) कहलाता है।। ५९।।

ह्रस्वजात्य के लक्षण

यो ह्रस्वजाड्यो दिवसेषु कृच्छ्रा-
द्ध्रस्वानि रूपाणि च तेन पश्येत्।। ६०।।

जिसकी लम्बी दृष्टि नहीं है, वह ह्रस्वदृष्टि पुरुष दिन में सब रूपों को छोटे-छोटे देखता है।। ६०।।

नकुलान्ध्य के लक्षण

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टि-
र्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत्।
चित्राणि रूपाणि दिवा च पश्ये-
त्स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः।। ६१।।

जिस मनुष्य की दृष्टि दोष से युक्त होकर नेवले की-सी हो जाती है, वह दिन में चित्र-विचित्र रूप देखता है। इस रोग को नकुलान्ध्य कहते हैं।। ६१।।

गम्भीरका के लक्षण

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा
सङ्कोचमभ्यन्तरतस्तु याति।
रुजावगाढं च तमक्षिरोग-
ङ्गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।। ६२।।

जिसकी दृष्टि वात रोग के होने से, भीतर की ओर सिकुड़ जाती है और नेत्र में बड़ी पीड़ा होती है, इस नेत्ररोग को मर्मज्ञ लोग गम्भीररिका कहते हैं।। ६२।।

निमित्तज और अनिमित्तज बाह्यरोग के लक्षण

बाह्यौ पुनर्द्वाविह सम्प्रदिष्टौ
निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च।

निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापा-
ज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनस्सः ।। ६३।।
सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां
सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य।
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य चैवं
स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः।। ६४।।
तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति
वैडूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः।

अभिघातज लिङ्गनाश दो प्रकार के होते हैं। वे बाह्य कहलाते हैं। एक किसी निमित्त से होता है। दूसरा बिना निमित्त से होता है। शिर में बड़ी धूप अथवा आँच लगने से निमित्तज होता है। अथवा कभी नेत्र आने से होता है। जिसमें मनुष्य की दृष्टि देवता, ऋषि, गन्धर्व, और महासर्पों के देखने से, अथवा सूर्य को बहुत देखने से, इन सभी के तेज से हत हो जाती है। वह लिङ्गनाश अनिमित्तज कहलाता है। इसमें नेत्र वैडूर्यमणि के तुल्य निर्मल नीले रङ्ग का दिखाई देता है और दृष्टि विमल रहती है।। ६३-६४।।

प्रस्तार्यर्म के लक्षण

प्रस्तार्यर्म तनु स्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते।

नेत्र के श्वेत भाग में पतला, लम्बा, श्याम रङ्ग का अथवा लाल रङ्ग का कुछ उजलाई लिए जो मांस बढ़ता है, वह प्रस्तार्यर्म कहलाता है।

सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्द्धते चिरात्।। ६५।।

कोमल शुक्ल रङ्ग का मसा यदि नेत्र में झटपट बढ़ आए तो उसे शुक्लार्म रोग कहते हैं।। ६५।।

रक्तार्म के लक्षण

पंद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते।

यदि नेत्र के उजले भाग में कमल के रङ्ग का कुछ लाल कोमल मसा हो तो उसे रक्तार्म रोग कहते हैं।

अधिमांसार्म के लक्षण

पृथु मृद्वधिमांसार्म बहुलञ्च यकृन्निभम्।। ६६।।

नेत्र के उजले भाग में यकृत (कलेजे) की तरह कुछ लाल कुछ काले, चौड़े, मोटे, और कोमल उत्पन्न मसे को अधिमांसार्म कहते हैं।। ६६।।

स्नाय्वर्म के लक्षण

स्थिरं प्रस्तारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पञ्चमम्।

जो बड़ा, यकृत् की तरह का कुछ लाल मिला हुआ, स्थिर, बहुत फैला हुआ, और मांस से युक्त सूखा मसा होता है, उसे स्नाय्वर्म कहते हैं। यह पाँचवाँ है।

शुक्ति के लक्षण

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये
शुक्त्याभाः सितनियताः स शुक्तिसंज्ञः।

शुक्ति के आकार के काले और मांस के रङ्ग के स्थिर बूँद जो नेत्र के उजले भाग में होते हैं, वे शुक्तिनामक रोग हैं।

अर्जुन के लक्षण

एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः
शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति।। ६७।।

नेत्र के उजले भाग में जो एक ही बिन्दु खरगोश के रुधिर के रङ्ग का हो, उसे अर्जुन रोग कहते हैं।। ६७।।

पिष्टक के लक्षण

श्लेष्ममारुतकोपेन यच्छुक्ले मांसमुन्नतम्।
पिष्टवत् पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम्।। ६८।।

कफ और वात के कोप से नेत्र के उजले भाग में पीठा के तुल्य ऊँचा मांस हो आता है, उसका पिष्टक नाम है। इसका रङ्ग मैले दर्पण का-सा होता है।। ६८।।

शिराजाल के लक्षण

जालाभः कठिनशिरो महान् सरक्तः
सन्तानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु।

नेत्र के उजले भाग में नसों का बड़ा भारी जाल-सा बनकर तन जाता है। इसका रङ्ग लाल होता है। इस रोग को शिराजाल कहते हैं।

शिराजपिडिका के लक्षण

शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता या-
स्ता ब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः।। ६९।।

नेत्र के काले भाग के समीप उजले भाग में, नसों से घिरी हुई जो उजली फुन्सियाँ होती हैं, उनको शिराजा कहते हैं।। ६९।।

बलासक के लक्षण

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो
विज्ञेयो नयनसिते बलासकाख्यः।। ७०।।

नेत्र के उजले भाग में, काँसे के रङ्ग का, कोमल और जल के छोटे बिन्दु के तुल्य जो बिन्दु होता है, उसे बलासक रोग कहते हैं।। ७०।।

पूतिपूलाय के लक्षण

पक्वः शोथः सन्धिजः प्रस्त्रवेद्यः
सान्द्रं पूयं पूति पूयालसाख्यः।

नेत्र की सन्धि से उत्पन्न शोथ, जिसमें सुई के कोंचने की-सी पीड़ा हो और उसमें से दुर्गन्धयुक्त पीब बहे, उस रोग को पूलायस कहते हैं।

उपनाह के लक्षण

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी
कण्डूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः।। ७१।।

नेत्र की काली और उजली सन्धि पर जो नीली गाँठ हो और वह न पके, न पीड़ा करे, केवल खुजलाती रहे, उसको उपनाह रोग कहते हैं।। ७१।।

स्राव रोग की संप्राप्ति

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः
कुर्युः स्रावाल्लंक्षणैः स्वैरुपेतान्।
तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके
तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्धा।। ७२।।

वात-पित्त-कफ और रक्त, ये चारों दोष आँसुओं के मार्ग से नेत्र की सन्धियों में जाकर अपने-अपने लक्षणों से युक्त पदार्थों को बहाते हैं। इस रोग को नेत्रस्राव अथवा नेत्रनाड़ी कहते हैं। इसके चिह्न चार प्रकार के होते हैं। उन्हें हम कहेंगे।। ७२।।

सन्निपातज पूयास्राव के लक्षण

पाकः सन्धौ संस्रवेद्यस्तु पूयं
पूयास्रावोऽसौ गदः सर्वजस्तु।

जो नेत्र के सन्धि में पककर पीब को बहाए, उस रोग को पूयास्राव कहते हैं। वह वात, पित्त, कफ और रक्त के योग से उत्पन्न होता है।

श्लेष्मास्राव के लक्षण

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेद्धि
श्लेष्मास्त्रावो नीरुजः संप्रदिष्टः।। ७३।।

जिस पके हुए नेत्र से उजली, गाढ़ी और चिकनी पीब बहे और पीड़ा न हो, उसे श्लेष्मास्राव कहते हैं।। ७३।।

रक्तास्राव के लक्षण

रक्तास्रावः शोणितोत्थो विकार-
स्स्रवेदुष्णन्तत्र रक्तम्प्रभूतम्।

जो विकार रुधिर से होता है, उसे रक्तास्राव कहते हैं। उसमें उष्ण रक्त बहुत-सा बहता है।।

पित्तास्राव के लक्षण

हारिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा
पित्तास्रावः संस्रवेत्सन्धिमध्यात्।। ७४।।

जो पित्तज विकार सन्धि में होता है, उसमें से हरिद्रा के रङ्ग का पीला और उष्ण जल निकलता है, उसे पित्तास्राव कहते हैं।। ७४।।

पर्वणी और अलजी

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना
ज्ञेया वैद्यैः पर्वणी वृत्तशोथा।
जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्या-
त्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः।। ७५।।

नेत्र की काली और उजली सन्धि पर जो लाल-लाल छोटी-सी दाह युक्त पकी हुई गोल सूजन होती है, उसे पर्वणी कहते हैं। उसी सन्धि पर जो वात, पित्त, कफ और रक्त के चिह्नों से युक्त छोटी-सी फुन्सी होती है, उसे अलजी कहते हैं।। ७५।।

कृमिग्रन्थि के लक्षण

कृमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च
कण्डूं कुर्युः कृमयः सन्धिजाताः।
नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसन्धौ
चरन्त्यन्तर्नयनं दूषयन्तः।। ७६।।

बरौनी और पलकों की सन्धि में, छोटे-छोटे कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं, वे उस स्थान में खुजलाहट उत्पन्न करते हैं, और नाना प्रकार के रूपों से नेत्र के बीच को दूषित करते हुए चलते रहते हैं। इस रोग को कृमिग्रन्थि कहते हैं।। ७६।।

वर्त्म (पलक) निदानम्

उत्सङ्गपिडिका के लक्षण

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मनश्च या।
सोत्सङ्गोत्सङ्गपिडिका सर्वजा स्थूलकण्डुरा।। ७७।।

जो बरौनियों के बाहर तथा भीतर मुख किए हुए लाल रङ्ग की ऊँची फुन्सी हो, उसको उत्सङ्गपिडिका कहते हैं। यह वातादि सब दोषों से उत्पन्न होती है। इसमें बड़ी खुजलाहट होती है।। ७७।।

कुम्भीका के लक्षण

वर्त्मान्ते पिडिका ध्माता भिद्यन्तेऽधः स्रवन्ति च।
कुम्भीकाबीजसदृशाः कुम्भीकाः सन्निपातजाः।। ७८।।

जो फुड़िया बरौनी के किनारे पर हो, फूलकर पकती, फूटती और बहने लगती हो, वे कुम्भी के बीज के तुल्य चपटी होने के कारण कुम्भीका कहलाती हैं। ये सन्निपात से उत्पन्न होती हैं।। ७८।।

पोथकी के लक्षण

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः।
पिडिकाश्च रुजावत्यः पोथक्य इति ताः स्मृताः।। ७९।।

जो फुड़िया लाल सरसों के तुल्य, पीड़ायुक्त, खुजली सहित बरौनियों की जड़ में होती हैं, जिनमें से कुछ जल-सा बहा करता है, उन्हें पोथकी कहते हैं।। ७९।।

वर्त्मशर्करा के लक्षण

पिडिका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंवृता।
वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः।। ८०।।

नेत्र की पलकों के ऊपर मोटी और अन्य-अन्य छोटी-छोटी फुन्सियों से घिरी हुई और खरखरी जो फुन्सी होती है, इस रोग को वर्त्मशर्करा कहते हैं। यह पलकों को दूषित कर देती हैं।। ८०।।

अर्शोवर्त्म के लक्षण

एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडिका मन्दवेदनाः।
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते।। ८१।।

जिसमें पलक पर ककड़ी के बीज के तुल्य थोड़ी पीड़ा वाली, चिकनी और खरखरी फुन्सियाँ उभर आती हैं, वह रोग अर्शोवर्त्म कहलाता है।। ८१।।

शुष्कार्श के लक्षण

दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः।
व्याधिरेषोऽतिविख्यातः शुष्कार्श इति संज्ञितः।। ८२।।

जो पलक पर लम्बा अँखुआ सा, खरखरा, कड़ा, दारुण और भीतर से उत्पन्न होता है, इस रोग को शुष्कार्श कहते हैं।। ८२।।

अञ्जननामिका के लक्षण

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका या तु वर्त्मजा।
मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्म ज्ञेया साऽञ्जननामिका।। ८३।।

पलक के ऊपर, दाह, कोंचने की-सी पीड़ा से युक्त, कोमल, थोड़ी पीड़ा वाली और सूक्ष्म जो लाल फुड़िया होती है, उसे अञ्जननामिका कहते हैं।। ८३।।

बहलवर्त्मा के लक्षण

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समन्ततः।
सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद् बहुलवर्त्म च।। ८४।।

जिसमें पलक सब ओर से पलक के ही रङ्ग वाली फुन्सियों से घिर जाएँ, उस रोग को बहुलवर्त्म कहते हैं।। ८४।।

वर्त्मबन्धक के लक्षण

कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः।
न संप्रच्छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्धकः।। ८५।।

जिसमें मनुष्य खुजलीयुक्त, थोड़ी-सी कोंचने की पीड़ा से युक्त सूजन से, नेत्र को बराबर न मूँद सके, उस रोग को वर्त्मबन्धक कहते हैं।। ८५।।

क्लिष्टवर्त्मा के लक्षण

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च।
अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः।। ८६।।

जिसमें पलक कोमल थोड़ी पीड़ा से युक्त, लाल वर्त्म के समान हो और अकस्मात् बहुत लाल हो जाए, उस रोग को क्लिष्टवर्त्मा कहते हैं।। ८६।।

वर्त्मकर्दम के लक्षण

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा।
ततः क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः।। ८७।।

क्लिष्टवर्त्म रोग जब पित्त से युक्त होकर ललाई को जला देता है, तब कुछ गीला-सा हो जाने के कारण उसका नाम वर्त्मकर्दम हो जाता है।। ८७।।

श्याववर्त्म के लक्षण

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम्।
तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः।। ८८।।

जो पलक भीतर बाहर सूजकर श्याम और पीड़ासहित हो, पलक रोगों के मर्मज्ञ लोग उसे श्याववर्त्मरोग कहते हैं।। ८८।।

प्रक्लिन्नवर्त्म के लक्षण

अरुजम्बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि।
प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात् क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः।। ८९।।

जिसमें पुरुष की पलक ऊपर सूजी हो परन्तु पीड़ा न हो, भीतर कीचड़ आदि से अत्यन्त गीली रहती हो, उस रोग को प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं।। ८९।।

अक्लिन्नवर्त्म के लक्षण

यस्य धौतान्यधौतानि संनह्यन्ते पुनः पुनः।
वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत्।। ९०।।

जिसमें पलक बरौनियाँ बार-बार धोई जाएँ पर बार-बार बिना धोई हो जाएँ, तुरन्त लासा कीचड़ लपट जाया करे, और अन्य सब बरौनियाँ अति परिपक्व हो गई हों, उस रोग को अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं।। ९०।।

वातहतवर्त्म के लक्षण

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते।
एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः।। ९१।।

जिसमें नेत्र की सन्धि कुछ हट जाए और खुल-मूँद न सके, नेत्र की चिन्ता करने वाले वैद्य इस रोग को वातहतवर्त्म कहते हैं।। ८१।।

वर्त्मार्बुद के लक्षण

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम्।
आचक्षीतार्बुदमिति सरक्तमविलम्बितम्।। ९२।।

जिसमें पलक के भीतर टेढ़ी, पीड़ारहित, लाल गाँठ हो और शीघ्र बढ़ती हो, उस रोग को अर्बुद कहते हैं।। ९२।।

निमेष के लक्षण

निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः।
चालयत्यतिवर्त्मानि निमेषमिति तं विदुः।। ९३।।

जिसमें पलक में ठहरा हुआ वायु पलक मारने वाली नस में प्रवेश करके यदि बार-बार पलक को खोले और मूँदे, तो उसको निमेष रोग कहते हैं।। ९३।।

शोणितार्श के लक्षण

यः स्थितो वर्त्ममध्ये तु लोहितो मृदुरङ्कुरः।
तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं छिन्नं प्रवर्धते।। ९४।।

जिसमें रक्त के विकार से नेत्र के पलक के भीतर लाल-लाल कोमल अङ्कुर निकले, और काटने पर फिर-फिर बढ़ा करे, उसे शोणितार्श रोग कहते हैं।। ९४।।

लगण के लक्षण

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः।
सकण्डुः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणस्तु सः।। ९५।।

जिसमें पलक में उत्पन्न कड़ी, मोटी, पीड़ासहित, गाँठ पड़ती है, पकती नहीं, चिकनी और बेर भर की होती है। उसमें खुजलाहट उठती रहती है, इस रोग को लगण कहते हैं।। ९५।।

बिसवर्त्म के लक्षण

त्रयो दोषा बहिःशोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः।
प्रस्त्रवन्त्यन्तरुदकं बिसवद् बिसवर्त्म तत्।। ९६।।

वात, पित्त और कफ, ये तीनों पलकों के ऊपर सूजन कर उसमें छोटे-छोटे छेद कर दें, जिनमें से कमल की जड़ में उत्पन्न पतले-पतले सूत-सी पतली धार से पानी बहुत बहे, तो उस रोग को बिसवर्त्म कहते हैं।। ९६।।

कुञ्चन के लक्षण

वाताद्या वर्त्मसङ्कोचं जनयन्ति यदा मलाः।
तदा द्रष्टुन्न शक्नोति कुञ्चनन्नाम तद्विदुः।। ९७।।

जिसमें वातादिक दोष पलक को सिकोड़ लेते हैं, तो रोगी फिर देख नहीं सकता, इस रोग को कुञ्चन कहते हैं।। ९७।।

पक्ष्मकोप के लक्षण

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि।
घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भञ्जनयन्त्यपि।। ९८।।
असिते च सिते. भागे मूलकोशात्पतन्ति हि।
पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः।। ९९।।

वात से चलाई हुई बरौनियाँ जब नेत्र के भीतर घुस जाती हैं और नेत्र में बार-बार घिसती हैं, उससे सूजन उत्पन्न होती है। वे सूजन चाहे नेत्र के काले भाग में हो अथवा उजले भाग में हो, बरौनियों की जड़ में घूमकर घुसती चली जाती हैं। यह परम दारुण पक्ष्मकोपरोग है।। ९८-९९।।

पक्ष्मशात के लक्षण

वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत्।
कण्डूं दाहञ्च कुरुते पक्ष्मशातन्तमादिशेत्।। १००।।

इति नेत्ररोगनिदानं त्रिषष्टितमोऽध्यायः।। ६३।।

पलक और बरौनियों के आशय में जाकर दुष्ट पित्त बरौनियों को सूक्ष्म कर गिरा देता है तथा खुजली और दाह करता है। इस रोग को पक्ष्मशात कहते हैं। १००।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे नेत्ररोगनिदानं त्रिषष्टितमोऽध्यायः।। ६३।।

अथ शिरोरोगनिदानम्

शिरोरोग की संख्या

शिरोरोगाश्च जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः।
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा।
सूर्यावर्तानन्तवातार्धावभेदकशङ्खकैः ।। १।।

दोहा— चौंसठवीं अध्याय महँ, मस्तकरोग निदान।
देखहिं सज्जन लाय चित, कह्यो शास्त्र परमान।। १।।

शिर के रोग ग्यारह प्रकार के होते हैं। वात, पित्त, कफ, सन्निपात, रक्त, क्षय, कृमि, सूर्यावर्त, अनन्तवात, अर्धावभेदक और शङ्खक।। १।।

वातज शिरोरोग के लक्षण

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च
भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम्।
बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र
शिरोऽभितापः स समीरणेन।। २।।

जिसमें पुरुष के शिर में बिना कारण तीव्र पीड़ाएं होती हैं। वे रात्रि में अधिक होती हैं। वे बाँधने से अथवा सेंकने से अच्छी हो जाती हैं। उसे वातिक शिरोरोग कहते हैं।। २।।

पैत्तिक शिरोरोग के लक्षण

यस्योष्णमङ्गारनिभन्तथैव
भवेच्छिरो दाह्यति चाक्षिनासम्।
शीतेन रात्रौ च भवेच्छ्रमश्च
शिरोऽभितापस्स तु पित्तकोपात्।। ३।।

जिसमें पुरुष का शिर अङ्गारों के समान उष्ण हो जाए, नेत्र और नासिका जलने लगे, शीत चन्दनादि लगाने से, अथवा रात्रि में शान्त हो जाया करे, उस शिरोऽभिताप को पित्तज जाने।। ३।।

श्लैष्मिका शिरोरोग के लक्षण

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं
गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमञ्च ।
शूनाक्षिकूटं वदनञ्च यस्य
शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात्।। ४।।

जिसमें पुरुष का शिर कफ से युक्त भारी, बँधा हुआ और ठंडा जान पड़ता है। नेत्र और मुख पर भभरी छा जाती है। इस शिरोरोग को कफज जाने।। ४।।

सन्निपातज शिरोरोग के लक्षण

शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते
सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति।। ५।।

सन्निपात से शिर की पीड़ा में वात, पित्त और कफ तीनों के सब लक्षण होते हैं।। ५।।

रक्तज शिरोरोग के लक्षण

रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः
स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च।। ६।।

रक्तज शिर पीड़ा में सब पित्त के कोप वाली पीड़ा के लक्षण होते हैं। अधिक यह होता है कि शिर किसी वस्तु से छुआया नहीं जा सकता है।। ६।।

क्षयज शिरोरोग के लक्षण

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां
शिरोगतानामिह संक्षयेण।
क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः
कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम्।। ७।।
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यै-
रसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति।

शिर में रहने वाले रक्त, वसा, कफ और पवन के नाश हो जाने से शिर में अत्यन्त पीड़ा होती है। इसमें छींक बहुत आती हैं, और शिर जलता है। ऐसा कष्ट और ऐसी पीड़ा होती है कि रहा नहीं जाता। इसे क्षयज शिरोरोग कहते हैं। इसमें पसीना निकालने से, वमन कराने से, धुआँ की नास देने से और रुधिर निकालने से अधिक पीड़ा होती है।। ७।।

कृमिज शिरोरोग के लक्षण

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं
सम्भक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः।
घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं
शिरोऽभितापः कृमिभिः स घोरः।। ८।।

जिसमें पुरुष के शिर में सूई आदि के कोंचने की-सी अत्यन्त पीड़ा हो तथा ऐसा जान पड़े कि शिर का भीतरी भाग कोई खाए लेता है, इससे फूट जाना चाहता है और नासिका से पीब सहित रक्त बहा करे, इस शिरोरोग को कृमियों के योग से जाने।। ८।।

सूर्यावर्त के लक्षण

सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्द-
मक्षिभ्रुवं रुक्समुपैति गाढा।
विवर्धते चांशुमता सहैव
सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च।। ९।।
शीतेन शान्तिं लभते कदाचि-
दुष्णेन जन्तुस्सुखमाप्नुयाद्वा।
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं
सूर्यापवर्तं तमुदाहरन्ति।। १०।।

सूर्योदय होते-होते नेत्र और भौंहों में पहले धीरे-धीरे पीड़ा होने लगती है। फिर जैसे-जैसे सूर्य ऊपर चढ़ते आते हैं वैसे-वैसे पीड़ा बढ़ती जाती है। दोपहर के पीछे जैसे-जैसे सूर्य नीचे जाते हैं वैसे-वैसे पीड़ा उनके साथ ही साथ निवृत्त

होती जाती है। कभी शीत वस्तु के लगाने से प्राणी शान्ति पाता है और कभी उष्ण वस्तु के लगाने पर भी। यह विकार सन्निपात के कारण से होता है। इसको सूर्यापवृत्त कहते हैं।। ९-१०।।

अनन्तवात के लक्षण

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां
संपीड्य गाढं सरुजां सतीव्राम्।
कुर्वन्ति योऽक्षिभ्रुवि शङ्खदेशे
गतिं करोत्याशु विशेषतश्च।। ११।।
गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं
हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान्।
अनन्तवातन्तमुदाहरन्ति
दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम्।। १२।।

वात, पित्त और कफ दुष्ट होकर गर्दन में अति तीव्र गाढ़ी पीड़ा करते हैं और नेत्र, भौंह, कनपटियों में विशेष पीड़ा करते हैं। कान के पास फरफराहट करते हैं। चौहड़ी को जकड़ देते हैं। नेत्र में अनेक रोग उत्पन्न करते हैं। इस सन्निपातज शिर-विकार को अनन्तवात कहते हैं।। ११-१२।।

अर्धावभेदक के लक्षण

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यमैथुनैः ।
वेगसंधारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः।। १३।।
केवलः सकफो वार्धं गृहीत्वा शिरसो बली।
मन्याभ्रूशङ्खकर्णाक्षिललाटेऽर्धेऽतिवेदनाम्।। १४।।
शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः।
नयनं वाथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत्।। १५।।

रूखे अन्नों को अधिक खाने से, भोजन करके फिर तुरन्त ही भोजन करने से, पुरवाई बहने से, अत्यन्त मैथुन करने से, मल-मूत्र-वमनादि के वेगों को रोकने से, परिश्रम करने से और अधिक दंड-मुद्गरादि करने और घुमाने से, कुपित वायु

केवल आप ही अथवा कफयुक्त होने से बली होकर आधे शिर को ग्रहण कर गर्दन, भौंह, कनपटी, कान, नेत्र और ललाट के आधे में तीव्र वेदना करता है। यह पीड़ा सामान्य पीड़ा नहीं होती, किन्तु मानों कोई कुल्हाड़ी आदि से चीरे डालता है ऐसी पीड़ा होती है। इस रोग को अर्धावभेदक कहते हैं। बहुत अधिक बढ़ जाने से यह रोग जिस ओर पीड़ा करता है, उधर के नेत्र को, अथवा कान को फोड़ डालता है।। १३-१५।।

शंखकरोग के लक्षण

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे विमूर्च्छिताः।
तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम्।। १६।।
स शिरो विषवद्वेगी निरुद्ध्याशु गलन्तथा।
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शङ्खको नामतः परम्।। १७।।
त्र्यहाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत्।। १८।।

इति शिरोरोगनिदानं चतुष्षष्टितमोऽध्यायः।

पित्त, रक्त और वायु दुष्ट होकर कनपटियों में जाकर वहां तीव्र पीड़ा, दाह, ललाई और दारुण सूजन करते हैं यह रोग विष के समान वेग से झट शिर को और गले को रूँध लेता है। तीन रात्रि में प्राण हर लेता है। इस रोग को शङ्खक कहते हैं। इस रोग में रोगी तीन दिन तक जीता है। इस लिए वैद्य को चाहिए कि जवाब देकर औषधि करे।। १६-१८।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे शिरोरोगनिदानश्चतुष्षष्टितमोऽध्यायः।। ६४।।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः

प्रदररोगनिदानम्

प्रदररोग की संप्राप्ति

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णा-
द्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च।

यानाच्च शोकादतिकर्शनाच्च
भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च।। १।।
तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातै-
श्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति।

दोहा— पैंसठवीं अध्याय महँ, प्रदर रोग कहि दीन्ह।
नारिन का यह रोग है, करे औषधी चीन्ह।। १।।

विरुद्ध भोजन करने से, मदिरा पीने से, अजीर्ण में फिर भोजन करने से, गर्भपात होने से, अतिमैथुन करने से, अधिक चलने से, अतिशोक से, अति दुबलाने से, भारी बोझा उठाने से और दिन में सोने से, प्रदररोग उत्पन्न होता है। वह वात, पित्त, कफ और सन्निपातों के योग से, चार प्रकार का होता है।। १।।

प्रदर के लक्षण

असृग्दरम्भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम्।। २।।

सब प्रकार के प्रदरों में योनि से रुधिर बहता है, पीड़ा सहित शरीर ऐंठता है और हाथ पैरों में कुछ सूजन आ जाती है।। २।।

अतिवृद्ध प्रदर के उपद्रव

तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः।। ३।।

प्रदररोग के अत्यन्त बढ़ जाने पर शरीर में दुर्बलता, श्रम, मूर्च्छा, मद, पिपासा, दाह, अनर्थ बकना, पीला हो जाना, तवांना और सब वातज रोग होते हैं।। ३।।

कफज प्रदर के लक्षण

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु
पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु।

कफज प्रदररोग में आँव के तुल्य चिकना, उजला, माँड़, और पसावन के रङ्ग का विकार गिरता है।

पैत्तिक प्रदर के लक्षण

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं
पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात्।

पित्तज प्रमेह में पीला, नीला, काला, लाल, पित्त के रङ्ग का, उष्ण, पीड़ासहित, और पित्त के विकारों से युक्त अधिक बहता है।

वातज प्रदर के लक्षण

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं
वातार्ति वातात्पिशितोदकाभम्।। ४।।

वातज प्रदर में रूखा, लाल, फेन युक्त थोड़ा-थोड़ा मांस के धोवन के रङ्ग का वातज विकारों सहित, प्रदर बहता है।। ४।।

सन्निपातज प्रदर के लक्षण

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं
मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम्।
तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा
न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम्।। ५।।

मधु, घृत और हरिताल और मज्जा के रङ्ग का, दुर्गन्धयुक्त विकार बहता है। इस रोग को उस विद्या के जानने वाले असाध्य कहते हैं। इससे वैद्य इस रोग की चिकित्सा न करे।। ५।।

शुद्धार्तव के लक्षण

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च।
नैवातिबहुलन्नाल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत्।। ६।।
शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्।
तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरज्यते।। ७।।

इति प्रदररोगनिदानम्पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।

जो महीने भर के पीछे चिकनाई, दाह और पीड़ा से रहित रुधिर गिरे। वह रूखा हो, बहुत नरम न हो, न उसमें कुछ पीड़ा हो। ऐसा रुधिर जो निकलता है; वह शुद्धार्तव कहलाता है। जो रुधिर खरगोश के रक्त के रङ्ग का हो, अथवा जो महावर के रङ्ग का हो और उसका रङ्ग जल से धोने से छूट जाए, दाग न रहे। ऐसे रुधिर को शुद्ध कहते हैं।। ६-७।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे प्रदरनिदानम्पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।। ६५।।

अथ योनिरोगनिदानम्

योनिरोग की संख्या और संप्राप्ति

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च।। १।।
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाद्वा शृणु ताः पृथक्।

दोहा— छासठवीं अध्याय महँ, योनिज रोग निदान।
आचारज भाषे सकल, देखहिं लोग महान्।। १।।

रोगों के संग्रह में योनि के बीस रोग कहे हैं। वे स्त्रियों के मिथ्या आहार-विहार करने से, आर्तवधर्म के दुष्ट होने से, बीज के दोष से, और भाग्य से भी होते हैं। उनको अलग-अलग सुनो।। १।।

वातज योनिरोग के लक्षण और नाम

सा फेनिलमुदावर्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति।। २।।
वन्ध्यां दुष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम्।
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम्।। ३।।
वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता।
चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः।। ४।।

जो योनि फेनसहित रुधिर कष्ट से छोड़ती है, वह उदावर्ता योनि कहलाती है। जिस योनि में नित्य पीड़ा हुआ करे, और मास-मास पर मासिकधर्म न हुआ

करे, उस दुष्ट ऋतुधर्म वाली योनि को वन्ध्या जाने। जिस योनि में सदा पीड़ा हुआ करती है, उसे विप्लुता कहते हैं। जिसमें मैथुन के समय बड़ी पीड़ा होती है, उसे परिप्लुता कहते हैं। जो योनि कर्कश, कड़ी, शूल और कोंचने की-सी पीड़ा से पीड़ित हो, उसे वातला कहते हैं। उदावर्ता, वन्ध्या, विप्लुता और परिप्लुता, इन चारों योनियों में वातज पीड़ा सदा होती है।। २-४।।

पित्तज योनिरोग के लक्षण और नाम

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्यां सा लोहितक्षया।
सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसान्वितम्।। ५।।
प्रस्रंसिनी स्रंसते तु क्षोभिता दुष्प्रजायिनी।
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात्।। ६।।
अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता।
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत्।। ७।।

जिस योनि से जलता हुआ रुधिर सदा बहता रहता है, उसे लोहितक्षया कहते हैं। जिस योनि से रजयुक्त बीज वातसहित निकलता है, उसे वामिनी कहते हैं। जिस योनि से गर्भस्थान बाहर निकल आए, उसे प्रस्रंसिनी कहते हैं। उसके सङ्ग पुरुष का प्रसङ्ग होने पर भी पुत्रादि नहीं होता। जिस योनि से रक्त सदा बहता रहता है, इससे गर्भ नहीं ठहरता, उस योनि को पुत्रघ्नी कहते हैं। जिस योनि में अत्यन्त दाह, पकना और ज्वर बने रहते हैं, उसे पित्तला कहते हैं। इनमें से प्रथम की चार योनियों में अर्थात् लोहितक्षया, वामिनी, प्रस्रंसिनी और पुत्रघ्नी में पित्त के लक्षणों की वृद्धि होती है।। ५-७।।

कफज योनिरोग के लक्षण और नाम

अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति।
कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते।। ८।।
मैथुनेऽचरणा पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते।
बहुशश्चातिचरणा तयोर्बीजं न विन्दति।। ९।।
श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्तातिशीतला।
चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत।। १०।।

जो योनि बड़े वेग से मैथुन करने पर भी सन्तुष्ट नहीं होती, उसे अत्यानन्दा कहते हैं। जिस योनि में कफ और रक्त से, कमल के फूल के भीतर के झुमके समान मांस का एक झुमका बन जाता है, उस योनि को कर्णिनी कहते हैं। मैथुन करने पर जो योनि पुरुष से पहले ही बीज को चुआ दे, उसे अचरणा कहते हैं। जिस योनि में मैथुन के पीछे स्त्री-पुरुष दोनों का बीज न ठहर सके, सब का सब गिर पड़े, उस योनि को अतिचरणा कहते हैं। जो योनि बहुत चिकनी होती है और खुजलाती बहुत है तथा सदा अति ठंडी बनी रहती है, उस योनि को श्लेष्मला कहते हैं। इसमें बहुत चिकने होने के कारण बीज नहीं ठहरता, इससे गर्भाधान नहीं हो सकता। इसमें प्रथम की चारों योनियों में अर्थात् अत्यानन्दा, कर्णिनी, चरणा और अतिचरणा में श्लेष्मा के चिह्नों की अधिकता रहती है।। ८-१०।।

सन्निपातज योनिरोग के लक्षण

अनार्तवास्तनी षण्डी खरस्पर्शा च मैथुने।
अतिकायगृहीतायास्तरुण्या अण्डिनी भवेत्।। ११
विवृतातिमहायोनिः सूचीवक्त्रातिसंवृता।
सर्वलिङ्गस्य संस्थाना सर्वदोषप्रकोपजा।। १२।।
चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिङ्गनिदर्शनम्।
पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः।। १३।।

इति योनिरोगनिदानं षट्षष्टितमोऽध्यायः।। ६६।।

जिस स्त्री के मासिक धर्म नहीं होता, जिसके स्तन नहीं होते और मैथुन करने में अति सूक्ष्मछिद्र के कारण लिङ्ग प्रवेश में महाकठिनता होती है, उसको षण्ढी (हिजड़ी) कहते हैं। जिस स्त्री को बड़े मोटे लिङ्ग वाले पुरुष के साथ सम्भोग करने से योनि से अण्डा-सा निकल आता है, उसकी योनि को अण्डिनी कहते हैं। जो योनि बहुत फैली हो, उसे महायोनि कहते हैं। जो योनि बहुत संकीर्ण मुख की हो, उसे सूचीवक्त्रा कहते हैं। जिस योनि में सब वातादिदोषों के चिह्न हों, वह योनि सन्निपातिनी है। षण्डिनी, अण्डिनी, महायोनि ओर सूचीवक्त्रा में सब दोषों के चिह्न होते हैं, इससे ये चार और पीछे वाली सन्निपातिनी, ये पाँचों योनियाँ सन्निपातज होती हैं। इससे असाध्य हैं।। ११-१३।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे योनिरोगनिदानं षट्षष्टितमोऽध्यायः।। ६६।।

अथ योनिकन्दरोगनिदानम्

योनिकन्द की संप्राप्ति और रूप

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात् ।
क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता मलाः।। १।।
पूयशोणितसङ्काशं लकुचाकृतिसन्निभम्।
जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दस्तु योनिजः।। २।

दोहा— सरसठवीं अध्याय महँ, योनिकन्द को भेद।
भाख्यो सज्जन दृष्टि दै, उनका करैं प्रभेद।। १।।

दिन में बहुत सोने से, अति क्रोध करने से, बहुत परिश्रम करने से, अति मैथुन से, तथा नख-दाँत आदि के घाव लग जाने से, वात-कफ-पित्त कोप करके पीब और रुधिर के रङ्ग का, तथा बड़हल के फल के ऐसा मांस का लुथड़ा योनि के बाहर लटका देते हैं। इसे योनिकन्द कहते हैं।। १-२।।

वातादिभेद से योनिकन्द के लक्षण

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकन्तं विनिर्दिशेत्।
दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्तात्मकं तु तम्।। ३।।
नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम्।
सर्वलिङ्गसमायुक्तं सन्निपातात्मकं वदेत्।। ४।।

इति योनिकन्दरोगनिदानं सप्तषष्टितमोऽध्यायः।। ६७।।

जो योनिकन्द रूखा, मांस से भिन्न, अन्य किसी रङ्ग का, फूटा-फटा हो, उसे वातिक योनिकन्द कहते हैं। जो योनिकन्द दाह, ललाई और ज्वर से युक्त हो, उसे पित्तात्मक योनिकन्द जाने। जो योनिकन्द नील के पुष्प के रङ्ग का हो और खजुआता हो, उसे कफज योनिकन्द कहते हैं। जिसमें वातादिक सभी के लक्षण होते हैं, उसे सन्निपातात्मक योनिकन्द कहते हैं।। ३-४।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे योनिकन्दनिदानं सप्तषष्टितमोऽध्यायः।। ६७।।

अथ गर्भरोगनिदानम्

गर्भपात की संप्राप्ति और पूर्वरूप

भयाभिघातात्तीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात्।
गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शन भवेत्।। १।।

दोहा— अरसठवीं अध्याय महँ, मूढ़गर्भ को तत्त्व।
लखहिं वैद्य पावहिं बहुरि, यहि गदमें बहु सत्त्व।। १।।

भय से, किसी लाठी आदि की चोट लग जाने से, अति तीक्ष्ण और बहुत उष्ण अन्न-जल के खाने तथा पीने से, गर्भ गिर पड़ता है। तब पीड़ासहित रुधिर गिरने लगता है।। १।।

स्राव और गर्भपात की अवधि

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः।
ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः।। २।।

चार मास के बीच में जब गर्भ गिरता है, तो रुधिर ही के तुल्य कोमल गाढ़ा सा कुछ आकारयुक्त गिरता है। वह स्राव कहलाता है। उसके पीछे पाँचवें, छठे मास में जब स्थिरशरीर हो जाता है, तो शरीरवान् गर्भपात होता है।। २।।

गर्भपात में दृष्टान्त

गर्भोऽभिघातविषमासनपीडनाद्यैः
पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन।

किसी प्रकार की चोट लगने से, नीचे-ऊँचे विषम आसन पर चढ़ने उतरने से और जोर से मलने से क्षण मात्र में गर्भ वृक्ष से जैसे पका फल गिर पड़ता है, वैसे ही गिर पड़ता है।

मूढ़गर्भ की संप्राप्ति और लक्षण

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं
शूलञ्च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम्।। ३।।

भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः
सङ्ख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम्।

जो गर्भ हिलता बोलता नहीं, उसे मूढ़गर्भ कहते हैं। मूढ़ पवन उस गर्भ को मूढ़ (टेढ़ा) करता है। कहीं चलने नहीं देता। वह पेट, कमर आदि में पीड़ा भी करता है। मूत्र को भी कुछ रोकता है। विगुण वायु से आड़ा हुआ गर्भ, दशमास बिताकर, नीचे को मुख करके, बहुत प्रकारों से, योनि के मुख पर आता है।। ३।।

मूढ़गर्भ के आठ भेद

द्वारं निरुद्ध्य शिरसा जठरेण कश्चि-
त्कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः ।। ४।।
एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन
तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः।
पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चि-
दित्यष्टधा गतिरियं हि परा चतुर्द्धा।। ५।।

कोई मूढ़गर्भ तो शिर से योनि के द्वार को रूँध लेता है, तब बड़ी कठिनता से बाहर आता है। कोई पेट से रुककर अपने शरीर को दुहराकर कुबड़ा हो जाता है। उसी कूबड़ से योनि के द्वार को रोक देता है। कोई एक हाथ से, कोई दोनों हाथों से, कोई आप तिरछा हो जाता है, कोई नीचे को मुख कर लेता है, कोई पसलियों को घुमाकर करवट लिए योनि द्वार को रोकता है। यह आठ प्रकार की गति हुई। इनसे भिन्न चार प्रकार की गति और है।। ४-५।।

मूढ़गर्भ के चार प्रकार

सङ्कीलकः प्रतिखुरःपरिघोऽथ बीज-
स्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम्।
सङ्गी च यो भवति कीलकवत्स कीलो
दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरं स हि कायसङ्गी।। ६।।
गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो
योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः।। ७।।

मूढ़गर्भ और चार प्रकार का होता है। पहला सङ्कीलक, दूसरा प्रतिखुर, तीसरा परिघ और चौथा बीज। उनमें जो हाथ-पैर ऊपर को उठाए, उन्हीं के बीच में शिर किए योनि के द्वार को काल समान बन्द कर ले, वह सङ्कीलक कहलाता है। जो प्रथम अपने पैर कुछ बाहर दिखा दे, आप भीतर ही अड़ जाए, वह प्रतिखुर कहलाता है। जो दोनों हाथ और शिर साथ ही पहले दिखाए, वह बीजक कहलाता है। जो गर्भ परिघ (रंभा) के तुल्य आकर बैठा-बैठा योनि में अड़ जाए, वह परिघ कहलाता है।। ६-७।।

असाध्य मूढ़गर्भ और गर्भिणी के लक्षण

अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा।
नीलोद्गतसिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा।। ८।।

जिस गर्भिणी के लड़के का मुख नीचे को हो गया हो, उसके अङ्ग ठंडे हो गए हों, मारे पीड़ा के उसकी लज्जा जाती रही हो, देह को सम्भाल न सके, उसके शरीर की नसें नीली होकर फूल गई हों और लड़का कोख में अड़ा हो, तो वह स्त्री अपने गर्भ को मार डालती हैं और वह गर्भ उसे मार डालता है। दोनों मर जाते हैं।। ८।।

मृतगर्भा के लक्षण

गर्भास्पन्दनमार्तीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूनतान्तर्मृते शिशौ।। ९।।

जब गर्भ का हिलना, चलना बन्द हो जाए, प्रसवकाल की पीड़ा भी बन्द हो जाए, गर्भिणी गोरी हो तो भी सांवली अथवा पीली हो जाए, उसके श्वासों में दुर्गन्ध आने लगे और पेट फूलता चला जाता हो, तो जानना चाहिए कि बालक भीतर ही मर गया है।। ९।।

गर्भ मरने का कारण

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः।। १०।।

गर्भिणी स्त्री के मानस दुःखों से, अथवा आने वाले दुःखों से, अत्यन्त पीड़ित अथवा रोगों से पीड़ित गर्भ हो जाता है, तो भीतर ही मर जाता है।। १०।।

असाध्य गर्भिणी के लक्षण

योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल्ल एव च।
हन्युः स्त्रियं मूढगर्भों यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः।। ११।।

इति गर्भरोगनिदानमष्टषष्टितमोऽध्यायः।। ६८।।

वायु के योग से, योनि संकीर्ण हो जाने से, कड़ी हो जाने से, कोख में शूल होने से, ऊपर के उपद्रवों के होने से, अथवा मूढ़गर्भ होने से स्त्री मृतक हो जाती है। ये सब मारक हैं।। ११।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे गर्भिणीरोगादि-
निदानमष्टषष्टितमोऽध्यायः।। ६८।।

अथ सूतिकारोगनिदानम्

सूतिकारोग के लक्षण

अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता।
शोफः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम्।। १।।

दोहा— उनहत्तर अध्याय महँ, कह्यो प्रसूता रोग।
वाको सज्जन गन निरखि, करिहैं बहु सुयोग।। १।।

अङ्ग टूटना, ज्वर आना, कम्प होना, पिपासा लगना, अङ्गों का भारीपन, शोथ आ जाना, शूल उठना और दस्त होना, ये सब सूतिका रोगों के लक्षण हैं।। १।।

सूतिकारोग की संप्राप्ति

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात्।
सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणास्तु ते।। २।।

मिथ्या आहार-विहार से, दोष उत्पन्न करने वाले अन्नों के भोजन से, समय-कुसमय विषम भोजन से और अजीर्ण में भोजन करने से सूतिका के जो रोग होते हैं, वे दारुण होते हैं।। २।।

सूतिकारोग के उपद्रव

ज्वरातिसारशोफाश्च शूलानाहबलक्षयाः।
तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः।। ३।।

ज्वर, अतीसार, शोथ, शूल, पेट फूलना, बलक्षय, झपकी आना, अरुचि और मुख में पानी छूटना इत्यादि उपद्रव कफ और वात से होते हैं।। ३।।

साध्यासाध्य विचार

कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्नितः।
ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः।। ४।।

इति सूतिकारोगनिदानमेकोनसप्ततितमोऽध्यायः।। ६९।।

जिस स्त्री के मांस, बल और अग्नि क्षीण हो गए हों, उसके ये रोग कष्टसाध्य हैं। उनमें सूतिका के नाम से जो प्रसिद्ध हैं, वे सूतिका रोग हैं। अन्य ज्वर, अतीसारादिक उनके उपद्रव हैं।। ४।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे सूतिकारोगनिदानमेकोन-
सप्ततितमोऽध्यायः।। ६९।।

अथ स्तनरोगनिदानम्

स्तनरोग की संप्राप्ति और लक्षण

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियाः।
प्रदूष्य मांसरुधिरे स्तनरोगाय कल्पते।। १।।
पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना।
लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः।। २।।

इति स्तनरोगनिदानं सप्ततितमोऽध्यायः।

दोहा— सत्तरवीं अध्याय महँ, सब कुचरोग निदान।
देखहिं सुजन लगाय चित, कैसे दिए प्रमान।। १।।

दूध वाली स्त्री के या बिना दूध वाली स्त्री के स्तनों में प्राप्त होकर वातादि दोष मांस और रुधिर को दूषित करते हैं। वही स्तनरोग हो जाता है। इस रोग को थन्हैलरोग कहते हैं। स्तन रोग पाँच प्रकार के होते हैं। रक्तजविद्रधि रोग को छोड़कर उनमें अन्य विद्रधियों के लक्षण होते हैं।। १-२।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे स्तनरोगनिदानं सप्ततितमोऽध्यायः।। ७०।।

अथ स्तन्य (दुग्ध) रोगनिदानम्

स्तन्यरोग की संप्राप्ति और विकार

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम्।
क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते।। १।।

दोहा— इकहत्तर अध्याय महँ, स्तन्यदुग्ध को ज्ञान।
लखहिं सुजन कवि कहत हैं, पुनि पुनि सहित प्रमान।। १।।

विविध प्रकार के भारी अन्न के दोषों से दूषित होकर दूध पिलाने वाली स्त्री का दूध बालक को अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है।। १।।

वात और पित्त से दुष्ट दुग्ध के लक्षण

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यम्मारुतदूषितम्।
कट्वम्ललवणम्पीतराजीमत्पित्तसंज्ञितम्।। २।।

वात से दूषित दूध कसैला और पनछुटहा हो जाता है। पित्त से दूषित दूध, कड़वा, खट्टा, लुनखार और पीली-पीली लकीरों से युक्त हो जाता है।। २।।

कफ और सन्निपात से दुष्टदुग्ध के लक्षण

कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम्।
द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम्।। ३।।

कफ के दोष से दूषित स्तन का दूध गाढ़ा तथा बहुत चिकना हो जाता है और पानी डालने से डूब जाता है। जिसमें दो दोषों के लक्षण मिलें, उसे द्वन्द्वज जाने। जिसमें तीनों के लक्षण मिलें उसे, त्रिदोषज (सन्निपातज) जाने।। ३।।

शुद्ध दुग्ध के लक्षण

अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम्।
मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नन्तद्विनिर्दिशेत्।। ४।।

इति स्तन्यरोगनिदानमेकसप्ततितमोऽध्यायः।। ७१।।

शुद्ध दूध पानी में डाल देने से उसी में मिल जाता है और उजला होता है। मीठा होता है। जैसा दूध का रङ्ग चाहिए, वैसा ही होता है। ऐसे ही दूध को प्रसन्न (शुद्ध) कहना चाहिए।। ४।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे धात्रीस्तनदुग्धनिदान-
मेकसप्ततितमोऽध्यायः।। ७१।।

अथ बालरोगनिदानम्

तीन प्रकार के बालक

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः।
स्वास्थ्यन्ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः।। १।।

दोहा— बहत्तरइँ अध्याय महँ, बालक रोग निदान।
भाख्यो कारण वैद्य के, जो शिशुपालक मान।। १।।

बालक तीन प्रकार के होते हैं। एक वे जो केवल दुग्ध ही पीते हैं, दूसरे वे जो अन्न ही खाते हैं, और तीसरे वे जो दूध पीते हैं तथा अन्न भी खाते हैं। अदुष्ट दूध और अन्न से बालक अच्छा रहता है। दुष्ट दूध और अन्न से बालक को रोग उत्पन्न होता है।। १।।

वातदूषित दुग्ध पीने वाले के लक्षण

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः।
क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः।। २।।

वात से दुष्ट दूध पीने से बालक वायु के रोगों से आतुर हो जाता है, उसका बोल धीरा हो जाता है, वह दुर्बल हो जाता है, मल, मूत्र और अधोवायु बँध जाते हैं। खुलकर नहीं होते हैं।। २।।

पित्तदूषित दुग्ध पीने वाले के लक्षण

स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान्।
तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टम्पयः पिबन्।। ३।।

पित्त से दूषित दूध के पीने से बालक को पसीना बहुत आने लगता है। उसका मल पतला हो जाता है, उसे कामला और पित्त का रोग होता है। पिपासा अधिक लगती है। सब अङ्ग काले पड़ जाते हैं।। ३।।

कफदूषित दुग्ध पीने वाले के लक्षण

कफदुष्टं पिबन्क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान्।
निद्रार्दितो जडः शूनः शुक्लाक्षश्छर्दनः शिशुः।। ४।।

कफ से दूषित दुग्ध पीने से बालक को लार बहुत बहती है। कफ के सब रोग होते हैं। नींद बहुत आती है। देह जकड़ा-सा हो जाता है। सूजन हो आती है। नेत्र उजले हो जाते हैं। वमन करने लगता है।। ४।।

बालकों की चेष्टा से रोग का ज्ञान

शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम्।
स यं स्पृशेद्भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः।। ५।।
तत्र विद्याद् गुरुं मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात्।
कोष्ठे विबन्धवमथुस्तनदंशान्त्रकूजनैः।। ६।।
आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि ।
बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसंङ्गे त्रासादिवेक्षणैः।। ७।।
स्त्रोतांस्यङ्गानि सन्धींश्च पश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः।

बालक के रोने से अधिक और थोड़ी पीड़ा का ज्ञान करना चाहिए। बालक अपने जिस अङ्ग के ऊपर अपना हाथ बार-बार ले जाता हो अथवा जिस अङ्ग के छूने पर अधिक रोने लगता हो, उसके उसी अङ्ग में पीड़ा जाननी चाहिए। जो बालक नेत्र मूँदे रहता हो तो जानो कि इसका शिर भारी या पीड़ित है। जिसका मल न उतरता हो, जो वमन करता हो, ओकाई आती हो, पीने के समय स्तन में काटता हो और आँतें उसकी गुड़गुड़ाती हों, तो कोठे में पीड़ा जाननी चाहिए।

पेट फूले, पीठ झुक जाए, पेट ऊपर को फुला लेता हो तो, पेट में पीड़ा जाननी चाहिए। जो बालक डरा-सा होकर इधर-उधर देखता हो तो मल-मूत्र के स्थानों में पीड़ा जाननी चाहिए। वैद्य को चाहिए कि लड़के की नसें, अङ्ग और सब जोड़ों को यत्न से बार-बार देखता रहे।। ५-७।।

कुकूणक के लक्षण

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि।। ८।।
जायते तेन नेत्रं च कण्डूरश्च स्त्रवेन्मुहुः।
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम्।। ९।।
शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः।

दूध के ही दोष से बालकों की पलकों में कुकूणक (कुथुरू) रोग होता है। इस. रोग से नेत्र में खुजली उठती है। बार-बार नेत्र से पानी बहता रहता है। बालक ललाट, नेत्र का घेरा और नासिका को मलता अथवा रगड़ता रहता है। न सूर्य का प्रकाश देख सकता है, न पलक खोल सकता है।। ८-९।।

पारिगर्भिक के लक्षण

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यम्प्रायः पिबन्नपि।। १०।।
कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ।
युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम्।। ११।।
रोगं परिभवाख्यञ्च दद्यात्तत्राग्निदीपनम्।

बहुधा गर्भवती माता का दूध पीता हुआ बालक खाँसी, अग्नि की मन्दता, डाकना, झँपान पड़ना, दुर्बलता, अरुचि और भ्रम, इन रोगों से युक्त हो जाता है। पेट भी बड़ा हो जाता है। इस रोग को पारिगर्भिक अथवा परिभव कहते हैं। इस रोग में ऐसी औषध देनी चाहिए, जो अग्नि को प्रज्ज्वलित करे।। १०-११।।

तालुकण्टक के लक्षण

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम्।। १२।।
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते।
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम्।। १३।।
तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्द्धरता वमिः।

कुपित कफ तालु के मांस में तालुकण्टक नामक रोग को करता है। इस रोग से तालु के ऊपर का भाग कुछ खाली हो जाता है (नीचे को झुक आता है)। इसमें जान पड़ता है कि मानो तालु गिरा पड़ता है। माता के स्तनों से प्रीति नहीं रखता और पीता भी है तो बड़े कष्ट से पीता है। मल पतला होता है। पिपासा लगती है। नेत्र, कण्ठ और मुख में पीड़ा होती है। ओकाई आती है। वान्त भी होता है।। १२-१३।।

महापद्म के लक्षण

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः।। १४।।
पद्मवर्णो महापद्मो रोगो दोषत्रयोद्भवः।
शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत्।। १५।।

छोटे बालक के जब बस्तिस्थान और शिर में विसर्प रोग होता है तो प्राणनाशक ही होता है। वह विसर्प कमल के रङ्ग का होता है। इससे महापद्म रोग कहलाता है। यह वातादि तीनों दोषों से उत्पन्न होता है। पहले दोनों कनपटियों में होता है। फिर वहाँ से फैलते-फैलते हृदय तक जाता है अथवा हृदय से फिर गुदा तक चला जाता है।। १४-१५।।

अजगल्ल्यादि रोग

क्षुद्ररोगे च कथिते त्वजगल्ल्यहिपूतने।
ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महान्तो ये पुरेरिताः।। १६।।
बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैस्सदा।

क्षुद्र रोगों में अजगल्ली और अहिपूतना ये दो रोग कहे हैं। ये दोनों, और ज्वरादिक जो पूर्व में बड़े भारी रोग कहे हैं, वे सब बालक के देह में भी वैसे ही होते हैं। कुशल वैद्य इस बात को जान ले।। १६।।

सामान्य ग्रहजुष्टों के लक्षण

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति।। १७।।
नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च।
ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खादेत् कूजति जृम्भते।। १८।।

भ्रुवौ क्षिपति दन्तौष्ठं फेनं वमति चासकृत्।
क्षामोऽति निशि जागर्ति शूनांगो भिन्नविट्स्वरः।। १९।।
मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा।
सामान्यं ग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम्।। २०।।

यदि बालक क्षण में काँपने लगे, क्षण में डरने और रोने लगे, नख और दाँतों से दूध पिलाने वाली को और अपने को भी नोचने और काटने लगे, ऊपर देखता रहे, दाँत कटकटाए, काँखे, जँभाई लेता रहे, भौंहें इधर-उधर करता रहे, दाँत और ओठ फरफराता रहे, बार-बार मुँह से फेन निकालता रहे, दुर्बल हो गया हो, रात्रि में सोता न हो, देह में सूजन आ गई हो, मल पतला आता हो, गला खरखरा हो गया हो, मांस, रक्त की-सी दुर्गन्ध उसके पास आए, पहले के ऐसा खाता न हो— ये सब सामान्य ग्रह से पकड़े हुए बालकों के लक्षण हैं।। १७-२०।।

स्कन्दग्रहजुष्ट के लक्षण

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्वन्दनकम्पनम्।
अर्द्धदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगन्धिकः।। २१।।
दन्तान् खादति विस्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति।
स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनञ्चाल्पमेव च।। २२।।

बालक के एक नेत्र से पानी बहे और एक ही ओर के अङ्ग से पानी चले, फरफराय और काँपे, एक ही ओर के नेत्र से देखे, मुख टेढ़ा हो गया हो, रक्त की-सी गन्ध आती हो, दाँत बार-बार कटकटाता हो, देह ढीली हो गई हो, दूध पीना न चाहता हो और थोड़ा-सा रोता हो, स्कन्दग्रह से पकड़े हुए बालकों के ये लक्षण होते हैं।। २१-२२।।

स्कन्दापस्मार के लक्षण

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति।
पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम्।। २३।।

बालक मूर्च्छित पड़ा रहे, मुँह से फेन बहता जाए, मूर्च्छा जाने पर बहुत रोदन करे, उसके अङ्गों में पीब और रुधिर की दुर्गन्ध आए। यह स्कन्दापस्मार का लक्षण है।। २३।।

शकुनिग्रहजुष्ट के लक्षण

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः
सास्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात्।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकै-
र्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या।। २४।।

यदि बालक के सब अङ्ग ढीले हो जाएँ, भय से चकराया करे, अङ्ग में पक्षियों की-सी गन्ध आए, अङ्गों में सब ओर से घाव हो जाएँ और बहते रहें, फोड़े देह भर में हों, उनमें दाह होता हो, और सब फोड़े पक गए हों। शकुनिग्रह से पीड़ित बालक के ये लक्षण होते हैं।। २४।।

रेवतीग्रहजुष्ट के लक्षण

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक्।
भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम्।। २५।।

जिस बालक के अङ्गों में घाव और फोड़े हो गए हों, देह की गन्ध कीचड़ की-सी हो, घावों से रुधिर बहता हो, मल पतला उतरता हो, ज्वर और दाह बना रहता हो, उसे रेवतीग्रह से जगड़ा जाने।। २५।।

पूतनाग्रहजुष्ट के लक्षण

अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम्।
नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नस्त्रस्तः पूतनया शिशुः।। २६।।

पूतनाग्रहपीड़ित छोटे बालक को अतीसार, ज्वर, तृष्णा, तिरछी नज़र, रोना, नींद न आना, काँपना और डर जाना, ये सब उपद्रव होते हैं।। २६।।

अन्धपूतनाग्रहजुष्ट के लक्षण

छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोतिरोदनम्।
स्तन्यद्वेषोतिसारश्च अन्धपूतनया भवेत्।। २७।।

अन्धपूतना नामक ग्रह से पीड़ित बालक को वमन, खाँसी, ज्वर, तृष्णा, वसा की-सी गन्ध, बहुत रोना, दूध न पीना और अतीसार, ये लक्षण होते हैं।। २७।।

शीतपूतनाग्रहजुष्ट के लक्षण

वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धिता।
छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः।। २८।।

शीतपूतनाग्रह से पीड़ित बालक, काँपता, खाँसता, क्षीण रहता, नेत्ररोगी होता, दुर्गन्ध वाला, वमन और अतीसार वाला, इन उपद्रवों से युक्त होता है।। २८।।

मुखमण्डिकाग्रहजुष्ट के लक्षण

प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरिव संवृतः।
मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डिकया भवेत्।। २९।।

मुखमण्डिका ग्रह से पीड़ित बालक प्रसन्नरङ्ग, प्रसन्नमुख, नसों से घिरा, मूत्र की-सी गन्ध वाला और बहुत भोजन करने वाला होता है।। २९।।

नैगमेयग्रहजुष्ट के लक्षण

छर्दिस्पन्दनकण्ठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिताः।
ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान् नैगमेयग्रहं वदेत्।। ३०।।

इति बालग्रहरोगनिदानं द्विसप्ततितमोऽध्यायः।। ७२।।

नैगमेयग्रह से पीड़ित बालक, वमन, काँपना, गला-मुख सूखना, मूर्च्छा, दुर्गन्ध आना, ऊपर को देखना और दाँत कटकटाना, इन उपद्रवों से युक्त होता है।। ३०।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे बालग्रहरोगनिदानं
द्विसप्ततितमोऽध्यायः।। ७२।।

अथ विषरोगनिदानम्

विष के भेद

स्थावरं जङ्गमं चैव द्विविधं विषमुच्यते।
मूलात्मकन्तदाद्यं स्यात्परं सर्पादिसम्भवम्।। १।।

दोहा— तिहत्तरइँ अध्याय महँ, विष निदान कहि दीन्ह।
ग्रहण करहिं त्यागहिं भिषक, रूप सभन के चीन्ह।। १।।

विष दो प्रकार के होते हैं। एक स्थावर, दूसरे जङ्गम। उन दोनों में पहला किसी वृक्ष का मूल स्थावर विष है। सर्पादिकों से उत्पन्न विष जङ्गम विष कहलाता है।। १।।

जङ्गमविष के उपद्रव

निद्रान्तन्द्रां क्लमन्दाहमपाकं लोमहर्षणम्।
शोफं चैवातिसारञ्च कुरुते जङ्गमं विषम्।। २।।

जङ्गम विष से पुरुष को निद्रा, झपकी, ग्लानि, दाह, अपचन, रोम खड़े होना, शोथ और अतीसार आदि उपद्रव होते हैं।। २।।

स्थावरविष के उपद्रव

स्थावरन्तु ज्वरं हिक्कान्दन्तहर्षं गलग्रहम्।
फेनच्छर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते भृशम्।। ३।।

स्थावर विष से ज्वर, हिचकी, दाँत घिसना, गला रुँधना, फेन छोड़ना, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा, ये उपद्रव होते हैं।। ३।।

विष देने वाले के लक्षण

इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः।
जानीयाद्विषदातारमेतैर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान्।। ४।।
न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च।
अपार्थं बहु सङ्कीर्णं भाषते चापि मूढवत्।। ५।।
हसत्यकस्मात्स्फोटयत्यङ्गुल्या विलिखेन्महीम्।
वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते।। ६।।
विवर्णवक्त्रो ध्यामश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्त्यपि।
आलभेतासनन्दीनः करेण च शिरोरुहम्।। ७।।
वर्तते विपरीतश्च विषदाता विचेतनः।

बुद्धिमान् वैद्य, बोलने से, मुख उदास हो जाने से और अन्य चेष्टाओं से विष खिला देने वाले को पहचाने। जो पूछने पर कुछ उत्तर न देता हो, कुछ कहना चाहे परन्तु मोहित हो जाए, बोले तो अप्रमाण बहुत संकीर्ण बात कहे, जैसे कोई महामूढ़ कहता है, अकस्मात् हँसने लगे, ताल बजाने लगे, अंगुली से पृथ्वी खोदने लगे, शरीर कँपाने लगे, भय से व्याकुल होकर मुख देखने लगे। मुख का रङ्ग और का और हो जाए, कुछ सोचने लगे, नखों से खरखोंटने लगे, दु:खी-सा एक स्थान पर बैठ जाए, हाथ से शिर के बाल खुजलाने लगे, चेष्टारहित हो जाए। विष देने वाले के ये लक्षण होते हैं।। ४-७।।

स्थावर (मूलादि) विष के कार्य

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च।। ८।।
जृम्भणं वेपनं श्वासो मोहः पत्रविषेण तु।।
मुखशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च।। ९।।
भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च।
त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि।। १०।।
आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ।
फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुगात्रता।। ११।।
हृत्पीडनं धातु विषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि।
प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत्।। १२।।

हाथ-पैर पटके, अनर्थ बके और मोहित हो जाए, जो ऐसा हो तो जानो कि किसी विषैले वृक्ष की जड़ इसको खिलाई है। जिसको जँभाई आए, काँपता रहे, ऊर्ध्व श्वास ले और मोहित हो तो जानो कि इसको किसी विषैले वृक्ष की पत्ती खिलाई गई है। किसी विषैले वृक्ष का फल खाने से मुख में सूजन आ जाती है, दाह होता है, अन्न खाने में प्रीति नहीं रहती है। विष के पुष्पों के खाने से वान्त, पेट फूलना और श्वास अधिक चलने लगते हैं। बकला, सार और गोंद, इन विषों से मुख में दुर्गन्ध आती है, देह खरखरा हो जाता है, शिर में शूल होती है, और मुख से कफ गिरता है। विषैले वृक्ष के दूध पीने से, मुख से फेन गिरता है, मल पतला आता है, जीभ गुरु हो जाती है और हृदय में पीड़ा होती है। धातु के विष में मूर्च्छा आती है और तालु में दाह होता है, बहुधा ये सब विष कालान्तर में प्राणघातक होते हैं।। ८-१२।।

विषाक्त शस्त्रहत के लक्षण

सद्यः क्षतं पच्यते यस्य जन्तोः
स्त्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम्।
कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति
क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य चापि।। १३।।
तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य
दिग्धाहतन्तं मनुजं व्यवस्येत्।
लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादमित्रै-
र्व्रणे विषं यस्य दत्तं प्रमादात्।। १४।।

जिस प्राणी का घाव तुरन्त पक उठे, उससे रुधिर बहे, बार-बार पकता-फूटता रहे, घाव काला हो जाए, पचपचाता रहे, दुर्गन्ध बहुत आए, घाव सड़ता चला जाए, पिपासा, मूर्च्छा, ज्वर, दाह हों, ऐसे मनुष्य को जानना चाहिए कि इस को विष में बुझे हुए अस्त्रादि का घाव लगा है। यह काम बहुधा शत्रु लोग करते हैं। घाव वाले की असावधानी से शत्रु लोग साधारण घाव पर विष की पट्टी बाँध देते हैं, उसमें भी ये सब चिह्न होते हैं।। १३-१४।।

सर्पों की जाति और प्रकृति

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः।
यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः।। १५।।

वात, पित्त और कफ प्रकृति के भोगी, मण्डली और राजिल, ये तीनों सर्प होते हैं। भोगी (काला सर्प) वातप्रकृति, मण्डली (जिस के ऊपर चक्रँधे होते हैं) पित्तप्रकृति, और राजिल (डोमहरा) कफप्रकृति होता है। इनसे भिन्न अन्य सर्प द्वन्द्वरूपी होते हैं। उनकी माता अन्य जाति की और पिता अन्य जाति का होता है।। १५।।

भोगी आदि के दंश के लक्षण

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत्।
पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान्।। १६।।

राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः।
पाण्डुःस्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्लेष्मविकारवान्।। १७।।

भोगी सर्प के काटने से, वह जहाँ काटता है, वहाँ काला हो जाता है, और वात के सब विकार होते हैं। मण्डली के काटने का घाव पीला हो जाता है, शोथ आता है, कोमल रहता है और पित्त के सब विकार होते हैं। राजिल के काटने का घाव चिकना होता है, शोथ कड़ा होता है। पीला, गाढ़ा और चिकना रक्त निकलता है। कफ के सब विकार भी उस प्राणी को होते हैं।। १६-१७।।

स्थान व कालविशेष में काटने से असाध्यत्व

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसन्ध्यासु चतुष्पथेषु।
याम्ये च दष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दष्टाः।। १८।।
दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति।
अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु।। १९।।
क्षीणक्षते मेहिनि कुष्ठयुक्ते रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि।।

पीपल के पेड़ के पास, देवमन्दिर के पास, श्मशान भूमि में, बाँबी के पास, प्रातः, मध्याह्न, सायं सन्ध्याकालों में चौराहे पर, अशुभ नक्षत्रों में जिनके स्वामी यमराज हैं और जिनको शिरा एवं मर्मस्थलों में डँस दिया हो, वे भी चिकित्सा करने के योग्य नहीं होते, वैद्य को चाहिए कि उन्हें छोड़ दे। दर्वीकर नामक सर्पों का विष शीघ्र मार डालता है। सभी प्रकार के साँपों का विष ग्रीष्म ऋतु में या किसी प्रकार की गर्मी पाकर अपना दूना प्रभाव दिखलाता है। बड़े फण वाले साँपों का विष अजीर्ण से पीड़ित रोगियों, पित्तप्रकृति वालों, धूप से पीड़ित, बालक, वृद्ध, भूखे, कमजोर, राजयक्ष्मारोग के कारण कमजोर, प्रमेह रोगी, रूखे शरीर वाले, दुर्बल तथा गर्भवती युवतियों पर अधिक प्रभाव डालता है।। १८-१९।।

सर्पदष्ट के असाध्य लक्षण

शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति
राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति।। २०।।
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो
विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम्।

जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो
नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः।। २१।।
कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशे
हन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः।
वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्रा-
द्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य।। २२।।
दंष्ट्रानिपाताश्चतुरश्च यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेच्च।
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाऽप्यथवा विवर्णम्।। २३।।
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च ज्ञात्वा नरं कर्म न तत्र कुर्यात्।

साँप द्वारा डँसे हुए जिस रोगी के शरीर के किसी अवयव को काटने पर रक्त न निकले, बेंत आदि की लताओं से पीटने से जिसके शरीर पर रेखाएं न उभर आती हों और शीतल जल को छिड़कने पर जिसके शरीर पर रोमाञ्च न होता हो, ऐसा सर्पदष्ट रोग असाध्य होता है। वैद्य को चाहिए कि वे इस रोगी को छोड़ दें। साँप के काटने से मुख टेढ़ा हो गया हो, बाल उखड़ने लगे हों, या खींचने से टूट जाते हों, नाक बैठ गई हो, दंशस्थान पर काला या लाल वर्ण का शोथ हो गया हो, दाँत लग गए हों और मुख खुला रह गया हो तो उसे सर्पदंश रोग समझें। इसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। जिसके मुख से बत्ती-सी लार तथा ऊपर-नीचे के मार्ग से रक्त निकलता हो और जिस रोगी के साँप के चारों दाँतों के निशान दिखाई देते हों, ऐसे रोगी को छोड़ दें। जो पागल हो गया हो, जिसकी आवाज़ बैठ गई हो, अनेक उपद्रवों से युक्त हो, जिसका वर्ण विकृत हो गया हो ऐसे रोगी को छोड़ देना चाहिए। ये सभी सर्पदष्ट रोग असाध्य होते हैं।। २०-२३।।

दूषीविष के लक्षण

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा।। २४।।
स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति।

जब विष बहुत पुराना हो गया हो अथवा विषनाशक औषधिद्रवों से कमजोर पड़ गया हो, जो जङ्गल की आग, हवा, धूप से सुखाया गया हो अथवा जो स्वभावतः गुणहीन हो गया हो, तो उस विष को 'दूषीविष' कहते हैं।। २४।।

दूषीविष के कार्य

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत् कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि।। २५।।
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धवैरस्ययुतः पिपासी।
मूर्च्छां भ्रमन्गद्गदवाग्वमित्वं विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा।। २६।।

जब विष, दूषीविष हो जाता है तो पराक्रम थोड़ा हो जाने के कारण वह फिर मार नहीं सकता। कफ के कारण उसका बल अल्प हो जाता है। केवल वर्ष भर के पीछे एक बार विष का ज़ोर हो आता है। उससे पीड़ित मनुष्य का मल पतला होने लगता है। रङ्ग भी बदल जाता है। उसके अङ्गों से और ही प्रकार की महक आने लगती है। देह नीरस हो जाता है। पिपासा बहुत लगती है। मूर्च्छा आ जाती है। भ्रम होता है। बोल लड़खड़ा जाता है। वमन होने लगता है। काम अस्तव्यस्त करने लगता है। उसका चित्त किसी में नहीं लगता।। २५-२६।।

स्थानविशेष से दूषीविष के लक्षण

आमाशयस्थे कफवातरोगी
पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी।
भवेत्समुद्ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो
विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः।। २७।।
स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्ता-
न्करोति धातुप्रभवान् प्ररोगान्।

जब विष आमाशय में प्राप्त हो जाता है, तो कफ के और वात के रोग उत्पन्न करता है, जब पक्वाशय में स्थित होता है, तो वात और पित्त के रोग होते हैं। उस रोग में नेत्र, शिर आदि के बाल गिर पड़ते हैं, पक्ष उखाड़े हुए पक्षी के तुल्य मनुष्य दिखाई देता है। रसादिक धातुओं में विष पहुँचकर उस धातु के विकार से उत्पन्न रोगों को उत्पन्न करता है।। २७।।

प्रकोप का समय और पूर्वरूप

कोपञ्च शीतानिलदुर्दिनेषु
यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य चिह्नम्।। २८।।

निद्रागुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च
विश्लेषहर्षावथवाङ्गमर्दम्।

जिस दिन बहुत ठंड होती है, वायु अधिक बहता है अथवा बदरी बहुत होती है, उस दिन विष झटपट कोप करता है। उसका लक्षण कहते हैं सुनो- दूषीविष में निद्रा, अङ्ग भारी, जँभाई, अङ्गों का अलग-अलग होना, रोम खड़े होना और अङ्गों का टूटना, ये सब चिह्न होते हैं।। २८।।

दूषीविष के उपद्रव

ततः करोत्यन्नमदाविपाका-
वरोचकं मण्डलकोठजन्म।। २९।।
मांसक्षयं पादकरप्रशोफं
मूर्च्छान्तथा छर्दिमथातिसारम्।
दूषीविषं श्वासतृषौ च कुर्या-
ज्ज्वरं प्रवृद्धिञ्चठरस्य चापि।। ३०।।
उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्य-
द्दाहन्तथान्यत्क्षपयेच्च शुक्रम्।
गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं
तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान्।। ३१।।

भोजन करने से हर्ष होना, परन्तु खाने पर अन्न न पचना, अरुचि हो जाना, अङ्गों में चकत्ते और गाँठों का पड़ जाना, मांस का क्षय हो जाना, हाथ पैरों में शोथ हो आना, मूर्च्छा, वमन, अतीसार, श्वास, पिपासा, बहुत ज्वर, पेट का भी फूलना, ये सब उपद्रव होते हैं। वह उन्माद को, दाह को और प्रमेह को करता है। शब्द को गद्गद कर देता है। कुष्ठ रोगों को उत्पन्न करता है। इस प्रकार दूषीविष नाना प्रकार के विकारों को करता है।। २९-३१।।

दूषीविष की निरुक्ति

दूषितन्देशकालांन्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ।
यस्मात् सन्दूषयेद्धातून् तस्माद्दूषीविषं स्मृतम्।। ३२।।

यह विष देश, काल, विविध प्रकार के अन्न, आहार तथा दिन में अधिक सोने आदि कारणों से अत्यन्त दूषित होकर रस-रक्त आदि धातुओं को दूषित कर देता है। अतः इसे दूषीविष कहते हैं।। ३२।।

दूषीविष के साध्यासाध्यत्व

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम्।
दूषीविषमसाध्यं स्यात् क्षीणस्याहितसेविनः।। ३३।।

आत्मवान् पुरुष का दूषीविष दोष साध्य होता है। साल भर पुराना याप्य होता है। क्षीण तथा अहितकर आहार-विहार करने वाले पुरुष या स्त्री का दूषीविष असाध्य होता है।। ३३।।

अन्य विष

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदं रजो नानाङ्गजान् मलान्।
शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान् प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान्।। ३४।।
तैः स्यात् पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्गरश्चास्योपजायते।
मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथलक्षणम्।। ३५।।
जठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मा गुल्मः क्षयो ज्वरः।
एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गानि दर्शयेत्।। ३६।।

कुछ स्त्रियाँ पति या प्रिय को अपने वश में करने के लिए अपना पसीना, रजस्, शरीर से उत्पन्न मलों को, शत्रुओं द्वारा दिए गए दूषीविषों को अन्न में मिलाकर दे देती हैं जिसके कारण वह व्यक्ति पीले वर्ण वाला, दुर्बल मन्दाग्नि से पीड़ित हो जाता है। इससे विष की उत्पत्ति हो जाती है, जिस कारण मर्मस्थानों में पीड़ा, आध्मान, हाथों तथा पैरों में सूजन, उदररोग, ग्रहणीविकार, राजयक्ष्मा, गुल्म, ज्वर एवं इसी प्रकार के अन्य रोग हो जाते हैं।। ३४-३६।।

लूता की उत्पत्ति

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः।
तस्माल्लूतास्तु भाष्यन्ते सङ्ख्यया ताश्च षोडश।। ३७।।

महर्षि वसिष्ठ के पसीने की बँदें कटे हुए तिनकों पर पड़ीं, अतः उन्हें लूता कहते हैं। इनकी संख्या सोलह है।। ३७।।

लूतादंश के सामान्य लक्षण

ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः।। ३८।।
पिडका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च।
सामान्यं सर्वलूतानामेतद् सर्वलूतानामेद् दंशस्य लक्षणम्।। ३९।।
दंशमध्ये तु यत् कृष्णं श्यावं वा जालकाचितम्।। ४०।।
ऊर्ध्वाकृति भृशं पाकं क्लेदशोथज्वरान्वितम्।

जिस स्थान से काटा जाए, उससे रक्त निकलता है और सड़ जाता है। इसके कारण ज्वर, दाह, अतिसार तथा सन्निपातज रोग हो जाते हैं। शरीर पर अनेक प्रकार की फुन्सियाँ, बड़े-बड़े धप्पड़, चकत्ते से उत्पन्न हो जाते हैं। ये आकार में बड़े, स्पर्श से मृदु, वर्ण में लाल तथा काले होते हैं। इसके कारण होने वाली सूजन जल्दी ही फैल जाती है। सभी प्रकार की लूताओं में यह लक्षण दिखलाई देते हैं। लूताओं द्वारा काटा हुआ स्थान यदि काला, हल्का काला, जाल-की-सी आकृति का, ऊँचाई लिए हुए, अधिक पाकयुक्त, सड़न, सूजन तथा ज्वरयुक्त होता है ।। ३८-४०।।

प्राणहरा लूता के लक्षण

दूषीविषाभिर्लूताभिस्तद्दष्टमिति निर्दिशेत्।। ४१।।
शोथः श्वेताः सिता रक्ताः पीता वा पिडका ज्वरः।
प्राणान्तिकाश्च जायन्ते श्वासहिक्काशिरोग्रहाः।। ४२।।

तो दूषीविष वाली लूताओं द्वारा काटा गया है। ये विषप्राणहरा लूता कहलाती हैं। इन प्राणहरा लूताओं से शोथ, काले, लाल, पीले रङ्ग की फुन्सियाँ, ज्वर, दाह हिचकी और सिर भारी होना, ये रोग होते हैं।। ४१-४२।।

आखु (मूषक) विष के लक्षण

आदंशाच्छोणितम्पाण्डुमण्डलानि ज्वरोऽरुचिः।
लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते।। ४३।।

विष वाले मूषक के काटने से उस स्थान से कुछ पीले रङ्ग का रुधिर बहता है। शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं। रोम खड़े हो जाते हैं और दाह होता है। यही आखुदूषीविष कहलाता है।। ४३।।

असाध्य मूषकविष

मूर्च्छाङ्गशोफवैवर्ण्यं क्लेदो मन्दश्रुतिर्ज्वरः।
शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषकैः।। ४४।।

असाध्य (प्राणहर) मूषकों के काटने से मूर्च्छा, अङ्गों में शोथ, शरीर का रङ्ग बदलना और गीला-सा रहना, कम सुनाई देना, ज्वर होना, शिर भारी होना, राल और रुधिर मिला वमन होना, ये लक्षण होते हैं।। ४४।।

कृकलासविष के उपद्रव

कार्ष्ण्यं च श्यावमथवा नानावर्णत्वमेव च।
व्यामोहो वर्चसो भेदो दष्टे स्यात्कृकलासकैः।। ४५।।

गिरगिटों के काटने से, अङ्ग काला, नीला, तामड़ा अथवा नाना प्रकार के रङ्ग का हो जाता है। भ्रम और अतीसार होता है।। ४५।।

वृश्चिकविष के लक्षण

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च।
वृश्चिकस्य विषं याति दंशे पश्चाच्च तिष्ठति।। ४६।।

जब बिच्छू काटता है तो पहले अग्नि के समान जलने लगता है और मानो ऊपर के अङ्गों को फाड़ता हुआ चढ़ा जाता है। अन्त में जहाँ डङ्क मारता है वहीं विष रह जाता है।। ४६।।

वृश्चिकविष के असाध्य लक्षण

दष्टोऽसाध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः।
मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून्।। ४७।।

हृदय, नासिका और जीभ में बिच्छु के डँसने से, इन स्थानों का मांस गलकर गिर पड़ता है। तब अत्यन्त पीड़ायुक्त होकर प्राणी, प्राणों को छोड़ देता है।। ४७।।

कणभदष्ट के लक्षण

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा।
लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशीर्यते।। ४८।।

कणभनामक कीड़ों के काटने से, विसर्प, शोथ, शूल, ज्वर और वान्त, ये होते हैं। ये जहाँ काटते हैं, वहाँ सड़ जाता है।। ४८।।

उच्चिटिङ्गदष्ट के लक्षण

हृष्टरोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो भृशार्तिमान्।
दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यंगानि मन्यते।। ४९।।

उच्चिटिङ्ग (छः गोड़ा) नामक कीड़े के काटने से रोम खड़े हो जाते हैं, लिङ्ग खड़ा और कड़ा हो जाता है। पीड़ा अधिक होती है। जिसको काटता है, वह अपने अङ्गों को शीतल जल से सींचे हुए मानता है।। ४९।।

मण्डूकदष्ट के लक्षण

एकदंष्ट्रार्दितश्शूनः सरुजः पीतकस्तृषा।
छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम्।। ५०।।

विषधर मेढ़क के काटने से, उसके एक ही दाँत के लगने से सूजन हो आती है। पीड़ा होती है। सूजन का रङ्ग पीला होता है। प्यास लगती है। वमन होता है। नींद अधिक आती है।। ५०।।

मछली जोंक आदि के विष के लक्षण

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोफं रुजं तथा।
कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः।। ५१।।

विषैली मछलियों के काटने से दाह, शोथ और पीड़ा होता है। विषैली जोंक के काटने से खुजली, शोथ, ज्वर और मूर्च्छा होती है।। ५१।।

गृहगोधा और शतपदी विष

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका।
दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम्।। ५२।।

विषधर घूस के काटने से दाह, शोथ, कोंचने की-सी पीड़ा और पसीना होता है। कनखजूर के काटने से पसीना, पीड़ा और दाह होती है।। ५२।।

मच्छरविष के लक्षण

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोफः स्यान्मन्दवेदनः।
असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्षतम् ।। ५३।।

मच्छरों के काटने से खुजलाहट होती है, कुछ सूजन होती है, और मन्द पीड़ा होती है। पर्वतादि पर के असाध्य मच्छरों के काटने से असाध्य कीड़ों के काटने के तुल्य असाध्य घाव होता है।। ५३।।

मक्खीविष के लक्षण

सद्यः प्रस्राविणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता।
पिडिका मक्षिकादंशे तासान्तु स्थगिकाऽऽसुहृत्।। ५४।।

विषैली मधुमक्खियों के काटने से तुरन्त घाव होकर बहने लगते हैं और छोटी-छोटी काली, दाह, मूर्च्छा और ज्वरयुक्त फुन्सियाँ हो आती हैं। मक्खियों में जो स्थविका होती है, वह प्राण हर लेती है।। ५४।।

चतुष्पद और द्विपद विष

चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिर्वा नखदन्तक्षतन्तु यत्।
शूयते पच्यते वापि स्रवति ज्वरयत्यपि।। ५५।।

व्याघ्रादि चौपायों के और वानरादि दोपायों के नखों और दाँतों में जो विष होता है, वह सूजन करता, पकाता, फूटकर पीब बहाता और ज्वर उत्पन्न करता है।। ५५।।

विषरहित के लक्षण

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकाङ्क्षं सममूत्रविट्कम्।
प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम्।। ५६।।

इति विषरोगनिदानं त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।। ७३।।

जब किसी प्रकार के विष से पीड़ित मनुष्य के वातादिक दोष प्रसन्न होकर अपने स्थान पर ठीक हो जाएं, रस आदि धातु भी अपने-अपने स्वभाव से युक्त

हो जाएं, उनमें कुछ विकार न रह जाए, अन्न खाने की इच्छा हो, मल-मूत्र पीड़ा रहित अच्छे प्रकार से होने लगें, देह का रङ्ग जैसे का तैसा हो जाए, इन्द्रियाँ और मन भी प्रसन्न हो जाएं, तो वैद्य उस मनुष्य को विषरहित जाने।। ५६।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे विषरोगनिदानेंत्रिसप्ततितमोऽध्याय:।। ७३।।

अथ षाण्ढ्यरोगनिदानम्

आसेक्य नपुंसक के लक्षण

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्य: पुरुषो भवेत्।
स शुक्रम्प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम्।। १।।

दोहा— चौहत्तर अध्याय महँ, भेद नपुंसक केर।
कह्यो सुकवि जेहि जानिकर, वैद्य तज़े मन फेर।। १।।

अल्प वीर्य वाले माता-पिता से पैदा होने वाला मनुष्य आसेक्य (मुखयोनि) नामक नपुंसक होता है। वह जब दूसरे मनुष्य का वीर्य भक्षण करता है, तब उसका लिङ्ग खड़ा होता है।। १।।

सौगन्धिक के लक्षण

य: पूतियोनौ जायेत स सौगन्धिकसञ्ज्ञित:।
स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम्।। २।।

जो दुर्गन्ध वाली योनि से पैदा होता है, वह सौगन्धिक (नासायोनि) नपुंसक होता है। यह लिङ्ग और योनि की गन्ध को सूँघ कर बल को प्राप्त (मैथुनकर्म में समर्थ) होता है।। २।।

कुम्भीक के लक्षण

स्वे गुदे ब्रह्मचर्य्याद्य:स्त्रीषु पुंवत् प्रवर्त्तते।
कुम्भीकस्स तु विज्ञेय ईर्ष्यकं शृणु चापरम्।। ३।।

जो अपनी गुदा में ब्रह्मचर्य से स्त्रियों की तरह आचरण करता है (पहले अपनी गुदा में मैथुन कराकर स्त्रियों में मैथुन करने की शक्ति प्राप्त करता है), यह कुम्भीक (गुदयोनि) नपुंसक कहलाता है। अब दूसरे ईर्ष्यक को सुनो।। ३।।

ईर्ष्यक के लक्षण

दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्त्तते।
ईर्ष्यकस्स तु विज्ञेयो दृग्योनिरयमीर्ष्यकः।। ४।।

जो दूसरे को मैथुन करता देखकर करने को प्रवृत्त होता है, वह ईर्ष्यक (नेत्रयोनि) नपुंसक कहलाता है।। ४।।

स्त्रीचेष्टाकार के लक्षण

यो भार्य्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्तते।
तत्र स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसञ्ज्ञितः।। ५।।

जब पुरुष ऋतुधर्म के समय स्त्री में मोहवश हो स्त्री की तरह प्रवृत्त होता है (विपरीत मैथुन करता है), तब जो बालक पैदा होता है, वह स्त्री की-सी चेष्टा वाला नपुंसक होता है।। ५।।

नरचेष्टिता के लक्षण

ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्तन्तेऽङ्गना यदि।
तत्र कन्या यदि भवेत्सा भवेन्नरचेष्टिता।। ६।।

इति षाण्ढ्यरोगनिदानं चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।। ७४।।

जो स्त्री ऋतुधर्म के समय पुरुषवत् हो मैथुन करती है, उसको जो कन्या पैदा होती है, वह कन्या पुरुष की-सी चेष्टा वाली (हिजड़ी) होती है।। ६।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे षाण्ढ्यरोगनिदानं चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।। ७४।।

अथ अलर्कविषनिदानम्

श्वानविष की संप्राप्ति और लक्षण

शुनश्श्लेष्मोल्बणा दोषास्सञ्ज्ञां सञ्ज्ञावहाश्रिताः।
मुष्णन्तः कुर्वते क्षोभन्धातूनामतिदारुणम्।। १।।

लालावानन्धबधिरस्सर्वतस्सोऽभिधावति ।
स्रस्तपुच्छहनुस्कन्धशिशरोदुःखी नताननः।। २।।
दंशस्तेन विदष्टस्य सुप्तः कृष्णं क्षरत्यसृक्।
हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृष्णामूर्च्छोद्भवोऽनु च।। ३।।

दोहा— पचहत्तर अध्याय महँ, स्वान आदि विष केर।
कीन्ह्यो है वर्णन सुकवि, बहु ग्रंथन को हेर।। १।।

कफ की उल्बणता से दूषित वातादि दोष संज्ञा बहाने वाली नाड़ियों में प्राप्त हो कर कुत्ते के ज्ञान का नाश करते हैं, धातुओं को अत्यन्त क्षोभित करते हैं, तब उसके लार बहती है, वह अन्ध और बधिर होकर चारों तरफ घूमने लगता है, पूँछ ढीली हो जाती है, ठोढ़ी और कन्धे ढीले हो जाते हैं, वह दुःखी होकर नीचे को शिर कर लेता है। उस कुत्ते से काटे हुए का घाव शून्य-सा हो जाता है। काला खून बहने लगता है। हृदय, शिरोरोग, ज्वर, देह जकड़ना, पिपासा और मूर्च्छा, ये उपद्रव होने लगते हैं।। १-३।।

सर्प आदि विष की संप्राप्ति तथा लक्षण

अन्येनान्येऽपि बोद्धव्या व्याला दंष्ट्राप्रहारिणः।
शृगालाश्वतराश्वर्क्षद्वीपिव्याघ्रवृकादयः ।। ४।।
कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदज्वरभ्रमाः ।
विदाहरागरुक्पाकशोफग्रन्थिविकुञ्चनम् ।। ५।।
दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिकामण्डलानि च।
सर्वत्र सविषे लिङ्गं विपरीतं तु निर्विषम्।। ६।।

इसी प्रकार अन्य साँप और दाढ़ से प्रहार करने वाले सियार, घोड़ा, खच्चर, ऋक्ष, सिंह, व्याघ्र, भेड़ियादिकों के काटे जाने वाले के भी लक्षण होते हैं। इनमें खुजली, देह टूटना, विवर्णता, शरीर सो जाना, शरीर का गीलापन, ज्वर, भ्रम, दाह, रोग, पाक, सूजन, गाँठ और सिकुड़न होते हैं। घाव का फूटना, छोटे-छोटे फोड़ों से युक्त होना, घाव के चारों तरफ मण्डल-सा हो जाना इत्यादि विष वाले के चिह्न हैं। इससे विपरीत निर्विष होता है।। ४-६।।

काटे हुए पुरुष की चेष्टा

दष्टो येन तु तच्चेष्टारुतं कुर्वन्विनश्यति।
पश्यंस्तमेव चाकस्मादादर्शसलिलादिषु।। ७।।

जब अकस्मात् जलादि में अपना चेहरा देख लेता है, तब जिस जीव ने काटा हो उसी की-सी चेष्टा करते हुए प्राणी मर जाता है।। ७।।

असाध्य का लक्षण

योऽद्भ्यस्त्रस्येददष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः।
जलसन्त्रासनामानन्दष्टन्तमपि वर्जयेत्।। ८।।

इत्यलर्कविषनिदानं पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।। ७५।।

जो बिना काटे भी जल के शब्द, स्पर्श, दर्शन आदि से डरता हो, उस जलसन्त्रास नाम वाले को यदि कुत्ते ने काटा हो तो वह असाध्य होता है।। ८।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादेऽलर्कविषनिदानं पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।। ७५।।

अथ स्नायुकरोगनिदानम्

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत्।
भिनत्ति तत्क्षते तत्र सोष्म स्नायुं विशोष्य च।। १।।
कुर्यात्तन्तुनिभञ्जीवं वृत्तं श्वेतद्युतिम्बहिः।
शनैश्शनैः क्षताद्यातिच्छेदात्कोपमुपैति च।। २।।
तत्पाताच्छोफशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत्।
स स्नायुकेति विख्यातः क्रियोक्ता तु विसर्पवत्।। ३।।

दोहा— छीहत्तर अध्याय महँ, स्नायुकरोग निदान।
भाख्यो कवि सज्जन सकल, वाको करहिं प्रमान।। १।।

वातादिदोष कुपित हो शाखाओं (हाथ-पैरों) में विसर्पवत् फैलने वाले, छोटे-छोटे फोड़ों को उत्पन्न कर, उनको फोड़कर उस जगह की गरम स्नायु

को सुखाकर सूत के समान सफेद रङ्ग का जीव प्रकट करते हैं। वह धीरे-धीरे घाव से बाहर निकलता है किन्तु टूट जाने से कोपकर दुःख देता है। यदि वे सब निकल कर गिर जाते हैं तो सूजन कम हो जाती है, और दूसरी जगह प्रकट हो जाती है। इसको विसर्प कहते हैं। इसमें विसर्प की-सी चिकित्सा करनी चाहिए।। १-३।।

उसके उपद्रव

बाह्वोर्यदि प्रमादेन जङ्घयोस्तुद्यते क्वचित्।
संकोचङ्खञ्जताञ्चैवच्छिन्नतन्तुः करोत्यसौ।। ४।।

इति स्नायुकरोगनिदानं षट्सप्ततितमोऽध्यायः।। ७६।।

यदि हाथ और पैर का स्नायु (नहरुवा) टूट कर पूर्णतया निकलने नहीं पाता तो वह पुरुष को हाथ से टोंटा और पैर से लँगड़ा कर देता है।। ४।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे स्नायुकरोगनिदानं षट्सप्ततितमोऽध्यायः।। ७६।।

अथ मन्थरकज्वररोगनिदानम्

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतीसारो वमिस्तृषा।
अनिद्रा मुखशोषश्च तालु जिह्वा च शुष्यति।। १।।
ग्रीवायाम्परिदृश्यन्ते स्फोटकास्सर्षपोपमाः।
घृताशनात्स्वेदरोधान्मन्थरो जायते नृणाम्।। २।।

इति मन्थरकरोगनिदानं सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।। ७७।।

दोहा— सतहत्तर अध्याय महँ, मन्थरज्वर को भेद।
कवि वरन्यो जेहि जानकर, वैद्य होहिं गतखेद।। १।।

ज्वर, दाह, भ्रम, मोह, अतीसार, वमन और पिपासा इनका होना, नींद न आना, मुख, तालु और जिह्वा का सूखना, गले में सरसों के समान छोटे-छोटे दाने दिखाई देना, ये लक्षण मन्थर ज्वर में पसीने के रुकने और अधिक घृत भोजन करने से होते हैं।। १-२।।

इति माधवनिदाने भाषानुवादे मन्थरकज्वररोगनिदानं
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।। ७७।।

अथ ग्रन्थानुक्रमणिका

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चार्शोऽजीर्णं विसूचिका।
अलसश्च विलम्बी च कृमिरुक्पाण्डुकामलः।। १।।
हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरःक्षतम्।
कासो हिक्का सह श्वासैः स्वरभेदस्त्वरोचकः।। २।।
छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानात्ययादयः।
दाहोन्मादावपस्मारः कथितोऽथानिलामयः।। ३।।
वातरक्तमूरुस्तम्भ आमवातोऽथ शूलरुक्।
पक्तिजं शूलमानाह उदावर्तोऽथ गुल्मरुक्।। ४।।
हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातस्तथाश्मरी।
प्रमेहो मधुमेहश्च पिडिकाश्च प्रमेहजाः।। ५।।
मेदस्तथोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगण्डकः।
गण्डमालाऽपची ग्रन्थिरर्बुदः श्लीपदन्ततः।। ६।।
विद्रधिर्व्रणशोथश्च द्वौ व्रणौ भग्ननाडिके।
भगन्दरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः।। ७।।
शीतपित्तमुदर्दश्च कुष्ठश्चैवाम्लपित्तकम्।
विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमान्त्यो मसूरिकाः।। ८।।
क्षुद्रास्यकर्णनासाक्षिशिरः स्त्रीबालकग्रहाः।
विषञ्चेत्ययमुद्देशो रुग्विनिश्चयसंग्रहे।। ९।।

इत्यनुक्रमणिकानिरूपणमष्टसप्ततितमोऽध्यायः।। ७८।।

दोहा— अठहत्तर अध्याय महँ, सकल रोग के नाम।
कवि भाख्यो विस्तार करि, देखहिं लोग ललाम।। १।।

ज्वर १ अतीसार २ ग्रहणी ३ अर्शसू ४ अजीर्ण ५ विसूचिका ६ अलस ७ विलम्बी ८ कृमिरोग ९ पाण्डु १० कामला ११ हलीमक १२ रक्तपित्त १३ राजयक्ष्मा १४ उरुक्षत १५ कास १६ हिक्का १७ श्वास १८ स्वरभेद १९ अरोचक २० वमन

२१ तृषा २२ मूर्च्छा २३ पानात्ययादिरोग २४ दाह २५ उन्माद २६ अपस्मार २७ वातरोग २८ वातरक्त २९ ऊरुस्तम्भ ३० आमवात ३१ शूल ३२ पक्तिज ३३ अन्यशूल ३४ आनाह ३५ उदावर्त ३६ गुल्म ३७ हृदयरोग ३८ मूत्रकृच्छ्र ३९ मूत्राघात ४० अश्मरी ४१ प्रमेह ४२ मधुमेह ४३ प्रमेहजपिडिका ४४ मेदोरोग ४५ उदररोग ४६ शोथ ४७ वृद्धिरोग ४८ गलगण्ड ४९ गण्डमाला ५० अपची ५१ ग्रन्थिरोग ५२ अर्बुद ५३ श्लीपद ५४ विद्रधि ५५ व्रणशोथ ५६ भग्नव्रण ५७ नाडीव्रण ५८ भगन्दर ५९ उपदंश ६० शूकदोष ६१ त्वचारोग ६२ शीतपित्त ६३ उदर्द ६४ कुष्ठ ६५ अम्लपित्त ६६ विसर्प ६७ विस्फोट ६८ रोमान्त्य ६९ मसूरिका ७० क्षुद्ररोग ७१ मुखरोग ७२ कर्णरोग ७३ नासारोग ७४ शिरोरोग ७५ स्त्रीरोग ७६ बालग्रह ७७ विष ७८ बस, इतने रोग रोगियों के इस ग्रन्थ में हैं।। १९।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे ग्रन्थानुक्रमणिका-
निरूपणमष्टसप्ततितमोऽध्यायः।। ७८।।

अथ सन्निपातरोगनिदानम्

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैः कटुमधुरसुरातापसेवाकषायैः
कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिशिताहारसौहित्यशीतैः।
शोकव्यायामचिन्ताग्रहगणवनितात्यन्तसङ्गप्रसङ्गैः
प्रायः कुप्यन्ति पुंसाम्मधुसमयशरद्वर्षणे सन्निपाताः।। १।।

दोहा—सन्निपात जो रोग है, जगप्रसिद्ध बलवान्।
उन्यासी अध्याय महँ, कवि कह तासु निदान।। १।।

खट्टा, चिकना, उष्ण, तीक्ष्ण, कड़वा, मीठा, मदिरा, आदि खाना-पीना, तापना, या उष्ण वस्त्र बहुत ओढ़ना, कसैली वस्तु, काम, क्रोध, अति रूखा, और गरिष्ठ भोजन करना, मांस, शीत पदार्थों का सेवन, शोक, श्रम, चिन्ता करना, ग्रहों का उपद्रव और स्त्री का अत्यन्त सङ्ग करना, इन से बहुधा वसन्त, वर्षा और शरद्काल में सन्निपात कोप करते हैं।। १।।

सन्निपातों के नाम

सन्धिकश्चान्तकश्चैव रुग्दाहश्चित्तविभ्रमः।
शीताङ्गस्तन्द्रिकः प्रोक्तः कण्ठकुब्जश्च कर्णकः।। २।।

विख्यातो भुग्ननेत्रश्च रक्तष्ठीवी प्रलापकः।
जिह्वकश्चेत्यभिन्यासस्सन्निपातास्त्रयोदश ।। ३।।

सन्धिक १ अन्तक २ रुग्दाह ३ चित्तविभ्रम ४ शीताङ्ग ५ तन्द्रिक ६ कण्ठकुब्ज ७ कर्णक ८ भुग्ननेत्र ९ रक्तष्ठीवी १० प्रलापक ११ जिह्वक १२ और अभिन्यास १३, ये तेरह प्रकार के सन्निपात होते हैं।। २-३।।

सन्निपातों की अवधि

सन्धिके वासरास्सप्त चान्तके दश वासराः।
रुग्दाहे विंशतिर्ज्ञेया वह्न्यष्टौ चित्तविभ्रमे।। ४।।

सन्धिक की सात दिन की, अन्तक की दस दिन की, रुग्दाह की बीस दिन की और चित्तविभ्रम की चौबीस दिन की अवधि होती है।। ४।।

पक्षमेकन्तु शीताङ्गे तन्द्रिके पञ्चविंशतिः।
विज्ञेया वासराश्चैव कण्ठकुब्जे त्रयोदश।। ५।।

शीताङ्ग की पंद्रह दिन की, तन्द्रिक की पच्चीस दिन की और कण्ठकुब्ज की तेरह दिन की अवधि होती है।। ५।।

कर्णके च त्रयो मासा भुग्ननेत्रे दिनाष्टकम्।
रक्तष्ठीवी दशाहानि चतुर्दश प्रलापके।। ६।।

कर्ण की तीन मास, भुग्ननेत्र की आठ दिन, रक्तष्ठीवी की दस दिन और प्रलापक की चौदह दिन की अवधि है।। ६।।

जिह्वके षोडशाहानि कलाभिन्यासलक्षणे।
परमायुरिदम्प्रोक्तम्म्रियते तत्क्षणादपि।। ७।।

जिह्वक की सोलह दिन और अभिन्यास की भी सोलह दिन की अवधि होती है। यह परम आयु कही गई है, परन्तु तुरन्त भी मृत्यु हो जाती है। इस अवधि के लाँघ जाने पर बच जाता है।। ७।।

साध्यासाध्य का लक्षण

सन्धिकस्तन्द्रिकश्चैव कर्णकः कण्ठकुब्जकः।
जिह्वकश्चित्तविभ्रंशः षट् साध्याः सप्त मारकाः।। ८।।

सन्धिक, तन्द्रिक, कर्णक, कण्ठकुब्जक, जिह्वक और चित्तविभ्रंश, ये छः साध्य होते हैं। अन्य सात अर्थात् अन्तक, रुग्दाह, शीताङ्ग, भुग्ननेत्र, रक्तष्ठीवी, प्रलापक और अभिन्यास मार डालते हैं।। ८।।

सन्धिक के लक्षण

पूर्वरूपकृतशूलसम्भवं शोषवातबहुवेदनान्वितम्।
श्लेष्मतापबलहानिजागरं सन्निपातमिति सन्धिकं वदेत्।। ९।।

जिस सन्निपात के पूर्वरूप में शूल, शोथ, वात की बड़ी पीड़ा, कफ अधिक होना, सन्ताप, बलहानि और निद्रानाश हो, उसे सन्धिक सन्निपात कहते हैं।। ९।।

अन्तकसन्निपात के लक्षण

दाहङ्करोति परितापनमातनोति
मोहं ददाति विदधाति शिरः प्रकम्पम्।
हिक्काङ्करोति कसनञ्च समाजुहोति
जानीहि तं विबुधवर्जितमन्तकाख्यम्।। १०।।

जो सन्निपात दाह करता है, ताप को बढ़ाता है, मोह देता है, शिर को कँपाता है, हिचकी करता है और खाँसी को बुलाता है, वह पण्डितों के त्यागने योग्य है। वह अन्तक नामक सन्निपात है।। १०।।

रुग्दाह के लक्षण

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमान्द्यश्रमः
परिभ्रमणवेदनाव्यथितकण्ठमन्याहनुः ।
निरन्तरतृषाकरश्वसनकासहिक्काकुल-
स्स कष्टतरसाधनो भवति हन्ति रुग्दाहकः।। ११।।

अनर्थ बकना, परिताप होना, प्रबल मोह, मन्दता, श्रम, करवट लेने में पीड़ा, गला-ग्रीवा का ऊपरी भाग तथा चौहड़ी में पीड़ा, सदा प्यास, श्वास, खाँसी और हिचकी से व्याकुल रहना, इन लक्षणों से युक्त सन्निपात को रुग्दाह कहते हैं। वह कष्टतर साध्य होता है, नहीं तो मार ही डालता है।। ११।।

चित्तविभ्रम के लक्षण

यदि कथमपि पुंसाञ्जायते कायपीडा
भ्रममदपरितापो मोहवैकल्यभावः।
विकलनयनहासौ गीतनृत्यप्रलापो-
ऽभिदधति तमसाध्यङ्केऽपि चित्तभ्रमाख्यम्।। १२।।

जिस सन्निपात में मनुष्यों के शरीर में पीड़ा होती है, भ्रमयुक्त मद का परिताप होता है, मोह की विकलता होती है, नेत्र विकल होते हैं, हँसी आती है, गाना, नाचना और अनर्थ बकना, ये सब लक्षण होते हैं, वह चित्तभ्रम सन्निपात कहलाता है। उसे कोई-कोई असाध्य कहते हैं।। १२।।

शीताङ्ग के लक्षण

हिमसदृशशरीरो वेपथुश्श्वासहिक्का
शिथिलितसकलाङ्गोऽच्छिन्ननादोग्रतापः।
क्लमथुदवथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्त-
स्त्वरितमरणहेतुश्शीतगात्रः प्रभावात्।। १३।।

जिस सन्निपात में शरीर पाला-सा ठंडा, कम्प, श्वास, हिचकी, सब अङ्ग शिथिल, शब्द बहुत नष्ट नहीं, उग्रतर भीतरी ताप, बिना श्रम के थकवाही, मन में पीड़ा, खाँसी, वमन और अतीसार होते हैं, वह शीताङ्ग सन्निपात कहलाता है। अपने प्रभाव से मरण का हेतु होता है।। १३।।

तन्द्रिक के लक्षण

प्रभूता तन्द्रार्तिज्वरकफपिपासाकुलतरा
भवेच्छ्यामा जिह्वा पृथुलकठिनाकण्टकवृता।
अती सारश्श्वासः क्लमथुपरितापश्श्रुतिरुजो
भृशङ्कण्ठे जाड्यं शयनमनिशन्तन्द्रिकगदे।। १४।।

जिसमें अधिक तन्द्रा, पीड़ा, ज्वर, कफ, पिपासा से अतिव्याकुलता, जीभ काली, बहुत कड़ी और मोटी कांटों से युक्त, अतीसार, श्वास, ग्लानि, परिताप, कानों में पीड़ा, कण्ठ का अति जकड़ना और रात्रि दिन बराबर सोते रहना, ये लक्षण होते हैं, उसे तन्द्रिक सन्निपात कहते हैं।। १४।।

कण्ठकुब्जसन्निपात के लक्षण

शिरोऽर्तिकण्ठग्रहदाहमोह-
कम्पज्वरो रक्तसमीरणार्तिः।
हनुग्रहस्तापविलापमूर्च्छा-
स्स्यात्कण्ठकुब्जः खलु कष्टसाध्यः।। १५।।

जिस सन्निपात में शिर में पीड़ा, बोलने में पीड़ा, दाह, मोह, कम्प, ज्वर, रक्तवात की पीड़ा, चौहड़ी का जकड़ना, ताप, रोदन करना और मूर्च्छा, ये लक्षण होते हैं, वह कष्टसाध्य कण्ठकुब्ज है।। १५।।

कर्णक के लक्षण

प्रलापश्रुतिह्रासकण्ठग्रहाङ्ग-
व्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम्।
ज्वरन्तापकर्णन्तयोर्गल्लपीडा
बुधाः कर्णकङ्कष्टसाध्यं वदन्ति।।१६।।

जिस सन्निपात में अनर्थ बकना, कम सुन पड़ना, गला बैठ जाना, अङ्गों में पीड़ा, श्वास, खाँसी, लार बहना, ज्वर, कानों और गालों में पीड़ा, जिसमें ये लक्षण होते हैं, पण्डित उसे कर्णक कहते हैं। यह कष्टसाध्य है।। १६।।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथस्सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते।। १७।।

सन्निपात ज्वर के अन्त में कान की जड़ में अतिदारुण बहुत मोटी सूजन हो आती है। उससे कोई-कोई पुरुष छूटता है। जिसे ऐसी सूजन होती है, वह प्रायः मर ही जाता है।। १७।।

इसका विशेष नियम

ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा
ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः।
क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्य-
स्सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः।। १८।।

यदि वह सूजन ज्वर होने के पहले हो तो असाध्य होती है। ज्वर के मध्य में होती है तो कष्टसाध्य होती है। ज्वर के अन्त में होती है तो सुख से साध्य होती है। यह मुनियों ने कहा है।। १८।।

भुग्ननेत्र नामक सन्निपात के लक्षण

ज्वरबलापचयस्स्मृतिशून्यता
श्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ।
प्रलपनभ्रमकम्पनशोफवां-
स्त्यजति जीवितमाशु स भुग्नदृक्।। १९।।

जिसमें ज्वर तो बहुत न आए, परन्तु स्मरण शक्ति नष्ट हो जाए, श्वास अधिक चलने लगे, नेत्र टेढ़े हो जाएँ, रोगी अचेत हो जाए, अनर्थ बकने लगे, भ्रम हो जाए, शरीर काँपने लगे और शोथ हो आए, तो रोगी शीघ्र ही प्राण छोड़ देता है। इस सन्निपात को भुग्ननेत्र कहते हैं।। १९।।

रक्तष्ठीवी सन्निपात के लक्षण

रक्तष्ठीवीज्वरवमितृषामोहशूलातिसारा-
हिक्काध्मानभ्रमणदवथुश्वाससञ्ज्ञाप्रणाशः।
श्यामारक्ताधिकतररसना मण्डनोत्थानरूपा
रक्तष्ठीवी निगदित इह प्राणहन्ता प्रसिद्धः।। २०।।

जिसमें मुख से रुधिर गिरना, ज्वर, वमन, पिपासा, मोह, शूल, अतीसार, हिचकी, पेट फूलना, चित्त घूमना, ताप, बहुत श्वास, ज्ञान नष्ट हो जाना, जीभ का अधिकतर काली या लाल हो जाना अथवा जीभ के ऊपर मण्डलाकार चकत्ते पड़ जाना, ये लक्षण होते हैं, उस सन्निपात को रक्तष्ठीवी कहते हैं। यह प्रसिद्ध प्राणहन्ता है।। २०।।

प्रलाप के लक्षण

कम्पप्रलापपरितापनशीर्षपीडा
प्रौढप्रभावपवमानपरोऽन्यचिन्ता ।
प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादः
क्षिप्रम्प्रयाति पितृपालपदम्प्रलापी।। २१।।

जिस सन्निपात में कम्प, अनर्थ बकना, सन्ताप होना, शिर में पीड़ा, बल अधिक करना, पवित्रता में तत्पर, अन्य लोगों की चिन्ता, बुद्धि का नाश, विकलता और बहुत बकना, ये लक्षण हों, उसे प्रलापी कहते हैं। इससे आक्रान्त प्राणी शीघ्र यमराज के स्थान को जाता है।। २१।।

जिह्वक नामक सन्निपात के लक्षण

श्वसनकासपरितापविह्वलः
कठिनकण्टकवृतेतिजिह्वकः ।
बधिरमूकबलहानिलक्षणो
भवति कष्टतरसाध्यजिह्वकः।। २२।।

जिस सन्निपात में श्वास, खाँसी, सन्ताप से विह्वल हो जाना, कड़े-कड़े काँटों से जीभ का युक्त होना, बहिरा, गूंगा और बलहीन होना, ये लक्षण हों, उसे जिह्वक कहते हैं। यह सन्निपात अतिशय कष्टसाध्य होता है।। २२।।

अभिन्यास नामक सन्निपात के लक्षण

दोषत्रयस्निग्धमुखत्वनिद्रा-
वैकल्यनिश्चेष्टनकष्टवाग्मी ।
बलप्रणाशश्वसनादिनिग्रहो-
ऽभिन्यास उक्तो ननु मृत्युकल्पः।। २३।।

जिस सन्निपात में वात, पित्त, कफों के दोष से मुख में चिकनाई, दिन-रात्रि निद्रा, विकलता से चेष्टा का बदलना, बड़े कष्ट से कुछ बोल सकना, बल का नाश और श्वास आदि का रुक जाना, ये लक्षण हों, उसे अभिन्यास कहते हैं। यह मृत्यु से कुछ ही न्यून होता है।। २३।।

हारिद्रक नामक सन्निपात के लक्षण

हारिद्रदेहनखनेत्रकराङ्घ्रिताप-
निष्ठीवनादिकसनैरुपलक्षितो यः।
हारिद्रकस्स कथितः किल सन्निपात-
स्साध्यो न चैष भिषजां ज्वरकालरूपः।। २४।।

जिसमें देह, नख, नेत्र, हाथ, पैर हरिद्रा से रँगे-से हो जाते हैं, जो ज्वर, थूक, और खाँसी से युक्त हो जाता है, वह सन्निपात हारिद्रक कहलाता है। यह वैद्यों से साध्य नहीं होता। यह ज्वररूप काल ही होता है।। २४।।

सद्यस्त्रिपञ्चसप्ताहाद्दशाहाद्द्वादशादपि।
एकविंशदिनैश्शुद्धस्सन्निपाती सुजीवति।। २५।।

सन्निपात होने पर जो तुरन्त ही शुद्ध हो जाता है, अथवा तीन, पाँच, सात, दस, बारह अथवा इक्कीस दिन पर शुद्ध हो जाता है, वह फिर अच्छी प्रकार जीता है।। २५।।

त्रिदोषज ज्वरों की मर्यादा

सप्तमी द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा।
एषा त्रिदोषमर्य्यादा मोक्षाय च वधाय च।। २६।।

सप्तमी, नवमी, एकादशी अथवा इनकी दूनी मर्यादा अर्थात् चौदह, अट्ठारह और बाइसं दिन की अवधि वात, पित्त, कफ के दोषों की है। अर्थात् सात अथवा चौदह, नव अथवा अट्ठारह, ग्यारह अथवा बाइस दिन में सन्निपात छोड़ देता या मार डालता है।। २६।।

पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात्।
हन्ति विमुञ्चति पुरुषन्त्रिदोषजो धातुमलपाकात्।। २७।।

पित्त, कफ और वात की वृद्धि से, क्रम से दस दिन, बारह दिन और सात दिन में पुरुष को या तो मार ही डालता है या छोड़ ही देता है। त्रिदोषज धातु के पक जाने पर तो मार डालता है। केवल मल के पकने से छोड़ देता है।। २७।।

धातुपाक के लक्षण

निद्रानाशो हृदिस्तम्भो विष्टम्भो गौरवारुचि।
अरतिर्ब्बलहानिश्च धातूनाम्पाकलक्षणम्।। २८।।

नींद का नाश, हृदय का जकड़ना, मल-मूत्र का बन्द हो जाना, देह भर भारी हो जाना, अरुचि, स्वस्थ न रहना और बल की हानि, ये धातु पक जाने के लक्षण हैं।। २८।।

मल पकने का लक्षण

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः।
इन्द्रियाणाञ्च वैमल्यं दोषाणाम्पाकलक्षणम्।। २९।।

इति सन्निपातरोगनिदानमेकोनाशीतितमोऽध्यायः।। ७९।।

दोषों के स्वभाव का बदल जाना, ज्वर और देह का हलका होना तथा इन्द्रियों का निर्मल होना, मलपाक का यह लक्षण है।। २९।।

इति श्रीमाधवनिदाने भाषानुवादे सन्निपातरोगनिदानमे-
कोनाशीतितमोऽध्यायः।। ७९।।

इति भाषानुवादसहितं माधवनिदानं सम्पूर्णम्।

।। शुभम् ।।

प्रो० सुषमा कुलश्रेष्ठ

- पूर्व विज़िटिंग प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।
- पूर्व प्राचार्या (ऑफ़िशिएटिंग), दौलतराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- दौलतराम कॉलेज एवं दिल्ली विश्वविद्यालय में 1966 से संस्कृत-अध्यापन, एम.फ़िल. तथा पीएच.डी. के शोधच्छात्रों का निर्देशन।
- आई.सी.एच.आर., आई.सी.एस.एस.आर., यू.जी.सी., संस्कृति विभाग, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय एवम् आई.सी.सी.आर. (भारत शासन) के प्रतिनिधि के रूप में षष्ठ विश्व संस्कृत सम्मेलन, फिलाडैल्फ़िया, यू. एस.ए. (1984), सप्तम विश्व संस्कृत सम्मेलन, लाईडैन, नीदरलैण्ड्स (1987), अष्टम बुद्धिस्ट कान्फ्रेंस, कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, बर्कले, यू.एस.ए. (1987), xxxiii इकानास, टॉरण्टो, कैनाडा (1990), अष्टम विश्व संस्कृत सम्मेलन, वियना, ऑस्ट्रिया (1990), नवम विश्व संस्कृत सम्मेलन, मेलबर्न, ऑस्ट्रेलिया (1994) एवं पञ्चम साक्याधीता, नॉमपैन, कम्बोडिया (1997-98) में पैनल-आयोजन, अध्यक्षता-निर्वहण एवं शोधपत्र-प्रस्तुति।
- विश्व संस्कृत सम्मेलन, ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस, इण्डियन फ़िलोसॉफ़िकल कॉन्ग्रेस, अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, अखिल भारतीय कालिदास समारोह एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सङ्गोष्ठियों के 101 अधिवेशनों में शोधपत्र प्रस्तुत।
- ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेंस की कार्यकारिणी परिषद् की निर्वाचित सदस्या (1976-86, 1990-2004) एवं xxxiii, xxxvi एवं xxxix अधिवेशनों के टैक्निकल साइंसेस एण्ड फ़ाइन आर्ट्स सैक्शन की अध्यक्षा।
- श्रीसुभाषचरितम् महाकाव्य पर उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा 1997 में संस्कृत-साहित्य-पुरस्कार से सम्मानित।
- उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा वर्ष 2000 के लिए बाणभट्ट सम्मान से विभूषित।
- सर्वाधिक ग्रन्थ प्रणयन हेतु लिमका बुक ऑफ़ रिकार्ड्स में 2002 तथा 2003 में भी नामाङ्कित।

ग्रन्थ : संस्कृत-गीताञ्जलि, बृहत्त्रयी-एक तुलनात्मक अध्ययन, कालिदास-साहित्य एवं सङ्गीत-कला, कालिदास-साहित्य एवं पशु-पक्षि-सङ्गीत, मेघदूत-सङ्गीत-पल्लवी, संस्कृत-सङ्गीत-वैजयन्ती, ऋतुसंहार-सङ्गीत-सुरभि, प्रभाकरनारायणश्रीः, सुमतिसङ्गीताभरणम्, कालिदास-साहित्य एवं कामकला-I& II, संस्कृत-सङ्गीत-जगदीश्वरी, श्रीसुभाषचरितम्, अमिताभबुद्धश्रीः, संस्कृत-सङ्गीत-रत्नशती, इरॉटिक्स इन संस्कृत एण्ड इंगलिश लिटरेचर-I, आश्लेष-चुम्बन-निर्झरी प्रभृति 62 ग्रन्थ प्रकाशित)।

शोधपत्र : देश-विदेश की प्रसिद्ध शोध-पत्रिकाओं तथा अभिनन्दन-ग्रन्थों में 101 शोधपत्र प्रकाशित।

BOOK EASTERN EBL LINKERS

Eastern Book Linkers

(INDOLOGICAL PUBLISHERS & BOOKSELLERS)

5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar, Delhi-110007

Ph: 011-23970287, Email-easternbook@mantraonline.com

ISBN 81-7854-020-7

9788178540207